प्रकाशक,
उदयलाल काशलीवाल।
मालिक:—जैन-साहित्य-प्रसारक कार्यालय;
हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई।

मुद्रक,
अनंत आत्माराम मोरमकर;
श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस,
४०२, ठाकुरद्वार रोड, मुंबई।

विषय-सूची ।

हमारे निजके छपाये हुए जैनग्रंथ।

त्रिलोकसार—स्वर्गीय पंडित-प्रवर टोडरमलजीकृत भाषाटीका-सहित। कपड़ेकी सुन्दर जिल्द बँधी हुई। मू० ५॥) रु०

रत्नकरंडश्रावकाचार—स्व० पं० सदासुखजीकृत भाषाटीका-सहित। श्रावकाचार-सम्बन्धी भाषा-टीकाके जितने ग्रंथ इस समय मिलते हैं, उन सबसे यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है। यह खुले पत्रोंमें, जाड़े कागज पर, मोटे टाईपमें बड़ी सुन्दरतासे छपाया गया है। पृष्ठ-संख्या ५७५ के लगभग है। मूल्य ५) रुपया।

पुण्यास्रव—इसमें मनोरंजक और धार्मिक भावोंसे परिपूर्ण कोई ५६ छोटी-मोटी कथायें हैं। हमने अब यह दूसरी बार छपाया है। पृष्ठ-संख्या ३४० के लगभग है। मूल्य ३) रुपया।

भक्तामरकथा—(मंत्र-यंत्र-सहित) यह ग्रन्थ स्वर्गीय ब्रह्मचारी रायमल्लके बनाये भक्तामरके आधार पर बड़ी सीधी-साधी हिन्दी भाषामें छपाया गया है। अन्तमें मंत्र, ऋद्धि और उनकी साधनविधि तथा अड़तालीस यंत्र भी दिये गये हैं। मूल्य १), कपड़ेकी जिल्दका १।≈)

चन्द्रप्रभचरित—महाकवि श्रीवीरनन्दी आचार्यकृत, संस्कृत जैन-काव्योंमें यह उच्च कोटीका काव्य है। इसमें आठवें तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रभ भगवानका पवित्र चरित वर्णन किया गया है। मूल्य १), कपड़ेकी जिल्दका १।≈),

नेमिपुराण—यह ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत नेमिपुराणका हिन्दी अनुवाद है। इसमें बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ भगवानका पवित्र चरित है। मूल्य २), कपड़ेकी जिल्दका २।≈)

सम्यक्त्वकौमुदी—यह भी कथाका एक सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें सम्यक्त्वके प्राप्त करनेवाले राजा उदितोदय, सुयोधन, अर्हद्दास, चन्दनश्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता और विद्युल्लताकी आठ कथायें हैं। मूल्य १≈), कपड़ेकी जि० १।≈)

सुदर्शनचरित—यह सकलकीर्तिकृत संस्कृत सुदर्शनचरितका हिन्दी अनुवाद है। सुदर्शन बड़ा दृढ़-निश्चयी था, कामी स्त्रियोंने उसके साथ अनेक प्रकारकी बुरी चेष्टायें कीं, उसे शीलधर्मसे गिरानेका खूब ही प्रयत्न किया; परंतु सुदर्शन अपने शीलधर्म पर सुमरुसा अचल-अडिग बना रहा। मूल्य ॥=) आ०

नागकुमारचरित—षट्भाषा-कवि-चक्रवर्ती मल्लिषेण सूरिके संस्कृत ग्रंथका अनुवाद। मूल्य ।≈) आने।

यशोधरचरित—महाकवि वादिराज सूरिके एक सुन्दर संस्कृत काव्यका हिन्दी अनुवाद। इसमें यशोधरका सुन्दर चरित वर्णन किया गया है। मूल्य ।) आ०

पवनदूत (काव्य) कालिदासके मेघदूतके समान रचा गया है, हिन्दी भाषामें है। मू० ।) आ०

श्रेणिकचरितसार। ब्रह्मचारी नेमिदत्तके संस्कृत श्रेणिककथासारका यह अनुवाद है। मूल्य ≥)

अकलंकचरित। इसमें अकलंक-स्तोत्र और उसका भावार्थ तथा हिन्दी पद्यानुवाद भी शामिल कर दिया है। मूल्य ≥) आने।

सुकुमालचरितसार। इसके बनानेवाले ब्रह्मचारी नेमिदत्त हैं। उन्हींके ग्रन्थका यह अनुवाद है। मू० =)॥ आ०

पंचास्तिकाय-समयसार। मूलग्रन्थके बनानेवाले भगवान कुन्दकुन्दाचार्य हैं। उस पर स्व० पं० हीरानन्दजीने दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया आदिमें छन्दोबद्ध टीका लिखी है। मूल्य १) रुपया।

चौवीसठाणा-चर्चा—यह गोम्मटसारके आधार पर लिखी गई है। इसमें चौबीस दण्डक शामिल कर दिये हैं। मूल्य ॥) आने।

छहढाला—(सार्थ) स्व०पं० दौलतरामजी कृत। ब्र०शीतलप्रसादजीकृत अर्थ-सहित है। मू० ≈)आने।

नियमपोथी—इसे भी ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने संग्रह किया है। मूल्य)॥ आना।

हिन्दी-भक्तामर—यह संस्कृत भक्तामरका खड़ी बोलीकी कवितामें सुन्दर अनुवाद है। मूल्य =)। आना।

हिन्दी-कल्याणमंदिर। भक्तामरके समान यह भी खड़ी बोलीकी कवितामें संस्कृत कल्याण-मंदिरका अनुवाद है। मूल्य एक आना।

कर्मदहन-विधान। इसमें कर्मदहन पूजा आदि सब छपे हैं। मूल्य ।=) आने।

इनके सिवाय और सब जगहके जैन ग्रन्थ भी हमारे यहां मिलते हैं।

पत्ता:—जैन-साहित्य-प्रसारक—कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव—बम्बई।

नमः श्रीमते गणधरदेवाय।

स्वर्गीय पण्डित दौलतरामजी विरचित

क्रियाकोष।

मंगल।

दोहा।

प्रणमि जिनंद मुनिंदकों, नमि जिनवर मुखवानि।
क्रियाकोष-भाषा कहूं, जिन आगम परवानि॥ १॥
मोक्ष न आतमज्ञान विन, क्रिया ज्ञान विन नाहिं।
ज्ञान विवेक विना नहीं, गुन विवेकके माहिं॥ २॥
नहिं विवेक जिनमत विना, जिनमत जिन विन नाहिं।
मोक्षमूल निर्मल महा, जिनवर त्रिभुवन माहिं॥ ३॥
तातें जिनकों वंदना, हमरी वारंवार।
जिनतें आपा पाइये, तीन भुवनमें सार॥ ४॥
द्वीप अढ़ाईके विषें, आरजछेत्र अनूप।
सौ ऊपर सत्तरि सवै, वृत्तभूमि शुभरूप॥ ५॥
जिनमें उपजें जिनवरा, व्रत्तविधान निरूप।
कवहूं इक इक क्षेत्रमें, इक इक है जिनभूप॥ ६॥
तव सत्तरि सौ ऊपरें, उतकिष्ट भुवनेस।
तिनमें महाविदेहमें,-अस्सी दूण असेस॥ ७॥
भरतैरावत छेत्र दस, तिनके दस जिनराय।
ए दस अर वे सर्वही, सौ सत्तरि सुखदाय॥ ८॥
घटि हैं तौ जिन वीसतें, घटैं न काहू काल।
पंच विदेह विषें महा, केवलरूप विशाल॥ ९॥
चलै धर्म द्वय सासता, यति-श्रावक व्रतरूप।
टलै पाप हिंसादिका, उपजें पुरुष अनूप॥ १०॥

कालचक्रकी फिरणि विन, कुलकर तहां न होय ।
नाहिं कुलिंगम वरति हैं, तातैं रुद्र न जोय ॥ ११ ॥
तीर्थाधिप चक्री हली, हरि प्रतिहरि उपजंत ।
इंद्रादिक आवैं जहां, करैं भक्ति भगवंत ॥ १२ ॥
तीर्थंकर अर केवली, गणधर मुनि विहरंत ।
जहां न मिथ्यामारगी, एक धर्म अरहंत ॥ १३ ॥
तातं मात जिनराजके, अर नारद फुनि काम ।
परघट पुरुष पुनीत बहु, शिवगामी गुण धाम ॥ १४ ॥
हैं विदेह मुनिवर जहां, पंच महाव्रत धार ।
तातैं महाविदेहमैं, सत्यारथ सुखकार ॥ १५ ॥
भरतैरावत दस विषैं, कालचक्र हैं दोय ।
अवसर्पिणि उतसर्पिणी, षट षट काला सोय ॥ १६ ॥
तिनमैं चौथे कालही, उपजैं जिन चौवीस ।
द्वादस चक्री नव हली, हरि प्रतिहरि अवनीश ॥ १७ ॥
त्रिसठिसलाका पुरुष ए, जिनमारग-धर धीर ।
इनमैं तीर्थंकर प्रभू, और भक्तिवर वीर ॥ १८ ॥
तात मात जिनदेवके, चौंवीसा चौंवीस ।
नौ नारद चौदा मनू, कामदेव चौंवीस ॥ १९ ॥
एकादस रुद्रा महा, इत्यादिक पद धारि ।
उपजैं चौथे कालही, ए निश्चै उर धार ॥ २० ॥
या विधि भए अनंत जिन, होसी देव अनंत ।
सबको मारग एकही, ज्ञान-क्रिया बुधिवंत ॥ २१ ॥
सबही शान्ति प्रदायका, सबही केवलरूप ।
सबही धर्म निरूपका, हिंसा-रहित-सरूप ॥ २२ ॥
सबही आगम भासका, सब अध्यातम मूल ।
भुक्ति-मुक्ति-दायक सवै; ज्ञायक सूक्षम-थूल ॥ २३ ॥
वरननमैं आवैं नहीं, तीन कालके नाथ ।
सर्व क्षेत्रके जिनवरा, नमों जोरि जुग हाथ ॥ २४ ॥
भरतक्षेत्र यह आपनो, जंबूदीप मझारि ।
ताके मैं चौवीसिका, वंदूं श्रुत-अनुसारि ॥ २५ ॥

१ देह रहित । २ राजा । ३ कुलकर ।

निर्वाणादि भये प्रभु,- निर्वाणी चौबीस ।
ते अतीत जिन जानिये, नमों नाय निज शीश ॥ २६ ॥
जिन भाष्यौं द्वै विधि धरम, परमधामको मूल ।
यति-श्रावकके भेद करि, इक सूक्षम इक थूल ॥ २७ ॥
बहुरि वर्तमाना जिना, रिषभादिक चौबीस ।
नमों तिनैं निज भाव करि, जिनके राग न रीस ॥ २८ ॥
तिनहूं सोही भाषियौं, द्वै विधि धर्म विसाल ।
महाव्रत अणुव्रतमय, जीवदया प्रतिपाल ॥ २९ ॥
बहुरि अनागत कालमें, ह्वैगे तीरथनाथ ।
महापद्म प्रमुख प्रभु, चौवीसा बड़हाथ ॥ ३० ॥
तातैं सोही भासि है, जे जोऽनादि प्रबंध ।
सबकों मेरी बंदना, सबको एक निबंध ॥ ३१ ॥
चौवीसी तीनूं नमूं, नमों तीस चौवीस ।
श्री सीमंधर आदि प्रभु, नमन करों फुनि बीस ॥ ३२ ॥
पंद्रा कर्मधरा सर्व, तिनमें जे जिनराय ।
अर सामान्य जु केवली, वर्तैं निर्मल काय ॥ ३३ ॥
तिन सबकों परनाम करि, प्रणमों सिद्ध अनंत ।
आचारिज उपाध्यायकों, विनऊं साधु महंत ॥ ३४ ॥
तीन कालके जिनवरा, तीन कालके सिद्ध ।
तीन कालके मुनिवरा, वंदों लोक-प्रसिद्ध ॥ ३५ ॥
पंच परमपद-पद प्रणयि, वंदों केवलवानि ।
वंदों तत्वारथ महा, जैनधर्म गुणखानि ॥ ३६ ॥
सिद्धचक्रकूं वंदिकैं, सिद्धजंत्रकूं वंदि ।
नमि सिद्धान्त-निबंधकों, समयसार अभिनंदि ॥ ३७ ॥
वंदि समाधि सुतंत्रकूं, नमि समभाव-सरूप ।
नमोकारकूं करि प्रणति, भाषों व्रत्त अनूप ॥ ३८ ॥
चउ अनुयोगहिं वंदिकैं, चउ सरणा ले सुद्ध ।
चउ उत्तम मंगल प्रणमि, कहूं क्रिया अविरुद्ध ॥ ३९ ॥
देव-धर्म-गुरु प्रणति करि, स्यादवाद अवलोकि ।
क्रियाकोष-भाषा कहूं, कुंदकुंद मुनि ढोकि ॥ ४० ॥

१ आदि लेकर । २ नमस्कार कर ।

अरचों[1] चरचा जैनकी, चरचों चरचा जैन ।
क्रोध लोभ छल मोह मद, त्यागि गहूं गुननैन ॥ ४१ ॥
कर्तृम और अकर्तृमा जिनप्रतिमा जिनगेह ।
तिन सवकूं परणाम करि, धारूं धर्मसनेह ॥ ४२ ॥
गाऊं चउविधि दान शुभ, गाऊं दसधा धर्म ।
गाऊं पोड़सभावना, नमि रतनत्रय पर्म ॥ ४३ ॥
सतऊं[2] सर्व यतीसुरा, विनऊं आर्यों[3] सर्व ।
सव श्रावक अर श्राविका, नमन करों तजि गर्व ॥ ४४ ॥
करों वीनती मन धरें, समदृष्टिनसों एह ।
अपनोंसौ धीरज मुझे, देहु, धर्ममें लेह ॥ ४५ ॥
लोकशिखर पर थान जो, मुक्तिक्षेत्र सुखधाम ।
जहां सिद्ध शुद्धातमा, तिष्टे केवलराम ॥ ४६ ॥
नमों नमों ता क्षेत्रकों, जहां न कोइ उपाधि ।
आधि व्याधि असमाधि नहिं, वरतै परम समाधि ॥ ४७ ॥
प्रणमि ज्ञान कैवल्यकों, केवलदर्शन ध्याय ।
यथाख्यातचारित्रकूं, वंदों सीस नमाय ॥ ४८ ॥
प्रणमि सयोगं[4] सथानकों, नमि अजोग गुणथान ।
क्षायकसम्यक वंदिकै, वरणों व्रत्तविधान ॥ ४९ ॥
वंदों चउ आराधना, वंदों उपशम भाव ।
जाकरि क्षायकभाव है, होय जीव जिनराव ॥ ५० ॥
मूलोत्तरगुण साधुके, है जिन करि जनै[5] सिद्ध ।
तिनकूं वंदि कहूं क्रिया, त्रेपन परम प्रसिद्ध ॥ ५१ ॥
जहां मुनी निज ध्यान करि, पावें केवलज्ञान ।
वंदों ठौर प्रशस्त जो, तीरथ महा निधान ॥ ५२ ॥
जा थानकसों केवली, पहुंचे पुर निर्वाण ।
वंदों धाम पुनीत जो, जा सम थान न आँन[6] ॥ ५३ ॥
तीर्थंकर भगवानके, वंदों पंचकल्याण ।
और केवलीकों नमों, केवल अर निर्वाण ॥ ५४ ॥
नमों उभै[7] विधि धर्मकों, मुनि-श्रावक निरधार ।
धर्म मुनिनको मोक्ष दे, काटै कर्म अपार ॥ ५५ ॥

१ पूजों । २ स्तवन करता हूं । ३ आर्यिका । ४ तेरहवें गुणस्थानको । ५ मनुष्य । ६ दूसरा । ७ दो प्रकारके ।

तातैं मुनिमत अति प्रवल, वार वार थुति जोग।
धन्य धन्य मुनिराज ते, तजैं समस्त अजोग ॥ ५६ ॥
पर परणति जे परिहरैं, रमैं ध्यानमैं धीर।
ते हमकूं निज दास करि, हरौ महा भव-पीर ॥ ५७ ॥
मुनिकी क्रिया विलोकिकै, हमपै वरनि न जाय।
लौकिक क्रिया गृहस्थकी, वरनूं मुनि-गुण ध्याय ॥ ५८ ॥
यतिव्रत ज्ञान विना नहीं, श्रावक ज्ञान विना न।
वुद्धिवंत नर ज्ञान विन, खोवें वांदि दिनानै ॥ ५९ ॥
मोक्षमारगी मुनिवरा, जिनकी सेव करेय।
सो श्रावक धनि धन्य है, जिनमारग चित देय ॥ ६० ॥
जिन मंदिर जो शुभ रचै, अरचै जिनवर देव।
जिनपूजा नितप्रति करै, धरै साधूकी सेव ॥ ६१ ॥
करै प्रतिष्ठा परम जो, जात्रा करै सुजान।
जिन सासनके ग्रंथ शुभ, लिखवावै मतिवान ॥ ६२ ॥
चउविधि संघतणी सदा, सेवा धारै वीर।
परउपगारी सर्वकी, पीड़ा हरैं जु वीर ॥ ६३ ॥
अपनी शक्ति प्रमाण जो, धारै तप अर दान।
जीव मात्रको मित्र जो, शीलवंत गुण धाम ॥ ६४ ॥
भाव शुद्ध जाके सदा, नहिं प्रपंचको लेस।
परधन पाँहन सम गिनै, तृष्णा तजी विसेस ॥ ६५ ॥
तातैं गृहपति हू प्रवल, ताकी क्रिया अनेक।
जिनमें त्रेपन मुख्य हैं, तिनमें मुख्य विवेक ॥ ६६ ॥
नमस्कार गुरुदेवकों, जे सव रीति कहेय।
जिनवानी हिरदै धरी, ज्ञानवंत व्रत लेय ॥ ६७ ॥
क्रियाकांडकों करि प्रणति, भाषों किरियाकोष।
जिनसासन अनुसार शुभ दयारूप निरदोष ॥ ६८ ॥
प्रथमहिं त्रेपन जे क्रिया, तिनके वरनों नाम।
ज्ञान-विराग-सरूप जे, भविजनकूं विश्राम ॥ ६९ ॥

———

१ व्यर्थ। २ दिनोंको। ३ पत्थर समान। ४ ज्ञान।

त्रेपन क्रिया ।

गाथा ।

गुण-वय-तव-सम-पड़िमा, दाणं जलगालणं च अणत्थमियं ।
दंसणणाणचरित्तं, किरिया तेवण्ण सावया भणिया ॥ १ ॥

चौपई ।

गुण कहिये अठमूल जु गुणा, वय कहिए व्रत द्वादस गुणा ।
तव कहिये तप बारह भेद, सम कहिए समदृष्टि अभेद ॥ ७० ॥
पड़िमा नाम प्रतिज्ञा सही, ते एकादस भेद जु लही ।
दाणं कहिये दान जु चार, अर जलगालण रीति विचार ॥ ७१ ॥
निसिकों खानपान नहिं भला, अन्न औषधी दूध न जला ।
रात्रि विषें कछु लेवौ नाहिं, अति हिंसा निसिभोजन माहिं ॥ ७२ ॥
कह्यौ 'अणत्थमिय' शब्द जु अर्थ, निशिभोजन सम नाहिं अनर्थ ।
दंसण णाण चरित्त जु तीन, ए त्रेपन किरिया गिणि लीन ॥ ७३ ॥
प्रथमहिं आठ मूलगुण कहों, गुण-परसाद विषाद न गहों ।
मद्य मांस मधु मोटे पाप, इन करि पावै अतुलित पाप ॥ ७४ ॥
वर पीपर पाकर नहिं लीन, ऊमर और कठूमर हीन ।
तीन पांच ए आठों वस्त, इनको त्याग सकल परशस्त ॥ ७५ ॥
मन-वच-काय तजौ नर नारि, कृत-कारित-अनुमोद विचारि ।
जिनमें इनको दोष जु लगै, तिन वस्तुनतें बुधजन भगें ॥ ७६ ॥
अमल जाति सबही नहिं भक्ष, लगै मद्यको दोष प्रत्यक्ष ।
रस चलितादिक सड़िय जु वस्तु, ते सब मदिरा तुल्यज वस्तु ॥ ७७ ॥
जा खाये मन ठीक न रहै, सो सब मदिरा दूषण लहै ।
अर्क अनेक भांतिके जेह, खइवेमें आवत हैं तेह ॥ ७८ ॥
ओली[1] वस्तु रहै दिन घना, तामें दोष लगै मदतना[2] ।
अब सुनि आमिषै[3] दोष जु भया, चर्मादिकै[4] घृत तेल न लया ॥ ७९ ॥
हींग कदापि न खावन बुधा, वींधौ सीधौ भखिवौ मुधा ।
चून चालियौ चलनी चाम[5], नीच जाति-पीस्यौ हु न काम ॥ ८० ॥

---

१ गीली । २ शराबका । ३ मांस । ४ चमड़ेमें रखे हुए घी, तेल । ५ चमड़ेकी ।

फूली आयौं धान अखान, फूल्यौं साग तजौं मतिवान।
कंद अथाणा माखन त्याग, हाट-मिठाई तज वड़भाग ॥ ८१ ॥
निसिभोजन अणछाण्यूं नीर, आसिप तुल्य गिनें वरवीर।
निसि पीस्यौं निसि रांध्यौं होय, हाड़-चामको परस्यौं जोय ॥ ८२ ॥
मांस अहारीके घर तनों, सो सव मांस समानहिं गिनों।
विकलत्रय अर तिरं[1] नर जेह, तिनको मांस रुधिरमय जेह ॥ ८३ ॥
तजौं सवै आमिप[2] अघखानि, या सम पाप न और प्रमानि।
त्यागौं सहत जु मदिरा समा, मधु दोउको नाम निरभ्रमा ॥ ८४ ॥
अर जिन वस्तुनिमें मधुदोप, सो सव तजहु पापगण-पोष।
काक्रित्र और मुरव्वा आदि, इनहिं खाहिं तिनको व्रत वादि ॥ ८५ ॥
मधु मदिरा पल जे नर गहैं, ते शुभगतितें दूरहिं रहैं।
नर्क-निगोद माहिं दुख सहैं, अतुल अपार त्रासना लहैं ॥ ८६ ॥
तातें तीन मकार धिकार, मद्य मांस मधु पाप अपार।
ये तीनों औ पंच कुफला, तीन पांच ए आठों मला ॥ ८७ ॥
इन आठोंमें अगणित त्रसा, उपजें मरण करें परवसा।
जीव अनंता वहुत निगोद, तातें कृत-कारित-अनुमोद— ॥ ८८ ॥
इनको त्याग किये वसु मूल,—गुणा होंहि अघतें प्रतिकूल।
पांच उदम्बर तीन मकार, इनसें पाप न और प्रकार ॥ ८९ ॥
वार वार इनकों धिक्कार, जो त्यागें सो धन्य विचार।
इन आठनसें चौदा और, भखैं सु पावैं अति दुख[3]-ठौर ॥ ९० ॥
वहुत अभक्षनमें वाईस, मुख्य कहे त्यागें व्रतईस।
ओला नाम गड़ा जु वखानि, जीवरासि भरिया दुखखानि ॥ ९१ ॥
अणछाण्यां जलके वंधाण, दोप करें जैसें संधाण।
भखैं पाप लागै अधिकाय, तातें त्याग करौ सुखदाय ॥ ९२ ॥
घोलवड़ामें[4] दूपण वड़ा, खाहिं तिके जाणें अति जड़ा।
दही मंहीमें विदल जु वस्त, खाये सुकृत[5] जाय समस्त ॥ ९३ ॥
तुरत पचेन्द्री उपजे तहां, विदल दही मुखमें ले जहां।
अन्न मसूर मूँग चणकादि, मोठ उड़द मट्टर तूरादि ॥ ९४ ॥
अर मेवा पिस्ता जु विदाम, चारोंली आदिक अति नाम।
जिन वस्तुनिकी है द्वै दाल, सो सो सव दधिभेला[6] टालि ॥ ९५ ॥

१ तिर्यंच। २ मांस। ३ दुःख। ४ छाछ–मठा। ५ पुण्य। ६ दहीके साथ।

जानि निसाचर जे निसि चरें, निसिभोजन करि भवदुख भरें।
तातें निसिभोजन तजि भया, जो चाहें जिनमारग लया ॥ ९६ ॥
दोय महूरत दिन जब रहै, तबतें चउविहार[2] बुध गहै।
जौलों जुगल महूरत दिना-चढ़ि है तौलों अनसन गिना ॥ ९७ ॥
रात-बसौ अर रातहिं कियौ, रात-पिस्यौ कबहूं नहिं लियौ,
जहां होय अंधेरो वीर, तहां दिवसहू असन न वीर ॥ ९८ ॥
दृष्टि देखि भोजन करि शुद्ध, दृष्टि देखि पग धरहु प्रवुद्ध।
बहुबीजा जामें कण घणा, ते फल कुफल जिनेसुर भणा ॥ ९९ ॥
प्रगट तिजारा आदिक जेह, बहुबीजा त्यागौ सब तेह।
बैंगणजाति सकल अघखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि ॥ १०० ॥
संधाणा दोषीक विसेस, सो भव्या छांड़ौ जु असेस।
ताके भेद सुनों मनलाय, सुनि यामें उपजै अधिकाय ॥ १०१ ॥
अत्थाणा संधाण मथाण, तीन जाति इनकी जु बखानि।
राई लूण कलूंजी आदि, अंबादिकमें डारहिं वादि ॥ १०२ ॥
नाखि तेलमें करहिं अथाण, या सम दोष न सूत्रप्रमाण।
त्रसजीवा तामें उपजंत, माखियां आमिष-दोष लहंत ॥ १०३ ॥
नीबू आम्रादिक जे फला, लूण माहिं डारै नहिं भला।
याको नाम होय संधाण, त्यागें पंडित पुरुष सुजाण ॥ १०४ ॥
अथवा चलितरसा सब वस्त, संधाणा जाणों अप्रशस्त।
बहुरि जलेबी आदिक जोहि, डोहा राव मथाणा होय ॥ १०५ ॥
लूण छाछि माहीं फल डारि, केर्यादिक जे खाहिं सँवारि।
तेहि बिगारें जन्म सुकीय, जैसें पापी मादिरा पीय ॥ १०६ ॥
अब सुनि चून तनी मरजाद, भाषें श्रीगुरु जो अविवाद।
शीतकालमें सातहिं दिना, ग्रीषममें दिन पांचहिं गिना ॥ १०७ ॥
बरषारितु माहीं दिन तीन, आगे संधाणा गणलीन।
मरजादा बीतें पकवान, सो नहिं भक्ष कहें भगवान ॥ १०८ ॥
ताहि भखें जु असूत्री लोक, पावें दुरगतिमें दुख-शोक।
मर्यादाकी विधि सुनि धीर, जो भाषी गौतम प्रति वीर ॥ १०९ ॥
जामें अन्न जलादिक नाहिं, कछु सरदी जामाहीं नाहिं।
बूरा और बतासा आदि, बहुरि गिंदौडादिक जु अनादि ॥ ११० ॥

१ राक्षस। २ चार प्रकारके आहार।

ताकी मर्यादा दिन तीस, शीतकालमें भाषी ईश ।
ग्रीषम पंद्रा वर्षा आठ, यह धारौ जिनवाणीपाठ ॥ १११ ॥
अर जो अन्नतणों पकवान, जलको लेश जु माहै जान ।
आठ पहर मरजादा जास, भाषें श्रीगुरु धर्मप्रकाश ॥ ११२ ॥
जल-वरजित जो चूनहिं तनों, घृत-मीठो मिलिकै जो वनों ।
ताकी चून समानहिं जानि, मरजादा जिन आज्ञा मानि ॥ ११३ ॥
भुजिया वड़ा कचौरी पुवा, मालपुवा घृत-तेलहिं हुवा ।
इत्यादिक है अवरहु जेह, लुचई सीरा पूरी एह ॥ ११४ ॥
ते सव गिनौ रसोई समा, यह उपदेश कहैं पति रमा ।
दारि भात कढ़ही तरकारि, खिचड़ी आदि समस्त विचारि ॥ ११५ ॥
दोय पहर इनकी मरजाद, आगें श्रीगुरु कहें अखाद ।
केई नर संधानक त्यागि, ल्यूंजी खांय सवादहिं लागि ॥ ११६ ॥
केरी नींबू आदि उकालि, नाना विधि सामग्री घालि ।
सरस्यूं केरो तेल तपाय, तामें तलें सकल समुदाय ॥ ११७ ॥
जिह्वालंपट वहु दिन राख, खांय तिके मतिमंद जु भाख ।
तरकारी सम ल्यूंजी एह, आगें संधाणा समुजेह ॥ ११८ ॥
अणजाण्यूं फल त्यागहु मित्र ! अणछाण्यो जल ज्यों अपवित्र ।
त्यागौ कंदमूल बुधिवंत, कंदमूलमें जीव अनंत ॥ ११९ ॥
गारि न कवहु भखहु गुणवन्त, गारी कवहु न काढ़उ सन्त ।
डरी गारिमें जीव असंख, निंदैं साधु अशंक अकंख ॥ १२० ॥
जा खाये छूटें निज प्राण, सो विषजाति अभक्ष प्रवान ।
आफू और महोरा आदि, तजौ सकल सुनि सूत्र अनादि ॥ १२१ ॥
काचौ माखण अति हि सदोष, भखिया करै सवै सुभ सोख ।
पहले आमिष दूषण माहिं, फुनि फुनि निंद्यौ संसै नाहिं ॥ १२२ ॥
फल अति तुच्छ खाहु मति वीर, निंदैं महावीर जगधीर ।
पालौ राति जमावै कोय, ताहि भखत दुरगति फल होय ॥ १२३ ॥
निज सवाद तजि है विपरीत, सो रसचलित तजौ भवभीत ।
आगें मदिरा दूषण महै, निंद्यौ ताहि सुवुध नहिं गहै ॥ १२४ ॥
ए बाईस अभख तजि सखा, जो चाहौ अनुभौ-रस चखा ।
अवर अनेक दोषके भरे, तजौ अभख भव्यनि परिहरे ॥ १२५ ॥

फूल जाति सब ही दोपीक, जीव अनंत भरे तहकीक ।
कबहु न इनकों सपरस करौ, इह जिन आज्ञा हिरदै धरौ ॥ १२६ ॥
खावौ और सूँघिवौ सदा, इनकूं तजहु न ढाँकहु कदा ।
साक-पत्र सब निंद बखानि, त्याग करौ जिन आज्ञा मानि ॥ १२७ ॥
नेम धर्म व्रत राख्यौ चहै, तौ इन सबकूं कबहु न गहै ।
झाड़ तनें वड़ बोरि जु तनें, तजौ और त्रस जीव जु घनें ॥ १२८ ॥
पेठा और कोहला तजौ, ताजि तरबूज जिनेसुर भजौ ।
जांबू और करोंदा जेहु, दूध झरै त्यागौ सहु तेह ॥ १२९ ॥
कंद शाकदल फूल जु त्यागि, साधारण फलतें दुर भागि ।
जो प्रत्येकहु छांड़ै वीर, ता सम और न कोई धीर ॥ १३० ॥
जो प्रत्येक न त्यागे जाय, तौ परमाण करै सुखदाय ।
तेहु अलप ही कबहुक खाय, नहिं तौड़े न तुड़ावन जाय ॥ १३१ ॥
ताजा ले बासी नहिं भखै, रसचलितादिक कबहु न चखै ।
हरितकायसों त्यागै प्रीति, सो जानें जिनमारग-रीति ॥ १३२ ॥
जे अनंतकाया दुखदाय, सब साधारण त्यागौ राय ।
तजि केदार तूँबड़ी सदा, खाहु मनालीढिस तुम कदा ॥ १३३ ॥
कचनारादिक डौंडी तजौ, ताजि अणफोड्यो फल जिन भजौ ।
पहली विदलतनूं अति दोष,—भाख्यौ भेद सुनहु तजि रोष ॥ १३४ ॥
अन्न मसूर मूंग चणकादि, तिनकी दालि जु होय अनादि ।
अर मेवा पिस्ता जु बिदाम, चारौली आदिक अतिनाम ॥ १३५ ॥
जिन जिन वस्तुनिकी है दालि, सो सो सब दधि भेला टालि ।
अर जो दधि भेलो मिष्टान, तुरतहिं खावौं सूत्रप्रमान ॥ १३६ ॥
अंतमहूरत पीछें जीव,—उपजें इह गावें जगपीव ।
तातें मीठाजुत जो दही, अंतमहूरत पहले गही ॥ १३७ ॥
दधि-गुड़ खावौ कबहु न जोग, वरजें श्रीगुरु वस्तु अजोग ।
फुनि तुम सुनहु मित्र ! इक बात, राईलूण मिलैं उतपात ॥ १३८ ॥
तातें दही महीमें करै, तजौ रायता कांजी वरै ।
घी ताजा गहिवौ भविलोय, सूद्रनको घृत जोगिन होय ॥ १३९ ॥
स्वादचलित जो खावै घीव, सो कहिये अविवेकी जीव ।
घिरत सोधिको लेवौ अल्प, भाजिवौ जिनवर त्यागि विकल्प ॥ १४० ॥

घृतहू छाँडै तौ अति तपा, नीरस तप धरि श्रीजिन जपा।
सिंधव लोंन त्रितिनिकों लेन, कर्तृम लोंन सवै तजिदेन ॥ १४१ ॥
जो सिंधवहू त्यागै भया, महा तपस्वी श्रुतमें लया।
अव तुम गोरसकी विधि सुनों, जिनवरकी आज्ञा उर मुणों ॥ १४२ ॥
दोहत जव महिषी अर गाय, तवतें इह मरजाद गहाय।
काचौ दूध न राखै सुधी, द्वै घटिका राखै तौ कुधी ॥ १४३ ॥
काचौ दूध न लेवौ वीर, अणछाण्यूं पय तजिवौ धीर।
अंतर एक महूरत वसा, उपजै जीव असंखित त्रसा ॥ १४४ ॥
जाको पय है तैसे जीव, प्रगटें इह भाषें जगपीव।
पचेंद्री सन्मूर्छन प्राणि, भैया तू जिनवचन प्रवाणि ॥ १४५ ॥
इह तौ दूध तणी विधि कही, अव सुनि दही महीकी सही।
जामण दीयौ है जिह दिणा, ताके दूजौ दिन शुभ गिणा ॥ १४६ ॥
पीछे दधि खावौ नहिं जोगि, इह भाषै जिनराज अरोगि।
दधिकों मथियौ पानी डारि, ताकौ नाम जु छाछि विचारि ॥ १४७ ॥
ताही दिवस होय सो भक्ष, यह जिन आज्ञा है परतक्ष।
मथता ही जा माहीं तोय, वहुस्यौ वारि न डास्यौ होय ॥ १४८ ॥
माथिया पाछे काचौ वारि, नाख्यौ सो लेवौ जु विचारि।
जेतौ काचा जलको काल, तेतौ ही ताको जु समाल। १४९ ॥
छाण्यूं जल सो काचौ रहै, एक महूरत जिनवर कहै।
आगें त्रसजीवा उपजंत, अणछाण्यांको दोष लगंत ॥ १५० ॥
तिक्त कषाय मिल्यौ जो नीर, सो प्राशुक भाख्यौ जिन वीर।
दोय पहर पहली ही गहौ, यह जिन आज्ञा हिरदै वहौ ॥ १५१ ॥
तातौ जल जो भात उकाल, आठ पहर मरजादा काल।
आगें सनमूर्छन उपजाहिं, पीवत धर्मध्यान सव जाहिं ॥ १५२ ॥

दोहा।

अघ-तरवरको मूल इह, मोह मिथ्यात जु होय।
राग दोष कामादिका, ए सकंध वहु जोय ॥ १५३ ॥
अशुभ क्रिया शाखा घनी, पल्लव चंचल भाव।
पत्र असंजम अव्रता, छाया नांहिं लखाव ॥ १५४ ॥
इह भव दुख भाखे पहुप, फल निगोद नरकादि।
इह अघ-तरुको रूप है, भववन मांहि अनादि ॥ १५५ ॥

चौपई ।

क्रिया कुठार गहै कर कोय, अघतरवरको काटै सोय ।
जे बेंचै दधि और जु मठा, उदर भरणके कारण शठा ॥ १५६ ॥
तिनकों मोल लेय जो खांहिं, ते नर अपनों जन्म नसांहिं ।
तातैं मोलतनों दधि तजौ, यह गुरु आज्ञा हिरदै भजौ ॥ १५७ ॥
दधी जमावै जा विधि व्रती, सो विधि धारहु आपहिं जती ।
दूध दुहायर ल्यावै जबै, ततछिन अगनि चढ़ावै तबै ॥ १५८ ॥
रूपौ गरम करै, पयमाहिं, जामण देय जु संसै नाहिं ।
जमे दही या विधि कर जोहु, बांधै कपरा माहीं सोहु ॥ १५९ ॥
बूँद रहै नहिं जलकी एक, तबहिं सुकाय धरै सुविवेक ।
दहीवड़ी इह भाषी सही, गृही जमावै तासों दही ॥ १६० ॥
अथवा दधिमें रूई भेय, कपरा भेय सुकाय धरेय ।
राखै इक द्वे दिन ही जाहि, बहुत दिना राखै नहिं ताहि ॥ १६१ ॥
जलमें घोलिर जामण देय, दधि ले तौ या विधि करि लेय ।
और भांति लेवौ नहिं जोगि, भाखें जिनवर देव अरोगि ॥ १६२ ॥
सीतकालकी इह विधि कही, उष्णरु वरषा राखै नहीं ।
जोहि सर्वथा छाँड़े दधी, तासम और न कोई सुधी ॥ १६३ ॥
सूद्रतनें पात्रनिको दुग्ध, दधि-घृत-छाछि भखें ते मुग्ध ।
उत्तम कुल हू जे मतिहीन, क्रियाहीन कुविसन अधीन ॥ १६४ ॥
तिनके घरको कछहु न जोगि, तिनकी किरिया बहुत अजोगि ।
दूध ऊंटणी भेड़िन तनों, निंद्यौ जिनमत माहीं घनों ॥ १६५ ॥
गो महिषी बिन और न भया, कबहु न लेनों नाहीं पया ।
महिषी दूध प्रमाद करेय, तातें गायनिको पय लेय ॥ १६६ ॥
नीरसव्रत धर दूधहिं तजै, तातें सकल दोष ही भजै ।
हाट बिकंते चूनरु दालि, बुधजन इनको खावौ टालि ॥ १६७ ॥
बींधौ खोटै पीसै दलै, जीवदया कैसे करि पलै ।
चूनो संखतणों कसतूरि, इनकों निंदि कहैं जिनसूरि ॥ १६८ ॥

दोहा ।

चरमसपरसी वस्तुकों, खातें दोष जु होय ।
ताको संक्षेपहिं कथन,–कहों, सुनों भविलोय ॥ १६९ ॥

मूये पसूके चर्मकों, चीरै जो चिंडार।
ता चंडालहिं परसिकै, छोति गिनें संसार॥ १७०॥
तौ कैसे पावन भयौ, मिल्यौं चर्मसों जोहि।
आमिष तुल्य प्रभू कहैं, याहि तजौ बुध सोहि॥ १७१॥
उपजें जीव अपार सुनि, जिनवानी उर धारि।
जा पसुको है चर्म जो, तैसेही निरधारि—॥ १७२॥
सन्मूर्छन उपजें जिया, तातें जल तघृ तेल—।
चर्म सपरसे त्यागिये, भाषें साधु अचेल॥ १७३॥
जैसे सूरज कांचके, रूई वीचि धरेय।
प्रगटै अगनि तहां सही, रूई भसम करेय॥ १७४॥
तैसे रस अर चर्मके, जोगै, जिय उपजंत।
खावेवारेके सकल, धर्मव्रत्त लुपिजंत॥ १७५॥
जीमत भोजनके विषै, मुवौ जिनावर देखि।
तजें नहीं जे असनकों, ते दुरबुद्धि विशेखि॥ १७६॥
जे गँवारपाठातनी, फली खाँय मतिहीन।
तिनके घट नहिं समुझि है, यह भाषें परवीन॥ १७७॥

रसोई, परंडा और चक्की आदिकी क्रियाओंका वर्णन।

चौपई।

जा घर माहिं रसोई होय, धारे चँदवा उत्तम सोय।
बहुरि परंडा ऊपर ताणि, उखली चाकी आदिक जाणि॥ १७८॥
फटकै नाज वीणिये जहां, चून चालिये भय्या तहां।
अर जिह ठौर जीमिये धीर, पुनि सोवेकी ठौहर वीर॥ १७९॥
तथा जहां सामायिक करै, अथवा श्रीजिनपूजा धरै।
इतने थानक चँदवा होय, दीखै श्रावकको घर सोय॥ १८०॥
चाकी अर उखली परमाण, ढकणा दीजै परम सुजाण।
श्वान विलाव न चाटै ताहि, तब श्रावकको धर्म रहाहि॥ १८१॥
मूसल धोय जतनसों धरै, निशि खोटन पीसन नहिं करै।
छाज तराजू अर चालणी, चर्मतणी भविजन टालणी॥ १८२॥
निशिकों पीसै खोटै दलै, जीवदया कबहू नहिं पलै।
चाकी गालै चून रहाय, चींटी आदि लगैं तसु आय॥ १८३॥

निशिकों पीसत खवर न परै, तातें निशिपीसन परिहरै ।
तथा रातिको भीज्यौ नाज, खावौ महापापको साज ॥ १८४ ॥
अंकूरे निकसें ता माहिं, जीव अनंता संसै नाहिं ।
तातें भीज्यौ नाज अखाज, तजौ मित्र अपने सुखकाज ॥ १८५ ॥
सुल्यौ सड्यौ गडियौ जो धान, फूली आयौ होय न खान ।
स्वाद-चलित खावौ नहिं वीर, रहिवौ अति विवेकसूं धीर ॥ १८६ ॥
नहिं छीवै गोवर गोमूत, मल-मूत्रादिक महा अपूत ।
छाणा ईंधन काज अजोगि, लकड़ीहू वींधी नहिं जोगि ॥ १८७ ॥
जेती जाति मुरब्वा होय, लेणा एक दिवस ही सोय ।
पीछै लागै मधुको दोष, तासम और न अघको पोष ॥ १८८ ॥
आथाणाका नाम अचार, भाखें अविवेकी अविचार ।
या सम अणाचार नहिं कोय, याको त्याग करें बुध सोय ॥ १८९ ॥
राह चल्यौ भोजन मति खाहु, उत्तम कुलको धर्म रखाहु ।
निकट रसोई भोजन करौ, अणाचार सब ही परिहरौ ॥
करौ रसोई भूमि निहारि, जीव-जन्तुकी वाधा टारि ॥ १९० ॥

वेसरी छंद ।

दोव खोदि मति करौ रसोई, जहां जीवकी हिंसा होई ।
मलिन वस्तु अवलोकन होवै, सो थानक तजि औरहिं जोवै ॥ १९१ ॥
नरम पूजणीसों प्रतिलेखै, करै रसोई चर्म न देखै ।
माटीके वासण इक वारा, दूजी विरियां नहीं अचारा ॥ १९२ ॥
जो दूजे दिन राखै कोई, सो नर सूद्रनि साद्रस होई ।
मिटै न सरदी कटै न काई, मिट्टीके वासणकी भाई ॥ १९३ ॥
उपजें जीव असंख्य जु तामें, वासी भोजन दूपण जामें ।
दया न किरिया उत्तमताई, माटीके वासणमें भाई ॥ १९४ ॥
तातें भले धातुके वासन, इह आज्ञा गावै जिनसासन ।
धातु-पात्रही नीका मंजै, सोई असन अक्रिया भंजै ॥ १९५ ॥
रहै असनको लेस जु कोई, सो वासन मांज्यौ नहिं होई ।
दया क्रियाको नास जु तामें, अन्नजोग उपजे जिय जामें ॥ १९६ ॥
मांजि धोय अर पूंछ जु राछा, राखै उज्जल निर्मल आछा ।
दयासहित करणी सुखदाई, करुणा विन करणी दुखदाई ॥ १९७ ॥

जीवनकूं संताप न देवै, तव आचार तणी विधि लेवै ।
विन जिनधर्मा उत्तम वंसा, देइन लेइसु राछनि संसा ॥ १९८ ॥
श्रावक-कुल-किरिया करि युक्ता, तिनके करको भोजन युक्ता ।
अथवा अपनें करको कीयौ, आरंभी श्रावकने लीयौ ॥ १९९ ॥
अन्यमती अथवा कुलहीना, तिनके करको कवहु न लीना ।
अन्य जाति जो भींटै कोई, तौ भोजन तजवौ है सोई ॥ २०० ॥
नीली हरी तजै जो सारी, तासम और नहीं आचारी ।
जो न सर्वथा छांड़ी जाई, तौ प्रत्येकफला अलपाई ॥ २०१ ॥
हरी सुकावौ योग्य न भाई, जामें दोष लगै अधिकाई ।
सूके अन्न औषधी लेवा, भाजी सूकी सव तजि देवा ॥ २०२ ॥
पत्र-फूल-कंदादि भखें जे, साधारण फल मूढ़ चखें जे ।
ते नहिं जानों जैनी भाई, जीभलंपटी दुरगति जाई ॥ २०३ ॥
पत्र-फूल-कंदादि सवै ही, साधारण फल सर्व तजै ही ।
अर तुम सुनहु विवेकी भैय्या, भेले भोजन कवहु न लैया ॥ २०४ ॥
मात तात सुत वांधव मित्रा, भेले भोजन अति अपवित्रा ।
महादोष लागै या माहीं, आमिषको सो संसै नाहीं ॥ २०५ ॥
अपने भोजनके जे पात्रा, काहूकूं नहिं देय सुपात्रा ।
सो भेले जीमें कहो कैसे, भाषें श्रीजिन नायक ऐसे ॥ २०६ ॥
माहिं सराय न भोजन भाई, जव श्रावकको व्रत रहाई ।
अंतिज नीचनके घर माहीं, कवहु रसोई करणी नाहीं ॥ २०७ ॥
मांस त्यागि व्रत जो दिढ़ धारै, नीचनको संसर्ग न कारै ।
उत्तम कुल है परमत धारी, तिनहूके भोजन नहिं कारी ॥२०८ ॥
जैनधर्म जिनके घट नाहीं, आनदेव [illegible]जा घर माहीं ।
तिनको छूयौ अथवा करको, क[illegible] न खावै तिनके घरको ॥ २०९ ॥
कुल-किरिया करि आप समाना, अथवा आप थकी अधिकाना ।
तिनको छुयौ अथवा करको, भोजन पावन तिनके घरको ॥ २१० ॥
अर जे छाणि न जाणें पाणी, अन्न वीणकी रीति न जाणी ।
भक्षाभक्ष भेद नहिं जानें, कुगुरु कुदेव मिथ्यामत मानें ॥ २११ ॥
तिनतें कैसी पाँति जु मित्रा, तिनको छूयौ है अपवित्रा ।
चर्म रोम मल हाथीदंता, जेहि कचकड़ा विमल कहंता ॥ २१२ ॥

तिनतें नहिं भोजन संबंधा, यह किरियाको कह्यौ प्रबंधा।
जंगम जीवनके जु शरीरा, अस्थि चर्म रोमादिक वीरा ॥ २१३ ॥
सब अपवित्रा जानि मलीना, थावर दल भोजनमें लीना।
रोमादिकको सपरस होवै, सो भोजन श्रावक नहिं जोवै ॥ २१४ ॥
नीला वस्त्र न भींटै सोई, नाहिं रेशमी वस्त्रहु कोई।
विन धोया है कपरा नाहीं, इह आचार जैनमत माहीं ॥ २१५ ॥
दया लिया है किरियाधारी, भोजन करै सोधि आचारी।
पांच ठाँवसूं भोजन नाहीं, धोति दुपट्टा विमल धराहीं ॥ २१६ ॥
विन उज्जलता भई रसोई, त्याग करै ताकूं विधि जोई।
पंचेंद्री पसुहूको छूयौ, भोजन तजै अवधितैं हूयौ ॥ २१७ ॥
सोधतनी सब वस्तु जु लेई, वस्तु असोधी त्यागै तेई।
अंतराय जो परै कदापी, तजै रसोई जीव निपापी ॥ २१८ ॥
दया क्रिया विन श्रावक कैसें, बुद्धि पराक्रम विन नृप जैसें।
मांस रुधिर मल अस्थि जु चामा, तथा मृतक प्राणी लखिरामा ॥ २१९ ॥
अर जो वस्तु तजी है भाई, सो कबहू जो थाल धराई–।
तौ उठि वैठै होउ पवित्रा, यह आज्ञा गावै जगमित्रा ॥ २२० ॥
दान विना जीमौ मति वीरा, इह आज्ञा धारो उर धीरा।
बिना दान भोजन अपवित्रा, शक्तिप्रमाण दान दो चित्रा ॥ २२१ ॥
मुनी आर्जिका श्रावक कोई, कै सुश्राविका उत्तम होई।
अथवा अव्रत सम्यकदृष्टी, जिह उर अमृतधारा वृष्टी ॥ २२२ ॥
इनकूं महाभक्ति करि देहो, तिनके गुण हिरदामें लेहो।
अथवा दुखित भुखित नरनारी, पसु-पंखी दुखिया संसारी ॥ २२३ ॥
अन्न वस्त्र जल सबकों देना, नरभव पायेका फल लेना।
तिर्यंचनिकूं तृण हू देना, दान तणें गुण उरमें लेना ॥ २२४ ॥
भोजन करत ओंठि जिन छांड़ौ, ओंठि खाय देही मति भांड़ौ।
काहूकूं उच्छिष्ट न देनी, यही वात हिरदै धरि लेनी ॥ २२५ ॥
अंतराय जो परै कदापी, अथवा छीवें खलजन पापी।
तब उच्छिष्ट तजन नहिं दोषा, इह भाषै बुधजन व्रत पोषा ॥ २६ ॥
घृत दधि दूध मिठाई मेवा, जोहि रसोई माहिं जु लेवा।
सो सब तुल्य रसोई जानों, यह गुरु आज्ञा हिरदै मानों ॥ २२७ ॥

जहां वापरै अन्न रसोई, तातें न्यारे राखै जोई ।
जेतौ चहिये तेतौ ल्यावे, आवै, सो वर्तनमें आवै ॥ २२८ ॥
पाकावस्तुरु भोजन भाई, एक भये वाहिर नहिं जाई ।
जल अर अन्न तणों पकवाना, सो भोजन ही सादृश जाना ॥ २२९ ॥
असन रसोई वाहर जावै, सो वढवोपा नाम कहावै ।
मौन विना भोजन वरज्या है, मौन सात श्रुत माहिं कह्या है ॥ २३० ॥
भोजन भजन सनान करंता, मैथुन वमन मलादि करंता
मूत्र करंता मौन जु होई, इह आज्ञा धारै वुध सोई ॥ २३१ ॥ ।
अंतराय अर मौन जु सप्ता, पावै श्रावक पाप अलिप्ता ।
अव जलकी किरिया सुनि धर्मी, जे नहिं धारें तेहि अधर्मी ॥ २३२ ॥
नदी तीर जो होय मसाणा, सो तजि घाट जु निंद्य वखाणा ।
और घाटको पाणी आणों, इह जिन आज्ञा हिरदै जाणों ॥ २३३ ॥
लोक भरन जे निजरच्या आवै, तिनके उपरलौ जल ल्यावै ।
सरवर माहिं गांवको पानी, आवै सो सरवर तजि जानी ॥ २३४ ॥
गाँवथकी जो दूरि तलावा, ताको जल ल्यावौ सुभ भावा ।
तजौ अपावन निंदक नीरा, अव वापीकी विधि सुनि वीरा ॥ २३५ ॥
जा माहीं न्हावैं नरनारी, कपरा धोवहिं दांतनिकारी ।
ता वापीको जल मति आनों, तहां न निर्मलताई जानों ॥ २३६ ॥
कूपतणी विधि सुनहु प्रवीना, जहां भरैं पानी कुलहीना ।
तहां जाहि मति भरवा भाई, तवै ऊंचको धर्म रहाई ॥ २३७ ॥
उत्तम नीच यहै मरजादा, यामें है कछुहू न विवादा ।
यवन अंतिजा सवसे हीना, इनको कूप सदा तजिदीना ॥ २३८ ॥
अव तुम वात सुनों इक और, शंका छांडि वखानौ और ।
धर्मरहितके पानी घरको, त्यागौ वारि अधर्मी नरको ।
विन साधर्मी उत्तम वंसा, पर घरको छांडौ जल अंसा ॥ २३९ ॥

दोहा ।

जलके भाजन धातुके, जो होवें घर माहिं ।
पूंछ-मांजि नित धोयवा, यामें संसै नाहिं ॥ २४० ॥
अर जे वासण गारके, गागर घट मटकादि ।
ते हि अल्पदिन राखिवौ, इह आज्ञा जु अनादि ॥ २४१ ॥

राति सुकाया वा घरा, माटी वासण वीर ।
तिनमें भात हि छाणिवौ, आछी विधिसों नीर ॥ २४२ ॥
जो नहिं राखै गारके, जलभाजन बुधिवान ।
राखै बासण धातुही, सो अतिही सुचिवान ॥ २४३ ॥

चौपई ।

इह तौ जलकी क्रिया बताई, अब सुनि जलगालन विधि भाई ।
रँगे वस्त्र नहिं छानों नीरा, पहरे वस्त्र न गालौ वीरा ॥ २४४ ॥
नाहिं पातरे कपड़े गालौ, गाढ़े वस्त्र छांड़ि अघ टालौ ।
रेजा दिढ़ आंगुल छत्तीसा,–लंबा, अर चौरा चौवीसा ॥ २४५ ॥
ताकों दो पुड़ता करि छानों, यहीं नांतणाकी विधि जानों ।
जल छाणत इक बूँदहु धरती,–मति डारहु भाषें महावरती ॥ २४६ ॥
एक बूँदमें अगणित प्राणी, इह आज्ञा गावै जिनवाणी ।
गलना चिहुंटी धरि मति दाबौ, जीवदयाको जतन धरावौ ॥ २४७ ॥
छाणे पाणी बहुते भाई, जल गलणा धोवै चितलाई ।
जीवाणीको जतन करौ तुम, सावधान है, विनवें क्या हम ! ॥ २४८ ॥
राखहु जलकी किरिया शुद्धा, तब श्रावकव्रत लहैं प्रबुद्धा ।
जा निवाँणकौ ल्यावौ वारी, ताही ठौर जिवाणी डारी ॥ २४९ ॥
नदी तलाव बावड़ी माहीं, जलमें जल डारौ सक नाहीं ।
कूप माहिं नाखौ जु जिवाणी, तौ इहि वात हिये परवाणी ॥ २५० ॥
ऊपरसूं डारौ मति भाई, दयाधर्म धारौ अधिकाई ।
भँवरकलीको डोल मंगावौ, ऊपर नीचे डोरि लगावौ ॥ २५१ ॥
द्वै गुण डोल जतन करि वीरा, जीवाणी पधरावौ धीरा ।
छाण्यां जलको इह निरधारा, थावरकाय कहैं गणधारा ॥ २५२ ॥
द्वै घटिका वीतै जो जाकों, अणछाण्यांको दोष जु ताकों ।
तिक्त कसाय भेलि किय फासू, ताहि अचित्त कहैं श्रुतभासू ॥ २५३ ॥
पहर दोय वीतै जो भाई, अगणित त्रस जीवा उपजाई ।
ड्योढ़ तथा पौणा दो पहरा, आगें मति वरतौ बुधि-गहरा ॥ २५४ ॥
भात उकाल उष्णजल जो है, सात पहरही लीनूं सो है ।
बीतें वसू जाम जल उष्णा, त्रस भरिया इह कहै जु विष्णा ॥ २५५ ॥
विष्णु कहावें जिनवर स्वामी, सर्व वातके अंतरजामी ।
या विधि पाणी दिवसें पीवौ, निसिकूं जळ छाडौ भविजीवौ ॥ २५६ ॥

असन पान अर खादिम स्वादी, निस त्यागें विन व्रत सब वादी।
दया विना नहिं व्रत्त जु कोई, निसभोजनमें दया न होई॥ २५७॥
छाण्यूं जाय न निसकों नीरा, वीण्यूं जाय न धाँनहु वीरा।
छाण वीण विन हिंसा होवै, हिंसातें नारक पद जोवै॥ २५८॥
अवर कथन इक सुनने योगा, सुनकर धारहु सुबुधी लोगा।
नारिनकों लागै वड रोगा, मास मास प्रति होहि अजोगा॥ २५९॥
ताकी किरिया सुनि गुणवंता, जा विधि भाषें श्रीभगवंता।
दिवस पांच वीतें सुचि होई, पांच दिनालौं मलिन जु सोई॥२६०॥

उक्तंच श्लोक।

त्रिपक्षे शुद्धयते सूती, रजसा पंचवासरं।
अन्यशक्ता च या नारी, यावज्जीवं न शुद्धयते॥ १॥
अर्थ—प्रसूता स्त्री डेढ़ महीनेमें शुद्ध होय है, रजस्वला पांच
दिवस गयें पवित्र होय है अर जो स्त्री परपुरुषसों रत भई
सो जन्मपर्यंत शुद्ध नाहीं, सदा अशुचि ही है॥

वेसरी छंद।

पांच दिवसलौं सगरे कामा,—तजिकर, रहिवौ एके ठामा।
कछु धंधा करवौ नहिं जाकों, भई अजोग अवस्था ताकों॥ २६१॥
निज भर्ताहूकों नहिं देखै, नीची दृष्टि धर्मकों पेखै।
दिवस पांचलौं न्हावौ उचिता, नितप्रति कपड़ा धोवौ सुचिता॥ २६२॥
काहूंसों सपरस नहिं करिवौ, न्यारे आसन वासन धरिवौ।
जो कवहूं ताके वासनसों, छुयौ राछ अथवा हाथनसों॥ २६३॥
तो वह वासन ही तजि देवौ, या विधि शुद्ध जिनाज्ञा लेवौ।
अन्न वस्त्र जल आदि सवैही, ताकौ छुऔ कछू नहिं लेही॥ २६४॥
कोरो पीस्यौ कछु नहिं गहिवौ, ताकौ ताके ठामहिं रहिवौ।
ठौर त्याग फिरवौ न कितैही, इह जिनवरकी आज्ञा है ही॥ २६५॥
करवौ नाहीं असन गरिष्ठा, नाहीं दिवसें शयन वरिष्ठा।
हास कुतूहल तैल फुलेला, इन दिन माहिं न गीत न हेला॥ २६६॥
काजल तिलक न जाकों करिवौ, नाहिं महावर मेहदी धरिवौ।
नख-केशादि सुधार न करनों, या विधि भगवत मारग धरनों॥ २६७॥

और त्रियनमें मिलवौ जाकों, पंच दिवस है वर्जित ताकों ।
चंडालीहूतें अति निंद्या, भाषें जिनवर मुनिवर वंद्या ॥ २६८ ॥
पंच दिवस पति ढिग नहिं जावै, अर नहिं वाके सज्या रचावौ ।
भूमिसयन है जोग्य जु ताकों, सिंगारादि न करनों जाकों ॥ २६९ ॥
छट्टे दिवस न्हाय गुणवंती, शुभ कपड़ा पहरै बुधिवंती ।
ह्वै पवित्र पतिजुत जिन अर्चा, करवावै, धारै शुभ चर्चा ॥ २७० ॥
पूजा दान करै विधि सेती, शुभ मारग माहीं चित देती ।
निसिकों अपने पति ढिग जावै, तौ उत्तम बालक उपजावै ॥ २७१ ॥
सुबुधि विवेकी सुव्रत धारी, शीलवंत सुंदर अविकारी ।
दाता सूर तपस्वी श्रुतधर, परम पुनीत पराक्रमभर नर ॥ २७२ ॥
जिनवर भरत वाहुवल सगरा, रामहणू पांडव अर विदरा ।
लव अंकुश प्रद्युम्न सरीसा, वृषभसेन गौतम स्वामीसा ॥ २७३ ॥
सेठ सुदर्शन जंबूस्वामी, गज सुकुमार आदि गुणधामी ।
पुत्र होय तौ या विधिका ह्वै, अर कवहू पुत्री ही जो ह्वै ॥ २७४ ॥
तो सुसील सौभाग्यवती अति, नेम-धरम परवीन हंसगति ।
वाल सुब्रह्मचारिणी शुद्धा, ब्राह्मी सुंदरिसी प्रतिबुद्धा ॥ २७५ ॥
चंदनबाला अनंतमतीसी, तथा भगवती राजमतीसी ।
अथवा पतिव्रता जु पवित्रा, ह्वै सुशील सीतासी चित्रा ॥ २७६ ॥
कै सुलोचना कौशल्यासी, शिवा रुकमनी वीशल्यासी ।
नीली तथा अंजना जैसी, रोहणि द्रौपद सुभद्रा तैसी ॥ २७७ ॥
अर जो कोऊ पापाचारी, पंच दिवस वीतें विन नारी ।
सेवै विकल अंध अविवेकी, ते चंडालनिहूतें एकी ॥ २७८ ॥
अति हि घृणा उपजै ता समये, तातें कवहु न एसे रमिये ।
फल लागै तौ निपट हि विकला, उपजै संतति सठ वेअकला ॥ २७९ ॥
सुत जन्में तौ कामी क्रोधी, लापर लंपट धर्म विरोधी ।
राजविक वसुसे अति मूढ़ा, ग्रंथनि माहिं अजस आरूढ़ा ॥ २८० ॥
सत्यघोष द्विज पर्वत दुष्टा, धवलसेठसे पाप सपुष्टा ।
पुत्री जन्में तोहि कुशीली, पर-पुरुषा-रत अति अवहीली ॥ २८१ ॥
राव जसोधरकी पटरानी, नाम अमृतादेवि कहानी ।
गई नरक छट्टे पति मारे, किये कुबजसों कर्म असारे ॥ २८२ ॥

रात्रि विषें कपरा है नारी, तौ इह वात हियेमें धारी।
पंच दिवसमें सो निसि नाहीं, ता विन पंच दिवस श्रुतमाहीं ॥ २८३ ॥
इह आज्ञा धारौ तजि पापा, तव पावौ आचार निपापा।
अव सुनि गृहपतिके षट कर्मा, जो भाषै जिनवरको धर्मा ॥ २८४ ॥
जिनपूजा अर गुरुकी सेवा, फुनि स्वाध्याय महासुख देवा।
संजम तप अर दान करौ नित, ए षट कर्म धरौ अपने चित ॥ २८५ ॥
इन कर्मनि करि पाप जु कर्मा, नासें, भविजन सुनि जिनधर्मा।
चाकी उखरि और वुहारी, चूला वहुरि परंडा धारी ॥ २८६ ॥
हिंसा पांच तथा घर धंधा, इन पापनि करि पाप हि वंधा।
तिनके नासनकों षट कर्मा, सुभ भाषै जिनवरको धर्मा ॥ २८७ ॥
ए सव रीति मूलगुण माहीं, भाषें श्रीगुरु संसै नाहीं।
आठ मूलगुण अंगीकारा, करौ भव्य तुम पाप निवारा ॥ २८८ ॥
अर तजि सात विसन दुखकारी, पापमूल दुरगति दातारी।
जूवा आमिष मदिरादारी, आखेटक चोरी परनारी ॥ २८९ ॥
जूवा सम नहिं पाप जु कोई, सव पापनिको इह गुरु होई।
जूवारीकौ संग जु त्यागौ, दूतकर्मके रंग न लागौ ॥ २९० ॥
पासा सारि आदि वहु खेला, सव खेलनिमें पाप हि भेला।
सकल खेल तजि जिन भजि प्रानी, जाकर होय निजातमज्ञानी ॥ २९१ ॥
ठौर ठौर मद मांस जु निंदै, तातें तजिये प्रभुकों वंदै।
तज वेश्या जो रजक-शिला सम, गनिकाको घर देखहु मति तुम ॥ २९२ ॥
त्यागि अहेरा दुष्ट जु कर्मा, है दयाल सेवौ जिनधर्मा।
करै अहेरा ते जु अहेरी, लहै नर्कमें आपद ढेरी ॥ २९३ ॥
क्षत्रीको इह होय न कर्मा, क्षत्रीको है उत्तम धर्मा।
क्षत् कहिये पीराको नामा, पर-पीरा-हर जिनको कामा ॥ २९४ ॥
क्षत्री दुर्वलकों किम मारै, क्षत्री तौ पर-पीरा टारै।
मांस खाय सो क्षत्री कैसो, वह तौ दुष्ट अहेरी जैसो ॥ २९५ ॥
अर जु अहेरी तजै अहेरा, दयापाल है जिनमत हेरा।
तौ वह पावै उत्तमलोका, सवकों जीवदया सुखथोका ॥ २९६ ॥
त्यागौ चोरी जो सुख चाहौ, ठग विद्या तजि ल्यो भवि लाहौ।
परधन भूले-विसरें आयौ, राखौ मति यह जिनश्रुत गायौ ॥ २९७ ॥

लूटि लेहु मति काहूको धन, परधन हरवेकों न धरौ मन।
चुगली करन, लुटावौ काकों, छांडौ भाई अन्यरमाकों ॥ २९८ ॥
काहूकी न धरोहरि दावौ, सूधो राखौ मित्र हिसावौ।
तौल माहिं घटि-वधि मति कारौ, इह जिन आज्ञा हिरदै धारौ ॥ २९९
दौड़ जु डांका सव तजि वीरा, पासीगरको संग न नीरा। *

दोहा।

तजौ चोरकी संगती, तासूं नहिं व्यौहार।
चोरयौ माल ग्रहौ मती, जो चाहौ सुख सार ॥ ३०० ॥
परदारा-सेवन तजौ, या सम दोष न और।
याकों निंदें जिनवरा जो त्रिभुवनके मौर ॥ ३०१ ॥
पापी सेवें परतिया, परें नर्कमें जांय।
तेतीसा-सागर तहां, दुख देखें अधिकाय ॥ ३०२ ॥
तातें माता वहन अर, पुत्री सम परनारि।
गिनों भव्य तुम भावसों, शीलवृत्त उर धारि ॥ ३०३ ॥
जे जेठी ते मात सम, समवय वहन समान।
आप थकी छोटी उमरि, सो निज सुता प्रमान ॥ ३०४ ॥
निंदे बिसन जु सात ए, सात नरक दुखदाय।
मन-वच-तन ए परिहरौ, भजौ जिनेसुर पांय ॥ ३०५ ॥
इन बिसनन करि वहु दुखी, भये अनंते जीव।
तिनको को वर्णन करै, ए निंदें जगपीव ॥ ३०६ ॥
कैयकके भाखूं भया, नाम, सूत्र अनुसार।
राव जुधिष्ठिर सारिखे, धर्मोत्तम अविकार ॥ ३०७ ॥
दुर्जोधनके हठ थकी, एक वार ही द्यूत।
रमिकर अति आपद लही, जीत्यौ कौरव धूत ॥ ३०८ ॥
हारि गये पांडव प्रगट, राज संपदा मान।
दुखी भये जो दीन जन, ग्रन्थनि माहिं वखान ॥ ३०९ ॥
पीछे तजि सव जगतकों, जगदीश्वर उर ध्याय।
श्रीजिनवरके लोककों, गये जुधिष्ठिर राय ॥ ३१० ॥
मांस भखनतें बक नृपति, गये सातवें नर्क।
तीस तीन सागर महा, पायौ दुख संपर्क ॥ ३११ ॥

* बाकी दो तुकें हस्तलिखित पुस्तकमें नहीं हैं।

अमल थकी जदुनंदना, रिषिकों रिस उपजाय।
भये भस्मभावा सवै, पाप करम फल पाय ॥ ३१२ ॥
कैयक उवरे जिनजती, भये मुनीसुर जेह।
येह कथा जिनसूत्रमें, तुम परगट सुन लेह ॥ ३१३ ॥
चारुदत्त इक सेठ हौ, करि गनिकासों प्रीति।
लही आपदा जिह घनी, गई संपदा वीति ॥ ३१४ ॥
ब्रह्मदत्त पापी महा, राजा हौ मृग मार।
आखेटक अपराधतें, बूड़्यौ नरक मझार ॥ ३१५ ॥
चोरी करि शिवभूति शठ, लहे वहुत दुख दोष।
ताकी कथा प्रसिद्ध है, कहिवेको सतघोष ॥ ३१६ ॥
परदारा पर चित धरी, रावणसे वलवंत।
अपजस लहि दुरगति गये, जे प्रतिहरि गुणवंत ॥ ३१७ ।
विसन वुरे विसनी वुरे, तजौ इनोंतें प्रीति।
व्रत्त क्रियाके शत्रु ये, इनमें एक न नीति ॥ ३१८ ॥
अव सुनि भैया वात इक, गुण इकवीसा जेह।
इनहीं मूलगुणानिकों, परिवारो गनि लेह ॥ ३१९ ॥
लज्जा दया प्रसांतता, जिनमारग परतीति।
पर औगुनको ढांकिवौ, पर-उपगार सुरीति ॥ ३२० ॥
सोमदृष्टि गुणगृहणता, अर गरिष्ठता जानि।
सवसों मित्राई सदा, वैरभाव नहिं मानि ॥ ३२१ ॥
पक्ष पुनीत पुमानकी, दीरघदरसी सोय।
मिष्ट वचन वोलै सदा, अर वहुज्ञाता होय ॥ ३२२ ॥
अति रसज्ञ धर्मज्ञ जो, है कृतज्ञ फुनि तज्ञ।
कहै तज्ञ जाकूं वुधा, जो होवै तत्वज्ञ ॥ ३२३ ॥
नहीं दीनता भाव कछु, नहिं अभिमान धरेय।
सवसों समताभाव है, गुणको विनौ करेय ॥ ३२४ ॥
पापक्रिया सव परिहरौ, ए गुण होंय इकीस।
इनकों धारै सो सुधी, लहै धर्म जगदीश ॥ ३२५ ॥
इन गुण वाहिर जीव जो, श्रावक नाहिं गनेय।
श्रावकव्रतके मूल ए, श्रीजिनराज कहेय ॥ ३२६ ॥

श्रावक-व्रत सब जातिको, जति-व्रत द्विज, नृप, वानि ।
और जाति नहिं है जती, इह जिन आज्ञा जानि ॥ ३२७ ॥
अर एते विणज न करै, श्रावक पड़िमाधार ।
धान पान मिष्टान अर, मोम हींग हरतार ॥ ३२८ ॥
मादिक लवण जु तेल घृत, लोह लाख लकड़ादि ।
दल फल कंदादिक सबै, फूल फूस सीसादि ॥ ३२९ ॥
चीट चावका जेवड़ा, मूंज डाभ सिण आदि ।
पसु पंखी नहिं विणजवो, सावन मधु नीलादि ॥ ३३० ॥
अस्थि चर्म रोमादि मल, मिनख वेचवौ नाहिं ।
बंदिपकड़नी नाहिं कछु, इह आज्ञा श्रुत माहिं ॥ ३३१ ॥
पशु-भाड़े मति द्यौ भया, त्यागि शस्त्र व्यौपार ।
वध वंधन विवहार तजि, जो चाहौ भवपार ॥ ३३२ ॥
जहां निरंतर अगिनिको, उपजै पापारंभ ।
सो व्यौहार तजौ सुधी, तजौ लोभथल दंभ ॥ ३३३ ॥
कंदोई लोहार अति, सुर्णकार शिल्पादि ।
सिकलीगर वाटी प्रमुख, अवर लखेरा आदि ॥ ३३४ ॥
छीपी रंगारादिका, अथवा कुंभजुकार ।
व्रत्त धारि नर नहिं करै, उद्यम हिंसाकार ॥ ३३५ ॥
रंग्यो नीलथकी जिको, सो कपरा तजि वीर ।
अति हिंसाकर नीपनों, है अजोगि वह चीर ॥ ३३६ ॥
कूप तड़ाग न सोखिये, करिये नहीं अनर्थ ।
हिंसक जीव न पालिये, यह धारौ श्रुत अर्थ ॥ ३३७ ॥
विष न विणजवौ है भया, रसा विणजवौ नाहिं ।
नहीं सीदरी सूतली, होय विणजके माहिं ॥ ३३८ ॥
विणज करौ तो रतनको, कै कंचन रूपादि ।
कै रूई कपड़ा तनों, मति खोवौ भव वादि ॥ ३३९ ॥
जिनमें हिंसा अल्प है, ते व्यापार करेय ।
अति हिंसाके विणज जे, ते सबही तजदेय ॥ ३४० ॥
ए सब रीति कही बुधा, मूलगुणनिमें ठीक ।
ते धारौ सरधा करी, त्यागौ वात अलीक ॥ ३४१ ॥
जैसें तरुके जड़ गिनी, अरु मंदिरके नींव ।

तैसें ए वसु मूलगुण, तपजप व्रतकी सींव ॥ ३४२ ॥

वेसरी छंद ।

ए दुरगति दाता न कदेही, शिव-कारण है कहइ विदेही ।
सम्यक सहित महाफल दाता, सव व्रत्तनिको सम्यक ताता ॥ ३४३ ॥
समकितसों नहिं और जु धर्मा, सकल क्रियामें सम्यक पर्मा ।
जाके भेद सुनों मन लाए, जाकरि आतम तत्त्व लखाए ॥ ३४४ ॥
भेद वहुत पर द्वै वड़ भेदा, निश्चै अर विवहार सुवेदा ।
निश्चय सरधा निज आतमकी, रुचि परतीति जु अध्यातमकी ॥ ३४५ ॥
सिद्ध समान लखै निज रूपा, अतुल अनंत अखंड अनूपा ।
अनुभव-रसमें भीग्यौ भाई, धोई मिथ्यामारग काई ॥ ३४६ ॥
अपनों भाव अपुनमें देखौ, परमानंद परम रस पेखौ ।
तीन मिथ्यात चौकड़ी पहली, तिन करि जीवनिकी मति गहली ॥ ३४७ ॥
मोह-प्रकृति हैं अट्ठावीसा, सात प्रवल भाषैं जगदीसा ।
सात गये सवही नसि जावें, सर्व गये केवलपद पावें ॥ ३४८ ॥
उपशम क्षय-उपशम अथवा क्षय, सात तनों कीयौ तजि सव भय ।
ये निश्चय समकितको रूपा, उपजै उपशम प्रथम अनूपा ॥ ३४९ ॥
सुनि सम्यक व्यवहार प्रतीता, देव अठारा दोष वितीता ।
गुरु निरग्रंथ दिगंवर साधू, धर्म दयामय तत्त्व अराधू ॥ ३५० ॥
तिनकी सरधा दिढ़ करि धारै, कुगुरु कुदेव कुधर्म निवारै ।
सप्त तत्त्वको निश्चय करिवौ, यह विवहार जु सम्यक धरिवौ ॥ ३५१ ॥
जीव अजीवा आस्रव वंधा, संवर निर्जर मोक्ष प्रवंधा ।
पुण्य पाप मिलि नव ए होई, लखै जथारथ सम्यक सोई ॥ ३५२ ॥
ये हि पदारथ नाम कहावैं, एई तत्त्व जिनागम गावैं ।
नव पदार्थमें जीव अनंता, जीवन माहिं आप गुणवंता ॥ ३५३ ॥
लखै आपकों आप हि माहीं, सो सम्यकदृष्टी शक नाहीं ।
ए दोय भेद कहै समकितके, ते धारौ कारण निज हितके ॥ ३५४ ॥
सम्यकदृष्टी जे गुण धारै, ते सुनि जे भव-भाव विडारै ।
अठ मद त्यागै निर्मद होई, मार्दव धर्म धरै गुन सोई ॥ ३५५ ॥
राजगर्व अरु कुलको गर्वा, जाति मान वल मान जु सर्वा ।
रूप तनूं मद तपको माना, संपति अर विद्या अभिमाना ॥ ३५६ ॥

ए आठो मद कवहु न धारै, जगमाया तृण-तुल्य निहारै ।
अपनी निधि लखि अतुल अनंती, जो परपंचनमें न वसंती ॥३५७॥
अविनश्वर सत्ता विकसंती, ज्ञान-दृगोत्तम द्युति उलसंती ।
तामें मगन रहै अति रंगा, भव-माया जानें क्षणभंगा ॥ ३५८ ॥
तीन मूढ़ता दूरी नाखै, देव धर्म गुरु निश्चै राखै ।
कुगुरु कुदेव कुधर्म न पूजा, जैन विना मत गहै न दूजा ॥ ३५९ ॥
छह जु अनायतनी बुधि त्यागै, त्याग मिथ्यामत जिनमत लागै ।
कुगुरु कुदेव कुधर्म वड़ाई, अर उनके दासनिकी भाई ॥ ३६० ॥
कवहु करै नहिं सम्यकदृष्टी, जे करिहैं ते मिथ्यादृष्टी ।
शंका आदि आठ मल छांड़ै, करि परपंच न आपो भांड़ै ॥ ३६१ ॥
जिनवचमें शंका नहिं ल्यावै, जिनवाणी उर धरि दिढ़ भावै ।
जगकी वांछा सब छिटकावै, निसप्रह भाव अचल ठहरावै ॥ ३६२ ॥
जिनके अशुभ उदै दुख पीरा, तिनकी पीर हरै वर वीरा ।
नाहिं गलानि धरै मन माहीं, साँची दृष्टि धरै शक नाहीं ॥ ३६३ ॥
कवहू परको दोप न भाखै, पर उपगार दृष्टि नित राखै ।
अपनों अथवा परको चित्ता, चल्यौ देखि थांभै गुणरत्ता ॥ ३६४ ॥
थिरीकरण समकितकौ अंगा, धारै समकित धार अभंगा ।
जिनधर्मीसूं अति हित राखै, सो जिनमारग अमृत चाखै ॥ ३६५ ॥
तुरत जात वछरा परि जैसें, गाय जीव देय है तैसें ।
साधर्मी परि तन धन वारै, गुनवतसल्य धरै अघ टारै ॥ ३६६ ॥
मन वच काय करै वह ज्ञानी, जिनदासनिको दासा जानी ।
जिनमारगकी करै प्रभावन, भावै ज्ञानी चउविधि भावन ॥ ३६७ ॥
सव जीवनिमें मैत्रीभावा, गुणवंतानिकूं लखि हरसावा, ।
दुखी देखि करुणा उर आनें, लखि विपरीता राग न छानें ॥ ३६८ ॥
दोषहु नाहीं है मध्यस्था, ए चउ भावन भावै स्वस्था ।
जिनचैत्याले चैत्य करावै, पूजा अर परतिष्ठा भावै ॥ ३६९ ॥
तीरथजात्रा सूत्र जु भक्ती, चउविधि संघसेव है युक्ती ॥
ए हैं सप्त क्षेत्र परासिद्धा, इनमें खरचै धन प्रतिबुद्धा ॥ ३७० ॥
जीरण चैत्यालयकी मरमति,—करवावै, अर पुस्तककी अति ।
साधर्मीकूं बहु धन देवै, या विधि परभावन गुन लेवै ॥ ३७१ ॥

कहे अंग ए अष्ट प्रतक्षा, नहिं धरवौ सोई मल लक्षा।
इन अंगनि करि सीझै प्रानी, तिनको सुजस करै जिनवानी ॥ ३७२ ॥
जीव अनंत भये भवपारा, कौलग कहिये नाम अपारा।
कैयकके शुभ नाम वखानों, श्रुत अनुसार हिएमें आनों ॥ ३७३ ॥
अंजन और अनंतमती जो, राव उदायन कर्म हतीजो।
रेवति राणी धर्म-गढ़ासा, सेठ जिनेन्द्रभक्त अघ नासा ॥ ३७४ ॥
पर औगुन ढाँके जिह भाई, जिनवरकी आज्ञा उर लाई।
वारिषेण औ विष्णुकुमारा, वज्रकुमार भवोदधि तारा ॥ ३७५ ॥
अष्ट अंग करि अष्ट प्रसिद्धा, और वहुत हूए नर सिद्धा।
अठ मद त्यागि अष्ट मल त्यागा, तीन मूढ़ता त्यागि सभागा ॥ ३७६ ॥
षट जु अनायतनाको तजिवौ, ए पचीस महागुण भजिवौ।
अर तजिवौ तिनकूं भय सप्ता, निरभै रहिवौ दोष अलिप्ता ॥ ३७७ ॥
इह भव परभवको भय नाहीं, मरन वेदना भय न धराहीं।
हमरौ रक्षक कोऊ नाहीं, इह संसै नाहीं घट माहीं ॥ ३७८ ॥
सवको रक्षक आयु जु कर्मा, कै जिनवर जिनवरको धर्मा।
और न रक्षक कोई काकों, इह गुरु गायौ गाढ़ जु ताकों ॥ ३७९ ॥
अर नहिं चोर तनों भय जाकों, अपनों निजधन पायौ ताकों।
चिदघन धन चोरयौ नहिं जावै, तातें चित्त अडोल रहावै ॥ ३८० ॥
अर नहिं अकस्मात भय कोई, जिन सम लखियौ निज तन जोई।
चेतन तत्त्व लख्यौ अविनासी, तातें ज्ञानी है सुखरासी ॥ ३८१ ॥
काहूको भय तिनकों नाहीं, भयरहिता निरवैर रहाहीं।
सप्त भया त्यागें गुण होई, सप्त विसन तजिवौ शुभ जोई ॥ ३८२ ॥
सप्त सप्त मिलि चौदा गुन ए, मिले पचीसा गुणता जु लए।
पंच अतीचारनकों टारौ, शंका कांक्षा कवहु न धारौ ॥ ३८३ ॥
नहिं दुरगंछा भाव कवैही, नहिं मिथ्यात सराह करैही।
नहीं स्तवन मिथ्यादृष्टीको, यह लक्षण सम्यकदृष्टीको ॥ ३८४ ॥
पंच अतीचारनकूं त्यागा, सो है पंच गुणा वड़भागा।
मिलि गुणताली चौवालीसा, गुणा होंहिं भाषें जगदीसा ॥ ३८५ ॥
इनकूं धारै सम्यकती सो, भवभय तजि पावै मुक्ती सो।
ए गुन मिथ्यातीके नाहीं, आतमज्ञान न मिथ्या माहीं ॥ ३८६ ॥

उक्तंच गाथा ।

मयमूढमणायदणं, संकाइवसणभयमईयारं ।
एसिं चउदालेदे, ण संति ते हुंति सद्दिट्ठी ॥ १ ॥

अर्थ-जिनके अष्ट मद नाहीं, तीन मूढ़ता नाहीं, षट अनायतन नाहीं, शंकादिक अष्ट मल नाहीं, सत व्यसन नाहीं, सप्त भय नाहीं, पंच अतीचार नाहीं, ए चवालीस नाहीं ते सम्यक दृष्टी कहे ।

दोहा ।

व्रतके मूल जु मूलगुण, सम्यक सबको मूल ।
कह्यौ मूलगुणको सुजस, सुनि व्रतविधि अनुकूल ॥ ३८७ ॥

इति क्रियाकोशे मूलगुणनिरूपण ।

बारह व्रत वर्णन ।

दोहा ।

द्वादस व्रतनिकी सुविधि, जा विधि भाषी वीर ।
सो भाषों जिनगुन जपी, जे धारैं ते धीर ॥ १ ॥
द्वादस व्रत माहें प्रथम, पंच अणुव्रत सार ।
तीन गुणव्रत चारि फुनि, शिक्षाव्रत आचार ॥ २ ॥
हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
एकदेश त्यागी गृही, सब त्यागी रिषिराज ॥ ३ ॥
सब व्रतनिके आदिही, जीवदया-व्रत सार ।
दया सारिसौ लोकमें, नहिं दूजौ उपगार ॥ ४ ॥
सिद्ध समान लख्यौ जिनें, निश्चय आतमराम ।
सकल आतमा आपसे, लखै चेतना-धाम ॥ ५ ॥
ते सब जीवनकी दया, करैं विवेकी जीव ।
मन वच तन करि सर्वको, शुभ वांछै जु सदीव ॥ ६ ॥
सुखसों जीवौ जीव सहु, क्लेश कष्ट मति होह ।
तजौ पापकों सर्वही, तजौ परस्पर द्रोह ॥७ ॥
काहूको हु पराभवा, कबहु करौ मति कोइ ।
इह हमरी वांछा फलौ, सुख पावौ सहु लोइ ॥ ८ ॥
सबके हितकी भावना, राखै परम दयाल ।
दयाधर्म उरमें धरी, पावै पद जु विशाल ॥ ९ ॥

थावर पंच प्रकारके, चउविधि त्रस परवानि।
सबसों मैत्रीभावना, सो करुणा उर आनि ॥ १० ॥
प्रथीकाय जलकायका, अगिनिकाय अर वाय।
काय बहुरि है वनस्पति, ए थावर अधिकाय ॥ ११ ॥
वे इंद्री ते इन्द्रिया, चउ इंद्रिय पंचेन्द्रि।
ए त्रस जीवा जानिये, भाषैं साधु जितेन्द्रि ॥ १२ ॥
कृत-कारित-अनुमोद करि, धरैं अहिंसा जेह।
ते निर्वाणपुरी लहै, चउ गति पाणी देह ॥ १३ ॥
निरारंभ मुनिकी दसा, तहां न हिंसा लेस।
छहूं काय पीराहरा, मुनिवर रहित कलेस ॥ १४ ॥
गृहपतिके गृहजोगतें, कछु आरंभ जु होइ।
तातैं थावरकायको, दोष लगै अघ सोइ ॥ १५ ॥
पै न करै त्रसघात वह, मन वच तन करि धीर।
त्रस कायनको पीहरा, जानैं परकी पीर ॥ १६ ॥
बिना प्रयोजन वह बुधी, थावर हू पेरै न।
जो निशंक थावर हनैं, जिनके जिन नीरै न ॥ १७ ॥
हिंसाको फल दुरगती, दया सुर्ग-सुख देइ।
पहुंचावैं फुनि शिवपुरे, अविनाशी जु करेइ ॥ १८ ॥
दया मूल जिनधर्मको, दया समान न और।
एक अहिंसा व्रत्तही, सब व्रत्तनिको मौर ॥ १९ ॥
यमनियमादिक बहुत जे, भाषें श्रीजिनराय।
ते सहु करुणा कारणैं, और न कोइ उपाय ॥ २० ॥
बिना जैनमत यह दया, दूजे मत दीखै न।
दयामई जिनदास है, हिंसा विधि सीखै न ॥ २१ ॥
दया दया सब कोउ कहै, मर्म न जानैं मूर।
अंणछाण्यूं पाणी पिवै, तें हि दयातें दूर ॥ २२ ॥
दया भली सबही रटै, भेद न पावै कोय।
बरतै अणगाल्यौ उदक, दया कहांतें होय ॥ २३ ॥
दया विना करणी वृथा, यह भाषें सब लोक।
न्हावै अणगाले जलहिं, बाँधै अघके थोक ॥ २४ ॥

छाण्यूं जल घटिका जुगल, पाछैं अगल्यौं होय ।
विना जैन यह वारता, और न जानें कोय ॥ २५ ॥
दया समान न धर्म कोउ, इह गावें नरनारि ।
निशा माहिं भोजन करें, जाहि जमारो हारि ॥ २६ ॥
दया जहांही धर्म है, इह जानें संसार ।
पै नहिं पावै भेदकों, भक्ष अभक्ष विचार ॥ २७ ॥
दया वड़ी सव जगतमें, धारैं नाहिं तथापि ।
परदारा परधन हरैं, परैं नरकमें पापि ॥ २८ ॥
दया होय तौ धर्म है, प्रगट वात है एह ।
तजै न तौहू द्रोह पर, धरै न धर्मसनेह ॥ २९ ॥
व्रत्त करै फुनि मूढ़धी, अन्न त्यागि फल खाय ।
कंदमूल भक्षण करें, सो व्रत निहफल जाय ॥ ३० ॥
दयाधर्म कीजे सदा, इह जंपै जग सर्व ।
नहिं तथापि सव सम गिनें, हनें न आठूं गर्व ॥ ३१ ॥
परम धर्म है यह दया, कथै सकल जन एह ।
चुगली-चांटी नहिं तजै, दया कहांतें लेह ॥ ३२ ॥
दयाव्रत्तके कारणें, जे न तजें आरंभ ।
तिनके करुणा होय नहिं, इह भाषें परब्रह्म ॥ ३३ ॥
दयाधर्मकों छांड़िकै, जे पसुघात करेय ।
ते भव भव पीड़ा लहै, मिथ्या मारग सेय ॥ ३४ ॥
दया वतावें सव मता, समझ न काहू माहिं ।
धर्म गिनें हिंसा विषें, जतन जीवको नाहिं ॥ ३५ ॥
दया नहिं परमत विषें, दया जैनमत माहिं ।
विना फैन इह जैन है, यामें संसै नाहिं ॥ ३६ ॥
दया न मिथ्यामत विषें,—कही, कहा है वीर ।
करुणा सम्यकभाव है, यह निश्चय धरि धीर ॥ ३७ ॥
काहेके वे देवता, करें जु मांस अहार ।
ते चिंडाल वखानिये, तथा श्वान मंजार ॥ ३८ ॥
देवनिको आहार है,—अमृत, और न कोय ।
मांसासी देवानिकूं, कहै सु मूरिख होय ॥ ३९ ॥

मंगल कारण जे जड़ा, जीवनिको जु निपात ।
करें, अमगल ते लहैं होय महा उतपात ॥ ४० ॥
जे अपने जीवे निमित, करें पारकों नास ।
ते लहि कुमरण वेगही, गहैं नरकको वास ॥ ४१ ॥
मद्य मांस मधु खाय करि, जे बांधें अघकर्म ।
ते काहेके मिनख हैं, इह भाखे जिनधर्म ॥ ४२ ॥
कंदमूल फल खाय करि, करैं जु वनको वास ।
तिनको वनवास जु वृथा, होय दयाको नास ॥ ४३ ॥
विना दया तप है कुतप, जाकरि कर्म न जांय ।
हिंसक मिथ्यामत धरा, नरक निगोद लहाय ॥ ४४ ॥
जैसो अपनों आतमा, तैसे सबही जीव ।
यह लखि करुणा आदरौ, भाखैं त्रिभुवन पीव ॥ ४५ ॥

जोगीरास ।

काहेके ते तापस दुष्टा, करुणा नाहिं धरावें ।
कर अगनी आरंभ सपष्टा, जीव अनेक जरावें ॥ ४६ ॥
ते तजि कपड़ा तपके कारण, धारें शठमति चर्मा ।
ते न तपस्वी भवदधि तारण, बांधें अशुभ जु कर्मा ॥ ४७ ॥
रिषि तौ ते जे जिनवर भक्ता, नगन दिगंवर साधा ।
भव तनु भोगथकी जु विरक्ता, करें न थिर चर बाधा ॥ ४८ ॥
मैत्री मुदिता करुणा भावा, अर मध्यस्थ जु धारैं ।
राग दोष मोहादि अभावा, ते भवसागर तारैं ॥ ४९ ॥
विना दया नहिं मुनिव्रत होई, दया विना न गृही है ।
उभय धर्मको सरवस करुणा, जा विन धर्म नही है ॥ ५० ॥
दया करौ मुखतें सव भाखें, भेद न पावें पूरा ।
वासी भोजन भखि करि भोंदू, रहैं धर्मतें दूरा ॥ ५१ ॥
वासी भोजन माहिं जीव वहु, भखें दया नहिं होई ।
दया विना नहिं धर्म न व्रत्ता, पावें दुरगति सोई ॥ ५२ ॥
अत्थाणा संधाण मथाणा, कांजी आदि अहारा ।
करें विवेकवाहिरा कुबुधी, तिनके दया न धारा ॥ ५३ ॥
मांसासीके घरको भोजन, करें कुमतिके धारी ।
तिनके घट करुणा कहु कैसें, कहां शोध आचारी ॥ ५४ ॥

तातौ पाणी आठ हि पहरा, आगें त्रस उपजाहीं ।
ताकी तिनकों सुधि बुधि नाहीं, दया कहां तिन माहीं ॥ ५५ ॥
निसिको पीस्यौ निसिको रांध्यौ, वींधौ सीधौ खावै ।
हरितकाय रांधी सब स्वादै, दया कहांतें पावै ॥ ५६ ॥
चर्म-पतित घृत तेल जलादिक, तिनमें दोष न मानें ।
गिनें न दोष हींगमें मूढ़ा, दया कहांतें आनें ॥ ५७ ॥
हाटें बिकते चून मिठाई, कहें तिनें निरदोषा ।
भखें अजोगि अहार सबैही, दया कहांतें पोषा ॥ ५८ ॥
दूध दही अरु छाछि नीरको, जिनके कछु न विचारा ।
दया कहां है तिनके भाई, नहीं शुद्ध आचारा ॥ ५९ ॥
सूग नहीं मल मूत्रादिककी, ढोर समाना तेई ।
तिनकूं जे नर जैनी जानें, ते नहिं शुभमति लेई ॥ ६० ॥
बाधक जिनशासन सरधाके, साधकता कछु नाहीं ।
साधु गिनें तिनकूं जे कोई ते मूरख जग माहीं ॥ ६१ ॥
एक बारको नियम न कोई, बार बार जलपाना ।
बार बार भोजनको करिवौ, तिनके व्रत्त न जाना ॥ ६२ ॥
त्रसकायाको दूषण जामें, सो नहिं प्रासुक कोई ।
भखै असूत्री शठमति जोई, नाहिं व्रतधर होई ॥ ६३ ॥
दयाधर्मको परकाशक है, जिनमंदिर जग माहीं ।
ताहि न पूजें पापी जीवा, तिनके समकित नाहीं ॥ ६४ ॥
कारण आतम ध्यान तणीं है, श्रीजिनप्रतिमा शुद्धा ।
ताहि न वंदें निंद जु तेई, जानहु महा अबुद्धा ॥ ६५ ॥
बूढ़ें नरक मँझार महा शठ, जे जिनप्रतिमा निंदें ।
जाहिं निगोद विवेक-वितीता, जे जिनगृह नहिं वंदें ॥ ६६ ॥
अज्ञानी मिथ्याती मूढ़ा, नहीं दयाको लेशा ।
दयावंत तिनकूं जे भाषें, ते न लहें निजदेशा ॥ ६७ ॥

दोहा ।

सुर नर नारक पशुगती, ए चारों परदेश ।
पंचमगति निज देश है, यामें भ्रांति न लेश ॥ ६८ ॥
पंचमगतिको कारणा, जीवदया जग माहिं ।
दया सारिखौ लोकमें, और दूसरौ नाहिं । ६९ ।

दया दोय विधि है भया, स्व-पर दया श्रुत माहिं ।
सो धारौ दृढ़ चित्तमें, जा करि भव-भ्रम जाहिं ॥ ७० ॥
स्वदया कहिये सो सुधी, रागादिक अरि जेह ।
इनें जीवकी शुद्धता, टारि तिन्हें शिव लेह ॥ ७१ ॥
प्रगट करै निज शुद्धता, रागादिक मद मोरि ।
निज आतम रक्षा करै, डारै कर्म जु तोरि ॥ ७२ ॥
सो स्वदया भाषें गुरू, हरै कर्म-विस्तार ।
निज हि बचावै कालतें, करै जीव निस्तार ॥ ७३ ॥
षट कायाके जीव सहु, तिनतें हेत रहाय ।
वैरभाव नहिं कोयसूं, सो पर-दया कहाय ॥ ७४ ॥
दया मात सब जगतकी, दया धर्मको मूल ।
दया उधारै जगततें, हरै जीवकी भूल ॥ ७५ ॥
दया सुगुनकी वेलरी, दया सुखनकी खान ।
जीव अनंता सीजिया, दयाभाव उर आन ॥ ७६ ॥
स्व-पर दया दो विधि कही, जिनवाणीमें सार ।
दयावंत जे जीव हैं, ते पावें भवपार ॥ ७७ ॥

सवैया इकतीसा ।

सुकृतकी खानि इंद्रपुरीकी नसेंनी जानि,
पाप-रज खंडनकों पौनरासि पेखिये ।
भवदुख-पावक बुझायवेकूं मेघमाला,
कमला मिलायवेकों दूती ज्यूं विसेखिये ॥
मुकति-वधूसों प्रीति पालिवेकों आली सम,
कुगतिके द्वार दिढ़ आगलसी देखिये ।
ऐसी दया कीजै चित्त तिहूं लोक प्राणी हित,
और करतूति काहू लेखेमें न लेखिये ॥ ७८ ॥

दोहा ।

जो कवहूं पाषाण जल,—माहिं तिरै अर भान— ।
ऊगै पश्चिमकी तरफ, दैवजोग परवान ॥ ७९ ॥
शीतल गुन ह्वै अगनिमें, धरा पीठ उलटेय ।
तौहू हिंसाकर्मतें, नाहीं शुभमति लेय ॥ ८० ॥

जो चाहै हिंसा करी, धर्म मुकतिको मूल ।
सो अगनीसूं कमलवन, अभिलाषै मतिभूल ॥ ८१ ॥
प्राणघात करि जो कुधी, वांछै अपनी वृद्धि ।
सो सूरजके अस्ततें, चाहैं वासर शुद्धि ॥ ८२ ॥
जो चाहै व्रत-धर्मकों, करै जीवको नास ।
सो शठ अहिके वदनतें, करै सुधाकी आस ॥ ८३ ॥
धर्मबुद्धि करि जो अबुध, हनै आपसे जीव ।
सो विवाद करि जस चहै, जल-मंथनतें घीव ॥ ८४ ॥
जैसें कुमती नर महा,-कालकूटकूं पीय ।
जीवौ चाहै जीव हति, तैसें श्रेय स्वकीय ॥ ८५ ॥
करि अजीर्ण दुरबुद्धि जो, इच्छै रोग-निवृत्ति ।
तैसें शठ परघात करि, चाहै धर्म-प्रवृत्ति । ८६ ॥
दयाथकी इह भव सुखी, परभव सब सुख होय ।
सुरग मुकति दायक दया,-धारै, उधरै सोय ॥ ८७ ॥
इंद नरिंद फणिंद अर, चंद सूर अहमिंद ।
दयाथकी इह पद लहै, होवै देव जिणंद ॥ ८८ ॥
भव सागरके पार ह्वै, पहुँचै पुर निर्वान ।
दया तणों फल मुख्य सो, भाषै श्रीभगवान ॥ ८९ ॥
हिंसा करिकै राजसुत, सुबल नाम मतिहीन ।
इह भव पर भव दुख लहे, हिंसा तजौ प्रवीन ॥ ९० ॥
चौदसिके इक दिवसकी, दया धारि चिंडार ।
इह भव नृप-पूजित भयौ, लह्यौ, सुरग सुख सार ॥ ९१ ॥
जे सीझे जे सीझि हैं, ते सब करुणा धार ।
जे बूडे जे बूडि हैं, ते सब हिंसाकार ॥ ९२ ॥
अतीचार तजि, व्रत्त भजि, करुणा तिनतें जाय ।
बध बंधन छेदन बहुरि, बोझ धरन अधिकाय ॥ ९३ ॥
अन्न-पानको रोकिवौ, अतीचार ए पंच ।
त्यागौ करुणा धारिकै, इनमें दया न रंच ॥ ९४ ॥
हिंसा तुल्य न पाप है, दया समान न धर्म ।
हिंसक बूडै नरकमें, बांधै अशुभ जु कर्म ॥ ९५ ॥

हुती धनश्री पापिनी, वणिकनारि विभचारि ।
गई नरकमें पुत्र हति, मानुष जन्म विगारि ॥ ९६ ॥
हिंसाके अपराधतें, पापी जीव अनंत ।
गये नरक पाये दुखा, कहत न आवै अंत ॥ ९७ ॥
जे निकसै भवकूपतें, ते करुणा उर धारि ।
जे बूडे भवकूपमें, ते सब हिंसाकार ॥ ९८ ॥
महिमा जीवदया तनी, जानें श्री जगदीश ।
गणधरहू कथि ना सकें, जे चउ ज्ञान अधीश ॥ ९९ ॥
कहि न सकें इंद्रादिका, कहि न सकें अहमिंद्र ।
कहि न सकें लोकांतिका, कहि न सकें जोगिंद्र ॥ १०० ॥
कहि न सकै पातालपति, अगणित जीभ वनाय ।
सो महिमा करुणा तणी, हमपै वरनि न जाय ॥ १०१ ॥
दया मातको आसरो, और सहाय न कोय ।
करि प्रणाम करुणा व्रतें, भाषों सत्य जु सोय ॥ १०२ ॥

इति दयाव्रत निरूपण ।

हिंसा है परमादतें, अर प्रमादतें झूंठ ।
तातें तजौ प्रमादकूं, देय पापसों पूठ ॥ १०३ ॥

चौपई ।

श्री 'पुरुषारथसिद्धिउपाय' ग्रंथ सुन्यां सब पाप लुपाय ।
जहँ द्वादश व्रत कहे अनूप, सम दम यम नियमादि स्वरूप ॥ १०४ ॥
सम जु कहावै समताभाव, सम्यकरूप भवोदधि नाव ।
दम कहिये मन इंद्रिय रोध, जाकरि लहिये केवलबोध ॥ १०५ ॥
जावोजीव वरत यम कह्यौ, अवधिरूप सो नियम जु लह्यौ ।
ऐसें भेद जिनागम कहै, निकट भव्य है सोही गहै ॥ १०६ ॥
तामें सत्य कह्यौ चउभेद, सो सुनि करि तुम धरहु अछेद ।
चउविधि झूंठ तनों परिहार, सो है सत्य महागुण सार ॥ १०७ ॥
प्रथम असत्य तजौ बुध वहै, वस्तु छतीकूं अछती कहै ।
दूजे अछतीकों जो छती,—भाषै अविवेकी हतमती ॥ १०८ ॥
तीजे कहै औरसों और, विरथा मूढ करै झकझौर ।
चौथे झूठ तनें त्रय भेद, गर्हित सावद प्रीति उछेद ॥ १०९ ॥

ए सब कृत कारित अनुमंत, मन वच तन करि तज गुनवंत ।
चुगली-चारी परकी हासि, कर्कश वचन महा दुखरासि ॥ ११० ॥
विपरीत न भाषौ बुधिवान, सवद तजौ अन्याय सुमान ।
वचन प्रलाप विलाप न बोलि, भाजि जिननायक ताजि सहु भोलि ॥ १११ ॥
भाषौ मति उतसूत्र कदेह, मिथ्यामतसों तजौ सनेह ।
ए सब गर्हित वैन तजेह, जिनसासनकी सरधा लेह ॥ ११२ ॥
बहुरि सबै सावद्य अजोग, वचन न बोलौ सुबुधी लोग ।
छेदन-भेदन मारण आदि, त्यागौ अशुभ वचन इत्यादि ॥ ११३ ॥
चोरी जोरी डाका दौर, ए उपदेश पाप सिरमौर ।
हिंसा मृषा कुशील विकार, पाप वचन त्यागौ व्रत धार ॥ ११४ ॥
खेती विणज विवाह जु आदि, वचन न बोलै व्रती अनादि ।
तजहु दोषजुत वानी भया, बोलहु जामें उपजै दया ॥ ११५ ॥
ए सावद्य वचन तजि धीर, तजि अप्रीति वचन वर वीर ।
अरति करन भय करन न बोल, शोक करन त्यागौ ताजि भोल ॥ ११६ ॥
कलह करन अघ करन तजेह, वैर करन वाणी न भजेह ।
ताप करन अर पाप प्रधान, त्यागै वचन महामतिवान ॥ ११७ ॥
मर्मछेदको वचन न कहौ, जो अपने जियको शुभ चहौ ।
इत्यादिक जे अप्रिय वैन,—त्यागहु, सुनि करि मारग जैन ॥ ११८ ॥
बोलौ हित मित वानी सदा, संसय दानी बोलि न कदा ।
सत्य प्रशस्त दया-रस भरी, पर उपगार करन शुभकरी ॥ ११९ ॥
अविरुध अव्याकुलता लिये, बोलहु करुणा धारिकै हिये ।
कबहु ग्रामणी वचन न लपौ, सदा सर्वदा श्रीजिन जपौ ॥ १२०
अपनी महिमा कबहु न करौ, महिमा जिनवरकी उर धरौ ।
जो शठ अपनी कीरति करै, सो मिथ्यात सरूप जु धरै ॥ १२१ ॥
निंदा परकी त्यागहु भया, जो चाहौ जिनमारग लया ।
अपनी निंदा गरहा करौ, श्रीगुरुपै तप व्रत आदरौ ॥ १२२ ॥
पापनिको प्रायश्चित लेह, माया मच्छर मान तजेह ।
होवै जहां धर्मको लोप, शुभ किरिया होवै फुनि गोप ॥ १२३ ॥
अर्थ शास्त्रको है विपरीत, मिथ्यामतकी है परतीत ।
तहां छांडि शंका प्रतिबुद्ध, भाषै सूत्र वचन अविरुद्ध ॥ १२४ ॥

....

सत्यमूल यह आगम जैन, जैनी बोलै अमृत वैन ॥ १२५ ॥

चावार्क वोधा विपरीति, तिनके नाहिं सत्य परतीति ।
कौलिक पातालिक जे जानि, इनमें सत्य लेश मति मानि ॥ १२६ ॥
सत्य समान न धर्म जु कोय, वड़ो धर्म इह सत्य जु होय ।
सत्यथकी पावै भव पार, सत्यरूप जिनमारग सार ॥ १२७ ॥
सत्यप्रभाव शत्रु है मित्र, सत्य समान न और पवित्र ।
सत्यप्रसाद अगनि है शीत, सत्यप्रसाद होय जगजीत ॥ १२८ ॥
सत्यप्रभाव भृत्य है राव, जल है थल धरिया सतभाव ।
सुर है किंकर वन पुर होय, गिरि है घर सम सत करि जोय ॥ १२९ ॥
सर्प माल है हरि मृग रूप, विल सम है पाताल विरूप ।
कोऊ करै शस्त्रकी घात, शस्त्र होय सो अंबुजपात ॥ १३० ॥
हाथी दुष्ट होय सम स्याल, विष है अमृतरूप रसाल ।
कठिन सुगम है सत्यप्रभाव, दानव दीन होय निरदाव ॥१३१ ॥
सत्यप्रभाव लहै निजज्ञान, सत्य धरे पावै वर ध्यान ।
सत्यप्रसाद होय निरवाण, सत्य विना पुरुष न परवाण ॥ १३२ ॥
सत्यप्रसाद वणिक धनदेव, राजा करि पाई वहु सेव ।
इह भव पर भव सुखमय भयौ, जाको पाप करम सव गयौ ॥ १३३ ॥
झूठथकी वसु राजा आदि, पर्वत विप्र सत्यघोपादि ।
जगदेवादिक वाणिज घनें, गये दुरगती जाँय न गिनें ॥ १३४ ॥
सत्य दयाको रूप न दोय, दया विना नहिं सत्य जु होय ।
सत्य तनें द्वय भेद अछेद, विवहारो निश्चय निरखेद ॥ १३५ ॥
निश्चै सत्य निजातम वोध, विवहारो जिन वचन प्रवोध ।
सत्य विना सव व्रत तप वादि, सत्य सकल सूत्रनमें आदि ॥ १३६ ॥
सत्य प्रतिज्ञा विन यह जीव, दुरगति लहै करें जगपीव ।
सूकर कूकर वृक चंडार, घूघू स्याल काग मंजार ॥ १३७ ॥
नाग आदि जे जीव विरूप, लापर सवतें निर्दय रूप ।
सवतें बुरो महा असपर्श, लापरको लखिये नहिं दर्श ॥ १३८ ॥
चुगली-सांचहु झूंठ हि जानि, चुगलं महा चंडाल समान ।
चुगली उगली मुखतें जवै, इह भव पर भव खोये तवै ॥ १३९ ॥
सत्यहेत धारौ भवि मौन, सत्य विना सव संजम गौन ।
थोरो वोलहु कारण सत्य, मन वच तन करि तजौ असत्य ॥ १४० ॥

मुनिके सत्य महाव्रत होय, गृहिके सत्य अणुव्रत होय।
मुनि तौ मौन गहें कै जैन,–वचन निरूपें अमृत वैन ॥ १४१ ॥
लौकिक वचन कहें नहिं साध, सब जीवनके मित्र अगाध।
मृषावाद नहिं बोलें रती, सो जिनमारग सांचे जती ॥ १४२ ॥
श्रावककों किंचित आरंभ, त्यागें कुविसन पापारंभ।
लौकिक वचन कहन जो परै, तौ पनि पापवचन परिहरै ॥ १४३ ॥
पर उपगार दयाके हेत, कबहुक किंचित झूंठहु लेत
जेतौ आटे माहें लोंन, ते तौ बोलै अथवा मौन ॥ १४४ ॥
झूठथकी उबरै पर प्रान, तौ वह झूठ सत्य परवान।
अपने मतलब कारिज झूठ, कबहु न बोलै अव्रतबूठ (?) ॥ १४५ ॥
प्राण तजै पर सत्य न तजै, यद्वा तद्वा वचन न भजै।
यहै देह अर भोगुपभोग, सबही झूंठ गिनैं जग रोग ॥ १४६ ॥
परिग्रहकी तृष्णा नहिं करै, करि प्रमाण लालच परिहरै।
बाप झूठको है यह लोभ, याहि तजै पावै व्रत शोभ ॥ १४७ ॥
सत्यप्रभाव सुजस अति वधै, सत्य धरै जिन आज्ञा सधै।
राजद्वार पंचायति माहिं, सत्यवंत पूजत सक नाहिं ॥ १४८ ॥
इंद्र चंद्र रवि सुर धरणेंद, सत्य वचै अहमिंद मुणिंद
करैं प्रसंसा उत्तम जानि, इहे सत्य शिवदायक मानि ॥ १४९ ॥
दया सत्यमें रंच न भेद, ए दोऊ इकरूप अभेद।
विपति हरन सुख करन अपार, याहि धरैं ते हैं भवपार ॥ १५० ॥
याहि प्रसंसें श्रीजिनराय, सत्य समान न और कहाय।
भुक्ति मुक्ति दाता यह धर्म, सत्य विना सब गनिये भर्म ॥ १५१ ॥
अतीचार पांचों तजि सखा, जो तैं जिन वच अमृत चखा।
तजि मिथ्योपदेश मतिवान, भजि तन मन करि श्रीभगवान ॥ १५२ ॥
देहि मूढ़ मिथ्या उपदेश, तिनमें नाहिं सुगतिको लेश।
बहुरि तजौ जु रहोभ्याख्यान, ताको व्यक्त सुनों व्याख्यान ॥ १५३ ॥
गुपत वारता परकी कोइ, मति परकासौ मरमी होइ।
कूट कुलेख क्रिया तजि वीर, कपट कालिमा त्यागहु धीर ॥ १५४ ॥
करि न्यासापहार परिहार, ताको भेद सुनूं व्रत धार।
पेलो आय धरोहरि धरै, अर कबहू विसरन वह करै ॥ १५५ ॥

तौ वाकों चितएय ज़ु भया, देहु परायो माल ज़ु लया ।
भूलिर थोरो मांगै वहै, तौ वाकों समझायर कहै ॥ १५६ ॥
तुमरो देनों इतनों ठीक, अलप बतावन वात अलीक ।
ले जावौ तुमरो यह माल, लेखामें चूकौ मति लाल ॥ १५७ ॥
घटि देवेको जो परणाम, सो न्यासापहार दुखधाम ।
अथवा धरी पराई वस्त, जाकी बुद्धि भई विध्वस्त ॥ १५८ ॥
और ठौरकी और जु ठौर, करै सोइ पापनि सिरमौर ।
पुन साकारमंत्र है भेद, तजौ सुबुद्धी सुनि जिनवेद ॥ १५९ ॥
दुष्ट जीव परको आकार, लखतो रहै दुष्टताकार ।
लखि करि जानै परको भेद, सो पावै भववनमें खेद ॥ १६० ॥
पर मंत्रनिको करइ विकाश, सो खल लहै नरकको वास ।
जो परद्रोह धरै चितमाहिं, इह भव दुखलहि नरकहिं जाहिं ॥ १६१ ॥
अतीचार ए पांचों त्यागि, सत्य धरमके मारग लागि ।
परदारा परद्रव्य समान, और न दोष कहैं भगवान् ॥ १६२ ॥
परद्रोह सो पाप न और, निंद्यौ श्रुतमें ठौर जु ठौर ।
जिन जान्यूं निज आतमराम, तिनके परधनसों नहिं काम ॥ १६३ ॥
सत्य कहैं चोरी परनारि,-त्यागी जाइ यहै उरधारि ।
झूंठ वकें ते जैनी नाहिं, परधन हरन न या मत माहिं ॥ १६४ ॥

दोहा ।

सत्यप्रभावै धर्मसुत, गए मोक्ष गुणकोश ।
लहे झूठ अर कपटतें, दुर्जोधन दुख दोष ॥ १६५ ॥
जे सुरझें ते सत्य करि, और न मारग कोय ।
जे उरझें ते झूंठ करि, यह निश्चै उर लोय ॥ १६६ ॥
सत्यरूप जिनदेव है, सत्यरूप जिनधर्म ।
सत्यरूप निर्ग्रंथ गुरु, सत्य समान न पर्म ॥ १६७ ॥
सत्यारथ आतम धरम, सत्यरूप निर्वाण ।
सत्यरूप तप संयमा, सत्य सदा परवाण ॥ १६८ ॥
महिमा सत्य सुव्रत्तकी, कहि न सकें मुनिराय ।
सत्य वचन परभावतें, सेवें सुरनर पांय ॥ १६९ ॥
जैसो जस है सत्यको, तैसो श्रीजिनराय ।
जानें केवलज्ञानमें, परमरूप सुखदाय ॥ १७० ॥

और न पूरण लखि सकैं, कीरति सुर नर नाग।
या व्रतकूं धारें सदा, ते हि पुरुष वड़भाग ॥ १७१ ॥
नमस्कार या व्रत्तकों, जो व्रत शिव-सुख देय।
अर याके धारीनकों, जे जिनशरण गहेय ॥ १७२ ॥
दया सत्यकों कर प्रणति, भाषों तीजो व्रत्त।
जो इन द्वय विन ना हुवै, चोरी त्याग प्रवृत्त ॥ १७३ ॥

छंद चाल।

चोरी छाँड़ौ वड़ भाई, चोरी है अति दुखदाई।
चोरी अपजस उपजावै, चोरीतैं जस नहिं पावै ॥ १७४ ॥
चोरीतैं गुणगण नाशा, चोरी दुर्बुद्धि प्रकाशा।
चोरीतैं धर्म नशावै, इह आज्ञा श्रीगुरु गावै ॥ १७५ ॥
चोरीसों माता ताता, त्यागैं लखि अपनों घाता।
चोरीसे भाई-वंधा, कवहु न राखैं संवंधा ॥ १७६ ॥
चोरीतैं नारि न नीरैं, चोरीतैं पुत्र न तीरैं।
चोरीतैं मित्र विडारैं, चोरीसों स्वामि न धारैं ॥ १७७ ॥
चोरीसों न्याति न पांती, चोरिसों कवहु न सांती।
चोरीतैं राजा दंडै, चोरीतैं सीस विहंडै ॥ १७८ ॥
चोरीतैं कुमरण होई, चोरीमें सिद्धि न कोई।
चोरीतैं नरक निवासा, चोरीतैं कष्ट प्रकासा ॥ १७९ ॥
चोरीतैं लहै निगोदा, चोरीतैं जोनि जु वोदा।
चोरीमें सुमति न आवै, चोरीतैं सुगति न पावै ॥ १८० ॥
चोरीतैं नासै करुणा, चोरीमें सत्य न धरणा।
चोरीतैं शील पलाई, चोरीमें लोभ धराई ॥ १८१ ॥
चोरीतैं पाप न छूटै, चोरीतैं तलवर कूटै।
चोरीतैं इजति भंगा, त्यागौ चोरनिको संगा ॥ १८२ ॥
चोरी करि दोष उपावै, चोरि करि मोक्ष न पावै।
चोरीके भेद अनेका, त्यागौ सव धारि विवेका ॥ १८३ ॥
परको धन भूले-विसरे, राखौ मति ज्यों गुण पसरै।
परको धन गिरियो परियो, दावौ मति कवहुँ न धरियौ ॥ १८४ ॥
तोला घटि-वधि जिन राखै, वोलौ मति कूड़ी साखै।
कवहू जिन ऐंडा देहो, डांका दे धन मति लेहो ॥ १८५ ॥

मति दगड़ा लूटौ भाई, दौड़ाई है दुखदाई ।
ठगविद्या त्यागौ मित्रा, परधन है अति अपवित्रा ॥ १८६ ॥
काहूकूं द्यो मति तापा, छाँड़ौ तन मन वच पापा ।
पासीगर सम नहिं पापी, पर प्राण हरै संतापी ॥ १८७ ॥
सो महानरकमें जावै, भव-भवमें अति दुख पावै ।
हाकिम ह्वै धन मति चोरौ, ले सूंक न्याव मति बोरौ ॥ १८८ ॥
लेखामें चूक न कारै, इहि नरभव मूढ ! न हारै ।
ज्यां हरियो परको वित्ता, ते पापी दुष्ट जु चित्ता ॥ १८९ ॥
रुलिहैं भव माहिं अनंता, जो परधन प्राण हरंता ।
चुगली करि मति हि लुटावौ, काहूकूं नाहिं कुटावौ ॥ १९० ॥
परकी ईजति मति हरिहो, परको उपगार जु करिहो ।
धन धान नारि पसु वाला, हरिये कहुके नहिं लाला ॥ १९१ ॥
काहूको मन नहिं हरिये, हिरदामें श्रीजिन धरिये ।
तिर नर जीवनिकी जीवी, मेटौ मति करुणा कीवी ॥ १९२ ॥
तुम शल्य न राखौ वीरा, करि शुद्ध चित्त गुणधीरा ।
रोका बांधी मति करिहो, काहूकी सोंपि न हरिहो ॥ १९३ ॥
बोलौ मति दुष्ट जु वाके, तुम दोष गहौ मति काके ।
काहूको मर्म न छेदौ, काहूको छेत्र न भेदौ ॥ १९४ ॥
काहूकी कछु नहिं वस्ता, मति हरहु होय शुभ अस्ता ।
इह व्रत धारौ वर वीरा, पावौ भवसागर तीरा ॥ १९५ ॥
जाकरि ह्वै कर्म विध्वस्ता, सो भाव धरौ परशस्ता ।
तृण आदि रत्न परजंता, परधन त्यागौ बुधिवंता ॥ १९६ ॥
हरिवौ रागादिक दोषा, करवौ कर्मनको सोषा ।
हरि भर्म, धर्म धरि भाई, हूजे त्रिभुवनके राई ॥ १९७ ॥
अपनों अर परको पापा, हरिये जिनवचन प्रतापा
छांड़ै जु अदत्ता दाना, करि अनुभव अमृत पाना ॥ १९८ ॥
चोरी त्यागें शिव होई, चोरी लागे शठ सोई ।
चोरीके दोय विभेदा, निश्चै व्यौहार विछेदा ॥ १९९ ॥
निश्चै चोरी इह भाई, तजि आतम जड़ लवलाई ।
पर परणति प्रणमन चोरी, छाँड़ै ते जिनमत धोरी ॥ २०० ॥

तजिकै पर परणति जीवा, त्यागौ सब भाव अजीवा ।
यह देह आदि पर वस्ता, तिनसौं नहिं प्रीति प्रशस्ता ॥ २०१ ॥
बिन चेतन जे परपंचा, तिनमें सुख ज्ञान न रंचा ।
इनमें नहिं अपनों कोई, अपनों निज चेतन होई ॥ २०२ ॥
तातें सुनिकै अध्यातम, छाँड़ौ ममता सब आतम ।
अपनों चेतन धन लेहो, परकी आसा तजि देहो ॥ २०३ ॥
जे ममता पंथ न लागें, निश्चै चोरी ते त्यागें ।
जब निश्चै चोरी छूटै, तब काल भूपाल न कूटै ॥ २०४ ॥
इह निश्चै व्रत्त बखाना, या सम और न कोई जाना ।
शिवपद दायक यह व्रत्ता, करिये भवि जीव प्रवृत्ता ॥ २०५ ॥
जिन त्यागी परकी ममत्ता, तिन पाई आतम-सत्ता ।
अब सुनि व्यवहार सरूपा, जी विधि जिनराज परूपा ॥ २०६ ॥
इक देव जिनेसुर पूजौ, सेवौ मति जिन बिन दूजौ ।
बिन गुरु निरग्रंथ दयाला, सेवौ मति और हि लाला ॥ २०७ ॥
सुनि श्रीजिनजूके ग्रंथा, मति सुनहु और अघ पंथा ।
मिथ्यात समान न चोरी,—धारैं तिनकी मति भोरी ॥ २०८ ॥
इह अंतर बाहिज त्यागें, तब व्रत्त विधान हि लागें ।
सम्यक है आतम भावा, मिथ्यात अशुद्ध विभावा ॥ २०९ ॥
सम्यक निश्चै व्यवहारा, सो धारौ तजि उरझारा ।
वर व्रत अचोरज धारें, ते सर्व दोषकों टारें ॥ २१० ॥
या बिन नहिं साधू गनिया, या बिन नहिं श्रावक भनिया ।
श्रावक मुनि द्वै विध धर्मा, यह व्रत्त दुहुनको मर्मा ॥ २११ ॥
मुनिके सब ममता छूटी, समतातें दुरमति टूटी ।
मुनि अवधि न एक धराही, कछु छानें नाहिं कराही ॥ २१२ ॥
देहादिकसौं नहिं नेहा, बरसै घट आनंद मेहा ।
मुनिके सब दोष जु नासे, तातें सु महाव्रत भासे ॥ २१३ ॥
मुनिके कछु हरनों नाहीं, चित लागै चेतन माहीं ।
श्रावकके भोजन लेई, नहि स्वाद विषै चित देई ॥ २१४ ॥
काम न क्रोध न छल माना, नहिं लोभ महा बलवाना ।
जे दोष छियालिस टालें, जिनवरकी आज्ञा पालें ॥ २१५ ॥

ते मुनिवर ज्ञानसरूपा, शुभ पचं महाव्रतरूपा।
गृहपतिके कछु इक धंधा, कछु ममता मोह प्रबंधा॥ २१६॥
छानें कछु करनों आवै, तातें अणुव्रत्त कहावै।
कूपादिकको जल हरवौ, इह किंचित दोषहु धरवौ॥ २१७॥
मोटे सब त्यागें दोषा, काहूको हरय न कोपा।
त्यागौ परधनको हरवौ, छाँड़ौ पापनिको करवौ॥ २१८॥

....

इह अणुव्रतको जु सरूपा, जिनश्रुत अनुसार परूपा॥ २१९॥
अब अतीचार सुनि भाई, त्यागौ पंच हि दुखदाई।
है चोरीको जु प्रयोगा, सो पहलो दोष अजोगा॥ २२०॥
चोरीको माल जु लेनों, इह दूजो अघ तजि देनों।
थोरे मोले बड़ वस्ता, लेवौ नहिं कवहु प्रशस्ता॥ २२१॥
राजाको हांसिल गोपै, राजाकी आणि जु लोपै।
इह तीजो दोष निरूपा, त्यागौ, व्रतधारि अनूपा॥ २२२॥
देवेके तोला घाटै, लेवेके अधिका वाटै।
इह अतिचार है चौथो, त्यागौ शुभमतितें थोथो॥ २२३॥
वधि मोलमें घाटी मोला, भेले है पाप अतोला।
इह पंचम है अतिचारा, त्यागें जिनमारग धारा॥ २२४॥
ए अतीचार गुरु भाखे, जैनी जीवनिनें नांखे।
चोरी करि दुरगति होई, चोरी त्यागें शुभ सोई॥ २२५॥
चोरी तजि अंजनचोरा, तिरियो भवसागर घोरा।
लहि महामंत्र तप गहिया, ध्यानानल भववन दहिया॥ २२६॥
अंजन हूऔ जु निरंजन, इह कथा भव्य मनरंजन।
बहुरी नृप श्रेणिक पुत्रा, है वारिषेण जगमित्रा॥ २२७॥
कर परधनको परिहारा, पायौ भवसागर पारा।
चोरी करि तापस दुष्टा, पंचागन साधनि पुष्टा॥ २२८॥
लहि कोटपालकी त्रासा, मरि नरक गयौ दुख भाषा।
दलिदरको मूल जु चोरी, चोरी तजि अर तजि जोरी॥ २२९।
सब अघ तजि जिनसों जोरी, विनऊं भव्या कर जोरी।
चोरी तजियां शिव पावै, यह महिमा श्री जिन गावै॥ २३०॥

चोरीतें भव भव भटकै, चोरीतें सब गुन सटकै।
जो बुधजन चोरी त्यागै, सो परमारथ पथ लागै ॥ २३१ ॥

दोहा।

परधनके परिहार विन, परम धाम नहिं होय।
भये पार ते तीसरे, व्रत्त विना नहिं कोय ॥ २३२ ॥
जे बूढ़े नर नरकमें, गये निगोद अजान।
ते सब परधन हरणतें, और न कोई बखान ॥ २३३ ॥
व्रत्त अचोरिज तीसरो, सब व्रत्तनिमें सार।
जो याकों धारै व्रती, सो उधरै संसार ॥ २३४ ॥
याकी महिमा प्रभु कहें, जो केवल गुणरूप।
पर गुणरहित निरंजना, निर्गुण निर्मलरूप ॥ २३५ ॥
कहें गणिंद मुनिंदवर, करें भव्य परमान।
जे धारें ते पावही, पूरण पद निर्वान ॥ २३६ ॥
अल्पमती हम सारिखे, कहें कौन विधि वीर।
नमस्कार या व्रत्तकों, धारें धर्माधीर ॥ २३७ ॥
जे उरझे ते या विना, इह निश्चै उर धारि।
जे सुरझे ते या करी, यह व्रत है अघहारि ॥ २३८ ॥
दया सत्य संतोष अर, शीलरूप है एह।
उधरै भवसागरथकी, धरै याथकी नेह ॥ २३९ ॥
दया सत्य अस्तेयकों, करि वंदन मन लाय।
भाषों चौथो शीलव्रत, जो इन विगर न थाय ॥ २४० ॥

इति अचौर्याणुव्रत वर्णन।

प्रणमि परम रस शांतिकों, प्रणमि धरम गुरुदेव।
बरणों सुजस सुशीलको, करि सारदकी सेव ॥ २४१ ॥
शीलव्रत्तको नाम है, ब्रह्मचर्य सुखदाय।
जाकरि चर्या ब्रह्ममें, भववन भ्रमण नशाय ॥ २४२ ॥
ब्रह्म कहावें जीव सब, ब्रह्म कहावें सिद्ध।
ब्रह्मरूप कैवल्य जो, ज्ञान महा परसिद्ध ॥ २४३ ॥
ब्रह्मचर्य सो व्रत्त ना, न परब्रह्म सो कोय।
व्रती न ब्रह्म-लवलीन सो, तिरै भवोदधि सोय ॥ २४४ ॥

विद्या ब्रह्म-विज्ञानसी, नहीं दूसरी जान ।
विज्ञ नहीं ब्रह्मज्ञ सो, इह निश्चै उर आंन ॥ २४५ ॥
ब्रह्म वासना सारिखी, और न रसकी केलि ।
विषैवासना सारिखी, और न विषकी वेलि ॥ २४६ ॥
आतम अनुभव शक्तिसी, और न अमृतवेलि ।
नहीं ज्ञान सो वलवता, देहि मोहकों ठेलि ॥ २४७ ॥
अव्रत नाहिं कुशील सो, नरक निगोद प्रदाय ।
नहीं सील सो संजमा, भाषै श्रीजिनराय ॥ २४८ ॥
धर्म न श्रीजिनधर्म से, नहिं जिनवर से देव ।
गुरु नहिं मुनिवर सारिखे, रागी से न कुदेव ॥ २४९ ॥
कुगुरु न परिग्रहधारि से, हिंसा सो न अधर्म ।
भर्म न मिथ्यासूत्र सो, नहीं मोह सो कर्म ॥ २५० ॥
द्रव्य न कोई जीव सो, गुन न ज्ञान सो आन ।
ज्ञान न केवलज्ञान सो, जीव न सिद्ध समान ॥ २५१ ॥
केवलदर्शन सारिखो, दर्शन और न कोइ ।
यथाख्यात चारित्र सो, चारित और न होइ ॥ २५२ ॥
नहिं विभाव मिथ्यात सो, सम्यक सो नहिं भाव ।
क्षायिक सो सम्यक नहीं, नहीं शुद्ध सो भाव ॥ २५३ ॥
साधु न क्षीणकषाय से, श्रेणि न क्षपक समान ।
नहिं चौदम गुणथान सो, और कोइ गुणथान ॥ २५४ ॥
नहिं केवल परतक्ष सो, और कोई परमाण ।
सुकल ध्यान सो ध्यान नहिं, जिनमत सो न वखाण ॥ २५५ ॥
अनुभव सो अमृत नहीं, नहिं अमृत सो पान ।
इंद्री रसनासी नहीं, रस न शांति सो आन ॥ २५६ ॥
मनोगुप्तिसी गुप्ति नहिं, चंचल मन सो नाहिं ।
निश्चल मुनि से और नहिं, नहीं मौन मन माहिं ॥ २५७ ॥
मुनि से नहिं मतिवंत नर, नहिं चक्री से राव ।
हलधर अर हरि सारिखो, हेत न कहूं लखाव ॥ २५८ ॥
प्रतिहरि से न हठी भए, हरि से और न सूर ।
हर से तासम धार नहिं, बहु विद्याभरपूर ॥ २५९ ॥

नारद से न भ्रमंत नर, भूमें अढ़ाई दीप।
कामदेव से सुंदर न, नहिं जिन से जगदीप ॥ २६० ॥
जिन-जननी जिन-जनक से, और न गुरुजन जानि।
मिष्ट न जिनवानी समा, यह निश्चै परमान ॥ २६१ ॥
जिनमूरतिसी मूरति न, परमानंद सरूप।
जिनसूरतिसी सूरति न, जासम और न रूप ॥ २६२ ॥
जिनमंदिर से मंदिर न, जिन तन सो न सुगंध।
जिनविभूतिसी भूति नहिं, जिन शुति सो न प्रवंध ॥ २६३ ॥
जिनवर से न महावली, जिनवर से न उदार।
जिनवर से न मनोहर, जिन से और न सार ॥ २६४ ॥
चरचा जिनचरचा समा, और न जगमें कोइ।
अर्चा जिनअर्चा समा, नहीं दूसरी होइ ॥ २६५ ॥
राज न श्रीजिनराज से, जिनके राग न रोस।
ईति भीति नहिं राजमें, नहीं अठारा दोस ॥ २६६ ॥
सेवें इंद नरिंद सव, भजहिं फणीस मुनीस।
रटें सूर ससि सुर सवै, जिनसम और न ईस ॥ २६७ ॥
अर्चें अहमिंद्रा महा, चरचें चतुर सुजान।
हरि हर प्रतिहरि हलि मदन, पूजें चक्रिपुमान ॥ २६८ ॥
गुरु कुलकर नारद सवै, सेवें तनमन लाय।
जगमें श्रीजिनराय सो, पूज्य न कोइ लखाय ॥ २६९ ॥
तीर्थंकर पद सारिखा, और न पद जग माहिं।
वज्रवृषभनाराच सो, सँहनन कोई नाहिं ॥ २७० ॥
समचतुरजसंठान सो, और नहीं संठाण।
पुरुष सलाका सारिखा, और न कोई जाण ॥ २७१ ॥
चक्रायुध हल आयुधा, जे हैं चर्मसरीर।
ते तीर्थंकर तुल्य हैं, कुसमायुध सव धीर ॥ २७२ ॥
और हु चर्मसरीर धर, तदभव मुक्ति मुनीस।
ते जिननाथ समान हैं, नमें सुरासुर सीस ॥ २७३ ॥
नहीं सिद्ध पर्यायसी, और शुद्ध पर्य्याय।
नहीं केवलीकायसी, और दूसरी काय ॥ २७४ ॥

अर्हंत सिध साधू सबै, केवलिभाषित धर्म।
इन चउसे नहिं मंगला, उत्तम और न पर्म ॥ २७५ ॥
इन चउ सरण न सारिखे, सरण नाहिं जग माहिं।
संघ न चउविधि संघ से, जिनके संसय नाहिं ॥ २७६ ॥
चोर न इंद्री-चित्त से, मुसें धर्मधन भूरि।
चारित से नहिं तलवरा, डारें चोरनि चूरि ॥ २७७ ॥
जैसें ए उपमा कही, तैसें शील समान।
व्रत्त न कोई दूसरो, भाषें श्री भगवान ॥ २७८ ॥
वक्ता सर्वग से नहीं, श्रोता गणधर से न।
कथन न आतमज्ञान सो, साधक साधु जिसे न ॥ २७९ ॥
बाधक नहिं रागादि से, तिनहिं तजें जोगिंद।
नहिं साधन समभाव से, धारें धीर मुनिंद ॥ २८० ॥
पाप नहीं परद्रोह सो, त्यागें सज्जन संत।
पुन्य न पर उपगार सो, धारें नर मतिवंत ॥ २८१ ॥
लेस्या शुकल समान नहिं, जामें उज्जलभाव।
उज्जलता नकषायसी, और न कोई लखाव ॥ २८२ ॥
दयाप्रकाशक जगतमें, नहीं जैन सो कोइ।
पर्म धर्म नहिं दूसरो, दया सारिखो होइ ॥ २८३ ॥
कारण निज कल्याणको, करुणा तुल्य न जानि।
कारण जिन विश्वासको, नहीं सत्य सो मानि ॥ २८४ ॥
सत्यारथ जिनसूत्र सो, और न कोइ प्रवानि।
सर्वसिद्धिको मूल है, सत्य हियेमें आनि ॥ २८५ ॥
नहिं अचौर्यव्रत सारिखौ, भै हरि भ्रांति निवार।
नहिं जिनेन्द्रमत सारिखौ, चोरी बरज उदार ॥ २८६ ॥
नहीं सील सो लोकमें, है दूजो अविकार।
कारण शुद्धस्वभावको, भवजल तारणहार ॥ २८७ ॥
नहिं जिनसासन सारिखौ, शील प्रकाशन दार।
या संसार असारमें, जा सम और न सार ॥ २८८ ॥
नहिं संतोष समान है, सुखको मूल अनूप।
नहीं जिनेसुरधर्म सो, वर संतोषस्वरूप ॥ २८९ ॥

कोमल परिणामानि सो, करुणाकारण नाहिं।
नहिं कठोर भावानि सो, दयारहित जग माहिं ॥ २९० ॥
नहिं निरलोभ स्वभाव सो, सत्य मूल है कोइ।
नहीं लोभ सो लोकमें, कारण मिथ्या होइ ॥ २९१ ॥
मूल अचोरिजव्रत्तको, निसप्रहता सो नाहिं।
चोरी मूल प्रपंच सो, नहीं लोकके माहिं ॥ २९२ ॥
राजवृद्धिको कारणा, नहीं नीति सो जानि।
नाहिं अनीतिप्रचार सो, राजविघन परवानि ॥ २९३ ॥
कारण संजम शीलको, नहिं विवेक सो मानि।
नहिं अविवेकविकार सो, मूल कुशील बखांनि ॥ २९४ ॥
मूल परिग्रहत्यागको, नहिं वैराग समान।
परिग्रहसंग्रह कारणा, तृष्णातुल्य न आन ॥ २९५ ॥
करुणानिधि न जिनेन्द्र सो, जगतमित्र है सोय।
नहिं क्रोधी सो निरदई, सर्वनाशको होय ॥ २९६ ॥
सतवादी सर्वज्ञ से, नहीं लोकमें कोइ।
कामी लोभी से नहीं, लापर और न होइ ॥ २९७ ॥
सम्यकदृष्टी जीव सो, और विसन मदमोर।
मिथ्यादृष्टी जीव सो, और न परधन चोर ॥ २९८ ॥
समताभाव न सत्य सो, सीलवंत नहिं धीर।
लंपट परिणामी जिसो, नाहिं कुसीली वीर ॥ २९९ ॥
निसप्रेही निरंदुद सो, परिग्रहत्यागी नाहिं।
तृष्णावंत असंत सो, परिग्रहवंत न काहिं ॥ ३०० ॥
दारिदभंजन, जस करण, कारण संपति कोइ।
नहिं दान सो दूसरो, सुरग मुक्ति दे सोइ ॥ ३०१ ॥
चउ दानन से दान नहिं, औषध और अहार।
अभयदान अर ज्ञानको, दान कहें गण सार ॥ ३०२ ॥
रागादिक परिहार सो, और न त्याग वखान।
त्याग समान न सूरता, इह निश्चै परवान ॥ ३०३ ॥
तप समान नहिं और है, द्वादश माहिं निधान।
नहीं ध्यान सो दूसरो, भाषें श्रीभगवान ॥ ३०४ ॥

ध्यान नहीं जिनध्यान सो, जो कैवल्यस्वरूप ।
जा प्रसाद भवरूप मिटि, जीव होय चिद्रूप ॥ ३०५ ॥
क्षीणमोह से लोकमें, ध्यानी और न जानि ।
कारण आतमध्यानको, मननिश्चलता मानि ॥ ३०६ ॥
कारण मन वसिकरणको, नहीं जोग सो और ।
जोग न निजसंजोग सो, है सबको सिरमौर ॥ ३०७ ॥
भोग न निजरसभोग सो, जामें नाहिं विजोग ।
रोग न इंद्रीभोग सो, इह भाषें भवि लोग ॥ ३०८ ॥
शोक न चिंता सारिखौ, विकलरूप बड़रूप ।
नहिं संसै अज्ञान सो, लखौ न चेतनरूप ॥ ३०९ ॥
विकलप-जाल प्रत्याग सो, और नहीं वैराग ।
वीतराग से जगतमें, और नहीं बड़भाग ॥ ३१० ॥
छती संपदा चक्रिकी, जो त्यागै मतिवंत ।
ता सम त्यागी और नहिं, भाषें श्रीभगवंत ॥ ३११ ॥
चाहे अछती भूतिकों, करै कल्पना मूढ़ ।
ता सम रागी और नहिं, सो सठ विषयारूढ़ ॥ ३१२ ॥
नव जोवनमें ब्याह तजि, बालब्रह्मव्रत लेय ।
ता सम वैरागी नहीं, सो भवपार लहेय ॥ ३१३ ॥
कंटक नहिं क्रोधादि से, चढ़ि जु रहे गिरि[1] मान ।
मुनिवर से जोधा नहीं, शस्त्र न शुकल[2] समान ॥ ३१४ ॥
भाव समान न भेष है, भाव समान न सेव ।
भाव समान न लिंग है, भाव समान न देव ॥ ३१५ ॥
ममता-माया रहित सो, उत्तम और न भाव ।
सोई सुध कहिये महा, वर्जित सकल विभाव ॥ ३१६ ॥
कारण आतमध्यानको, भगवतभक्ति समान ।
और नहीं संसारमें, इह धारौ मतिमान ॥ ३१७ ॥
विघन हरण मंगल करण, जप सम और न जानि ।
जप नहिं अजैपाजाप[3] सो, इह श्रद्धा उर आनि ॥ ३१८ ॥
कारण रागविरोधको, भाव असुद्ध जिसौ न ।
कारण समताभावको, विरकितभाव तिसौ न ॥ ३१९ ॥

१ मानरूपी पर्वत । २ शुक्लध्यान । ३ सोऽहं ।

कारण भवन भ्रमणके, नहिं रागादि समान ।
कारण शिवपुर गमनको, नहीं ज्ञान सो आन ॥ ३२० ॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान व्रत, ए रतनत्रय जानि ।
इन से रतन न लोकमें, ए शिवदायक मानि ॥ ३२१ ॥
निज अवलोकन दर्शना, निज जानैं सो ज्ञान ।
निजस्वरूपको आचरण, सो चरित्र निधान ॥ ३२२ ॥
निजगुण निश्चय रतन ये, कहे अभेदस्वरूप ।
विवहारै नव तत्त्वकी, सरधा अविचलरूप ॥ ३२३ ॥
तत्वारथ श्रद्धान सो, सम्यग्दर्शन जानि ।
नव पदार्थको जानिवौ, सम्यग्ज्ञान वखानि ॥ ३२४ ॥
बिषयकषायव्यतीत जो, सो विवहार चरित्र[1] ।
ए रतनत्रय भेद हैं, इन से और न मित्र ॥ ३२५ ॥
देव जिनेसुर गुरु जती, धर्म अहिंसारूप ।
इह सम्यक व्यवहार है, निश्चय निज चिद्रूप ॥ ३२६ ॥
नहिं निश्चै व्यवहारसी, सरधा जगमें कोइ ।
ज्ञान भक्ति दातार ए, जिनभाषित नय दोइ ॥ ३२७ ॥
भक्ति न भगवतभक्तिसी, नहिं आतम सो बोध ।
रोध न चित्तनिरोध सो, दुरनय सो न विरोध ॥ ३२८ ॥
दुर्मतिसी नहिं साकिनी, हरै, ज्ञान सो प्रान ।
नमोकार सो मंत्र नहिं, दुरमति हरै निधान ॥ ३२९ ॥
नहिं समाधि निरुपाधिसी, नहिं तृष्णासी व्याधि ।
तंत्र न परम समाधि सो, हरै सकल असमाधि ॥ ३३० ॥
भवयंत्र जु भयदायको, ता सम विघन न कोय ।
सिद्धयंत्र सो सिद्धकर, और न जगमें होय ॥ ३३१ ॥
सिद्धक्षेत्र सो क्षेत्र नहिं, सर्व लोकके सीस ।
यात्री जतिवर से नहीं, पहुँचैं तहां मुनीस ॥ ३३२ ॥
षोडसकारण सारिखा, और न कारण कोय ।
तीर्थेश्वर भगवंतसा, और न कारज होय ॥ ३३३ ॥
नाहीं दर्शनशुद्धिसा, षोड़स माहीं जान ।
केवलरिद्धि बराबरी, और न रिद्धि बखान ॥ ३३४ ॥

1 चारित्र ।

नहिं लक्खणं उपयोगसे, आतमतें जु अभेद।
नाहिं कुलक्खण कुबुधि से, करै धर्मको छेद॥ ३३५॥
धर्म अहिंसारूपके, भेद अनेक बखान।
नहिं दशलक्षणधर्म से, जगमें और निधांन॥ ३३६॥
क्षमा उत्तमा सारिखौ, और दूसरो नाहिं।
दशलक्षणमें मुख्य है, क्रोधहरण जग माहिं॥ ३३७॥
नीर न शांतिस्वभाव सो, अगनि न कोप समान।
मान समान न नीचता, नहिं कठोरता आन॥ ३३८॥
मानीको मन लोकमें, पाँहनतुल्य बखान।
मान समान अज्ञान नहिं, भाखें श्रीभगवान॥ ३३९
निगरवभाव समान सो, मद नहिं जगमें और।
हरै समस्त कठोरता, है सबको सिरमौर॥ ३४०॥
कीच न कपट समान सो, वक्रं न कपट समान।
सरलभाव सो उज्जल न, सूधौ कोइ न आन॥ ३४१॥
आपद लोभ समान नहिं, लोभ समान न लाँय।
लोभ समान न खाँड़ है, दुख औगुन समुदाय॥ ३४२॥
नहिं संतोष समान धन, ता सम सुखी न कोय।
नहिं ता सम अमृत महा, निर्मल गुण है सोय॥ ३४३॥
शुभ नहिं निर्मलभाव सो, जहां न असुभ सुभाव।
नाहिं मलिन परिणाम सो, दूजौ कोई कुभाव॥ ३४४॥
सन्देह न अयथार्थ सो, जाकरि भर्म न जाय।
नहिं जथार्थ सो लोकमें, निस्संदेह कहाय॥ ३४५॥
नाहिं कलंक कषाय सो, भाषें श्रीभगवन्त।
निःकलंक अकषाय से, करै कर्मको अंत॥ ३४६॥
शुचि नहिं मनशुचि सारिखी, करै जीवकों शुद्ध।
अशुचि नहीं मनअशुचिसी, इह भाषें मतिबुद्ध॥ ३४७॥
नहीं असंजम सारिखौ, जगत डबोवन हार।
नहिं संजम सो लोकमें, ज्ञान बढ़ावन हार॥ ३४८॥
वंचक नहिं परपंच से, ठगें सकलकों सोइ।
विषैवांछना सारिखी, नाहिं ठगौरी कोइ॥ ३४९॥

१ लक्षण। २ खजाना। ३ पत्थर। ४ टेढ़ा। ५ अग्नि। ६ गड्ढा। ७ ठग,

नहिं त्रिलोकमें दूसरो, तप सो ताप निवार ।
त्रिविध ताप से ताप नहिं, जरा जन्म मृतिधार ॥ ३५० ॥
इच्छासी न अपूरणा, पूरी होइ न सोइ ।
नहिं इच्छा जु निरोधसी, तपस्या दूजी होइ ॥ ३५१ ॥
त्याग समान न दूसरो, जग-जंजाल-निवार ।
नहीं भोग अनुराग सो, नरकादिक दातार ॥ ३५२ ॥
नहीं अकिंचन सारिखौ, निरभय लोक मँझार ।
नर परिगरँही सारिखौ, भैरूप न निरधार ॥ ३५३ ॥
परिग्रह सो नहिं पापग्रह, नहिं कुशील सो कादं ।
ब्रह्मचर्य सो और नहिं ब्रह्मज्ञानकों वाद ॥ ३५४ ॥
नहीं विषैरस सारिखौ, नीरस त्रिभुवन माहिं ।
अनुभवरस आस्वाद सो, सरस लोकमें नाहिं ॥ ३५५ ॥
अदयासी नहिं दुष्टता, अनृत सो न प्रपंच ।
छल नहिं चोरी सारिखौ, चोर समान न टंच (?) ॥ ३५६ ॥
हिंसक सो नहिं दुर्जना, हरै पराये प्राण ।
नहिं दयाल सो सज्जना, पीरा हरै सुजाण ॥ ३५७ ॥
नहिं विश्वासघाती अवर, झूँठे नर सो कोय ।
नहिं विभचारी सो अना,—चारी जगमें होय ॥ ३५८ ॥
विकथा सो न प्रलाप है, आरति सो न विलाप ।
थाप न द्वैय नय थाप सो, जिनवर सो न प्रताप ॥ ३५९ ॥
संताप न को सोक सो, लोक न सिद्ध समान ।
धन प्राणनके नाश सो, और न शोक वखान ॥ ३६० ॥
जड़र्जिय सो अमिलाप नहिं, गुणमणि सो न मिलाप ।
श्री जिनवर गुणगान सो, और न कोइ अलाप ॥ ३६१ ॥
नहिं विकथा नारीनिसी, कथा न धर्मसमान ।
नहिं आरति भोगार्त्तिसी, दुरगतिदाई आन ॥ ३६२ ॥
ॐकार समान नहिं, सर्व शास्त्रकी आदि ।
महा मंगलाचार है, यह उपचार अनादि ॥ ३६३ ॥

१ संसारके दुख । २ मृत्यु । ३ परिग्रह रहित । ४ परिगृही । ५ कीचड़ । ६ निश्चय व्यवहार । ७ मोक्ष । ८ मूर्खके समान ।

नाद न सोऽहं सारिखौ, नहीं स्वरस[1] सो स्वाद।
स्यादवाद सिद्धांत्त सो, और नहीं अविवाद॥ ३६४॥
एक एक नय पक्ष सो, और न कोई वाद।
नाहिं विषाद विवाद सो, निद्रा सो न प्रमाद॥ ३६५॥
स्त्यानगृद्धिनिद्रा[2] जिसी, निद्रा निंद्य न और।
परनिंदा सो दोष नहिं, भाषें जिन जगमौर॥ ३६६॥
निंदा चउविधि संघकी, ता सम अघ नाहिं कोय।
नाहिं प्रसंसा जोगि कोउ, जिन आगम सो होय॥ ३६७॥
सार न अध्यातम जिसौ, निज अनुभवको मूल।
नहिं मुनि से अध्यातमी, सर्व विषय प्रतिकूल॥ ३६८॥
विषय कषाय बराबरी, बैरी जियके नाहिं।
ज्ञान विराग विवेक से, हितू नाहिं जग माहिं॥ ३६९॥
अध्यातम चरचा समा, चरचा और न कोय।
जिनपद अरचा[3] सारिखी, अरचा और न होइ॥ ३७०॥
नाहिं गणाधिप से महा,—चरचाकारक जानि।
नाहिं सुराधिप सारिखे, अरचाकारक मानि॥ ३७१॥
गमन न ऊरध गमन सो, नहीं मोक्ष सो धाम।
रोधक नाहीं कर्मसे, हरो कर्म तजि काम॥ ३७२॥
शत्रु न कोइ अधर्म सो, मित्र न धर्म समान।
धर्म न वस्तुस्वभाव सो, हिंसा रहित बखान॥ ३७३॥
निजस्वभावको विस्मरण, नहिं ता सम अपराध।
साधै केवलभावकों, ता सम और न साध॥ ३७४॥
नरदेही सम देह नहिं, लिंग न पुरुष समान।
वेद नहीं नरवेद सो, सुमन समो न सयान॥ ३७५॥
त्रसकाया सम काय नहिं, पंचेन्द्री जा माहिं।
पंचेंद्री नहिं मिनष से, जे मुनिव्रत्त धराहिं॥ ३७६॥
मुनि नहिं तदभवमुक्ति से, जे केवलपद पाय।
पहुँचें पंचमगति महा, चहुंगति भ्रमण नशाय॥ ३७७॥

---

१ आत्मरस। २ जिसके उदयसे जाग कर कोई भारी काम करले और फिर सो जाय और जागने पर यह भी न मालूम हो कि मैंने क्या काम किया था। ३ जिनेन्द्र भगवानकी पूजा। ३।

गति नहिं पंचमगति जिसी, जाहि कहैं निजधाम ।
अविनश्वर पुर नाम जो, जा सम नगर न राम ॥ ३७८ ॥
नाहिं शुद्ध उपयोग सो, मारग सूधौ होय ।
नाहीं मारग मुक्तिको, भवविरक्ति सो कोय ॥ ३७९ ॥
लोकशिखर सो ऊँच नहिं, सबके शिर पर सोय ।
नहीं रसातल सारिखौ, नीचो जगमें जोय ॥ ३८० ॥
जितमनइंद्री[1] धीर से, और न वंद्य[2] वखानि ।
विषयी विकलनि सारिखे, और न निंद्य प्रवानि ॥ ३८१ ॥
नहिं अरिष्ट अघकर्म से, शिष्ट न शुभग समान ।
नाहिं पंचपरमेष्ठि से, और इष्ट परवान ॥ ३८२ ॥
जिनदेवल[3] से देवल न, नहीं जैन से विंव ।
केवल सो ज्ञायक नहीं, जामें सव प्रतिविंव ॥ ३८३ ॥
नाहिं अकर्तम सारिखे, देवल अतिसैरूप ।
चैत्यवृक्ष से वृक्ष नहीं, सुरतरुसें हु अनूप ॥ ३८४ ॥
जोगी जिनवर से नहीं, जिनके अचल समाधि ।
निजरस भोगी ते सही, वर्जित सकल उपाधि ॥ ३८५ ॥
इंद्रियभोगी इंद्र से, नाहिं दूसरे जानि ।
इंद्रीजीत मुनिन्द्र से, इंद्रनरेन्द्रनि मानि[4] ॥ ३८६ ॥
राग दोष परपंच से, असुर और नहिं होय ।
दर्शन-ज्ञान-चरित्र से असुर नाशक न कोय ॥ ३८७ ॥
काम-क्रोध-लोभादि से, नाहिं पिशाच वखानि ।
सम संतोष विवेक से, मंत्राधीश न मानि ॥ ३८८ ॥
माया मच्छर[5] मान से, दुखकारी नहिं वीर ।
निगरव निकपटभाव से, सुखकारी नहिं धीर ॥ ३८९ ॥
मैल न कोइ मिथ्यात सो, लग्यौ अनादि विरूप ।
साबुन भेदविज्ञान सो, और न उज्जलरूप ॥ ३९० ॥
मदनदर्प सो सर्प नहिं, डसै देव नर नाग[6] ।
गरुड़ न कोई शील सो, मदन[7]-जीत वड़भाग ॥ ३९१ ॥

---

१ इन्द्रिय और मनको जीतनेवाले । २ नमस्कार करने योग्य । ३ मंदिर । ४ इंद्र और चक्रवार्तियोंसे पूजनीक । ५ मत्सर । ६ हस्ती । ७ कामदेव ।

मैल न मोहासुर[1] समो, सकलकर्मको राव ।
महामल्ल नहिं बोध[2] सो, हरै मोह परभाव ॥ ३९२ ॥
भर्म न कोई कर्म से, कारण संसै जानि ।
भ्रमहारी सम्यक्त से, और न कोई मानि ॥ ३९३ ॥
विष नहिं विषयानंदसे, देहि अनंता मर्ण ।
सुधा[3] न ब्रह्मानंद सो, अनुभवरूप अवर्ण ॥ ३९४ ॥
क्रूर न क्रोधी सारिखे, नहीं क्षमी से शांत ।
नीच न मानी सारिखे, निगरव से न महांत ॥ ३९५ ॥
मायावी[4] सो मलिन नहिं, विमल न सरल समान ।
चिंतातुर लोभीन से, दीन न दुखी अयान ॥ ३९६ ॥
दुष्ट न दोषी सारिखे, रागी से नहिं अंध ।
अहंकार ममकार सो, और न कोई बंध ॥ ३९७ ॥
मोही से नहिं लोकमें, गहलरूप मतिहीन ।
कामातुर से आतुर न, अविवेकी अघलीन ॥ ३९८ ॥
ऋण नहिं आस्रव-बंध से, राखें भवमें रोकि ।
मुनिवर से मतिवंत नहिं, छूटें ब्रह्म विलोकि ॥ ३९९ ॥
संवर निर्जर सारिखे, रिणमोचन[5] नहिं कोइ ।
दुर्जर कर्म हरें महा, मुक्तिदायका सोइ ॥ ४०० ॥
विपति न वांछा सारिखी, वांछा रहित मुनीस ।
मृगतृष्णा मिथ्या जिसी, और न कहैं रिषीस ॥ ४०१ ॥
समतासी संसारमें, साता कोइ न जानि ।
सातासी न सुहावणी, इह निश्चै उर आनि ॥ ४०२ ॥
ममतासी मानों भया, और असाता नाहिं ।
नाहिं असाता सारिखी, है अनिष्ट जग माहिं ॥ ४०३ ॥
उदासीनता सारिखी, समताकरण न कोय ।
जग अनुराग समानता, समतामूल न जोय ॥ ४०४ ॥
नाहिं भोग-अभिलाषसी, भूख अपूरण वीर ।
नाहिं भोग-वैरागसी, पूरणता है धीर ॥ ४०५ ॥

१ मोहनीय कर्म । २ सम्यग्ज्ञान । ३ अमृत । ४ कपटीके समान । ५ कर्जसे छुड़ानेवाले ।

नाहीं विषययाशक्तिसी, त्रिषा[1] त्रिलोकी माहिं ।
विरकततासी विश्वमें, और तृषाहर नाहिं ॥ ४०६ ॥
पराधीनता सारिखी, नहीं दीनता कोइ ।
नहिं कोई स्वाधीनता,-तुल्य उच्चता होइ ॥ ४०७ ॥
नहीं समरसीभावसी, समता त्रिभुवन माहिं ।
पक्षपात बकवादसी, और न विकथा नाहिं ॥ ४०८ ॥
जगतकामना कलपना,-तुल्य कालिमा नाहिं ।
नहीं चेतना सारिखी, ज्ञायक त्रिभुवन माहिं ॥ ४०९ ॥
ज्ञानचेतना सारिखी, नहीं चेतना शुद्ध ।
कर्म कर्मफल चेतना, ता सम नाहिं अशुद्ध ॥ ४१० ।
नर निरलोभी सारिखे, नाहिं पवित्र वखान ।
संतोषी से नहिं सुखी, इह निश्चै परवान ॥ ४११ ॥
निरमोही अर निरममत, ता सम संत न कोय ।
निरदोषी निरवैर से, साधू अवर न कोय ॥ ४१२ ॥
दोष समान न मोषहर[3], राग समान न पाँसि[4] ।
मोह समान न बोधहर, ए तीनूं दुखरासि । ४१३ ॥
व्रती न कोइ निसल्य सो, माया तुल्य न शल्य ।
हीन न जाचिक सारिखौ, त्यागी से न अतुल्य ॥ ४१४ ॥
कामीसे न कलंकधी, काम समान न दोप ।
परदारा परद्रव्य सो, और न अघको कोप ॥ ४१५ ॥
सल्य समान न है सली, चुभी हियेके माहिं ।
नहिं निरदोष स्वभाव सो, मूढ़ा और कहाहिं (?) ॥ ४१६ ॥
शौच न संग समान है, संग न अंग समान ।
अंग नहीं द्वय अंगसे, तिनहिं तजै निरवान ॥ ४१७ ॥
कारमाण अर तैजसा, ए द्वय देह अनादि ।
लगें जीवके जगतमें, रोग महा रागादि ॥ ४१८ ॥
गेह समान न दूसरो, जानूं कारागेह[5] ।
देह समान न गेह है, त्यागौ देह-सनेह ॥ ४१९ ॥
ए काया नहिं जीवकी, सो है ज्ञानशरीर ।
मृत्यु न ज्ञान शरीरको, नहीं रोगकी पीर ॥ ४२० ॥

१ प्यास । २ ससारंभ । ३ मोक्षहर । ४ जाल । ५ जेलखाना ।

नाहीं इष्ट वियोग सो, सोगमूल है कोइ ।
काया-माया सारिखौ, इष्ट न जगके जोइ ॥ ४२१ ॥
नहिं संकल्प विकल्प सो, जाल दूसरो जानि ।
नहिं निरविकलप ध्यान सो, छेदक जाल बखानि ॥ ४२२ ॥
नहीं एकता सारिखी, परम समाधि स्वरूप ।
नहीं विषमतासी अवर, सठतारूप विरूप ॥ ४२३ ॥
चिंतासी असमाधि नहिं, नहिं तृष्णासी व्याधि ।
नहिं ममतासी मोहनी, मायासी न उपाधि ॥ ४२४ ॥
ज्ञानानंदादिक महा, निजस्वभाव निरदाव ।
तिनसौं तन्मय भाव जो, सो एकत्व कहाव ॥ ४२५ ॥
आसासी न पिसाचिनी, आसासी न असार ।
नहीं जाचना सारिखी, लघुता जगत मँझार ॥ ४२६ ॥
दानकलासी दूसरी, दुखहरणी नहिं कोइ ।
ज्ञानकलासी जगतमें, सुखकरणी नहिं होइ ॥ ४२७ ॥
नाहिं खुधासी[1] वेदना, व्यापै सबकों सोइ ।
अन्न-पान दातार से, दाता और न होइ ॥ ४२८ ॥
पर दुखहरणी सारिखी, गुरुता[2] और न जानि ।
परपीड़ा करणी समा, खलता[3] कोइ न मानि ॥ ४२९ ॥
शुद्ध पारणामिक समा, और नाहिं परिणाम ।
सकल कामना त्याग सो, और न उत्तम काम ॥ ४३० ॥
धर्मसनेही सारिखा, नाहिं सनेही होइ ।
विषैसनेही सारिखा, और कुमित्र न कोइ ॥ ४३१ ॥
सर्व वासना त्यागसी, और न थिरता वीर ।
कष्ट न नरक निगोदसे, नहीं मरणसी पीर ॥ ४३२ ॥
राज-काज अभ्यास सो, और न दुरगतिदाय ।
जोगाभ्यास अभ्यास सो, और न सिद्धि उपाय ॥ ४३३ ॥
नहिं विराधना सारिखी, बाधाकरण कहाहिं ।
आराधनसी दूसरी, भवबाधाहर नाहिं ॥ ४३४ ॥
निजसरूप आराधना, अचल समाधि स्वरूप ।
ता सम शिवसाधन नहीं, यह भाषै जिनभूप ॥ ४३५ ॥

१ क्षुधा भूख । २ उच्चता । ३ नीचता ।

निज सत्तासी निश्चला, और न मानों मिंत ।
आधि-व्याधितें रहित जो, ध्यावौ ताहि निचिंत ॥ ४३६ ॥
निज सत्ताकों भूलि जे, राचें माया माहिं ।
धरि धरि काया ते भ्रमें, यामें संसै नाहिं ॥ ४३७ ॥
मुनिव्रत तजि भवभोगकों, चाहैं जे मतिमंद ।
तिन से मूढ़ न लोकमें, इह भाषें जिनचंद ॥ ४३८ ॥
वृद्ध भये हू गेहकों, जे न तजें मतिहीन ।
तिन से वृद्ध न जगतमें, कापुरुषा न मलीन ॥ ४३९ ॥
गेह तजें नववर्षके, धरें महाव्रत सार ।
तिन से पूज्य न लोकमें, ते गुणवृद्ध अपार ॥ ४४० ॥
नहिं वैरागी जीव से, निरबंधन निरुपाधि ।
नाहिं जु रागी सारिखे, धारक आधि रु व्याधि ॥ ४४१ ॥
निजरस आस्वादन विमुख, भुगतें इंद्रीभोग ।
नरकवासना ते लहैं, तिन से नाहिं अजोग ॥ ४४२ ॥
अभविनि से न अभागिया, भव्यनि से न सभाग ।
निकटभव्य से भव्य नहिं, गहैं ज्ञान वैराग ॥ ४४३ ॥
नहिं दरिद्र दुरबुद्धि सो, दलद्र सो न दुकाल ।
नहिं संपति सनमति जिसी, नहीं मोह सो जाल ॥ ४४४ ॥
नहीं समी से संयमी, व्रत सो नाहिं विधान ।
नहिं प्रधान निजबोध सो, निज निधि सो न निधान ॥ ४४५ ॥
कोषै न गुणभंडार सो, सदा अटूट अपार ।
औगुन सो नहिं गुणहरा, भव भव दुखदातार ॥ ४४६ ॥
खल स्वभाव सो औगुन न, गुण न सुजनता तुल्य ।
सत्यपुरुष निरवैर से, जिनके एक न शल्य ॥ ४४७ ॥
खलजन दुरजन सारिखे, और दूसरे नाहिं ।
भववन सो वन नाहिं कौ, भ्रमै मूढ़ जा माहिं ॥ ४४८ ॥
विषवृक्ष न वसुकर्म से, नानाफल दुखदाय ।
वेलि न मायाजालसी, जगजन जहां फंसाय ॥ ४४९ ॥
दुरनयपक्षी सारिखे, नाहिं कुपक्षी आन ।
दैत्य न निरदयभाव से, तिमर न मोह समान ॥ ४५० ॥

१ मूर्ख । २ अतिलोभी । ३ आत्मज्ञान । ४ खजाना ।

मद उनमाद गयंद सो, और न वनगज कोइ ।
क्रूरभाव सों सिंह नहिं, ठग न मदन सो होइ ॥ ४५१ ॥
नहिं अजगर अज्ञान सो, ग्रसै जगतकों जोइ ।
नहिं रक्षक निजध्यान सो, कालहरण है सोइ ॥ ४५२ ॥
थिरचर से (१) नहिं वनचरा, वसे सदा भव माहिं ।
नहिं कंटक क्रोधादि से, दया तिनूंमें नाहिं ॥ ४५३ ॥
विषपहुप न विषयादि से, रहें कुंवासन पूरि ।
नाहिं कुपुत्र कुसूत्र से, ते या वनमें भूरि ॥ ४५४ ॥
पंथ न पावें जगतमें, मुकति तनों जगजंत ।
कोइक पावै ज्ञान निज, सोई लहै भव अंत ॥ ४५५ ॥
नहिं सेरी जिनवानिसी, दरसक गुरु से नाहिं ।
नगर नहीं निरवाण सो, जहाँ संतही जाहिं ॥ ४५६ ॥
नहिं समुद्र संसार सो, अति गंभीर अपार ।
लहर न विषैतरंगसी, मच्छ न जम सो भार ॥ ४५७ ॥
भ्रमण न चहुँगति भ्रमण सो, भरमें जीव अपार ।
पोतें न मुनिव्रत सो महा, करै भवोदधि पार ॥ ४५८ ॥
द्वीप नहीं शिवद्वीप सो, गुन रतननकी रासि ।
तीरथनाथ जिनंद से, सारथैवाह न भासि ॥ ४५९ ॥
अंधकूप नहिं जगत सो, परै तहां तनधार ।
जिन विन काढ़ै कौन जन, करिकै करुणा सार ॥ ४६०
नाहिं भवानल सारिखी, दावानल जग माहिं ।
जगत चराचर भस्म कर, यामें संसै नाहिं ॥ ४६१ ॥
जिनगुण अंबुधि शरण ले, ताहि न याको ताप ।
तातें सकल विलाप तजि, सेवौ आप निपाप ॥ ४६२ ॥
नहीं वायु जगवायुसी, जगत उडावै जोय ।
काय टापरी वापरी, यापै टिके न कोय ॥ ४६२ ॥
जिनपद परवत आसरो, जो नर पकरै आय ।
सोई यामें ऊबरै, और न कोइ उपाय ॥ ४६४ ॥

१ दुर्गंध । २ संसारी जीव । ३ गली । ४ विषय रूपी लहरके समान । ५ नाव । ६ खेवटिया ।

द ।

नाहिं अतिंद्री सुक्ख सो, पूरण परमानंद ।
नाहिं अफंद मुनिंद्र सो, आनंदी निरदुंद ॥ ४६५ ॥
नहिं दिक्षा दुखहारिणी, जिनदिक्षासी कोय ।
नहिं शिक्षा सुखकारिणी, जिनशिक्षासी होय ॥ ४६६ ॥

चाल जोगीरासा ।

फंद न कनककामिनी सरिखा, मृग नहिं मूरख नरसा ।
नाहिं अंहेरी काम लोभसा, सूंर[1] न अंध सु नरसा ॥ ४६७ ॥
काटक फंद न वोधवृत्तसा[2], मंदमती न अभविसा ।
बुद्धिवंत नहिं भव्यजीवसा, भव्य न तदभव शिवसा ॥ ४६८ ॥
पुरुष शलाका महाभाग से, तथा चरम तन धरसे ।
और न जानों पुरुष प्रवीना, गुरु नहिं तीर्थंकर से ॥ ४६९ ॥
ते पहली भाषे गुणवंता, अब सुनि देवस्वरूपा ।
इंद्र तथा अहमिंद्र न सरखे, और न देव अनूपा ॥ ४७० ॥
इंद्र न षट इंद्रानि से कोई, सौधर्म[3] सनतकुमारा ।
ब्रह्मेन्द्र जु अर लांतव इंद्रा, आनत आरण सारा ॥ ४७१ ॥
ए एका भवतारी भाई, नर ह्वै शिवपुर लेवें ।
सम्यकदृष्टी इंद्र सबै ही, श्री जिनमारग सेवें ॥ ४७२ ॥
लोकपालहू सम्यकदृष्टी, इकभव धरि भवपारा ।
इंद्र सारिखे सुर ये सो हैं, इन से देव न सारा ॥ ४७३ ॥
देवरिषी लौकांतिक देवा, तिन से इंद्र हु नाहीं ।
ब्रह्मचर्य धारत ए देवा, इन से भुवन[4] न माहीं ॥ ४७४ ॥
तप कल्याणक समये सेवा,—करें जिनेसुरकी ये ।
नर ह्वै पावें पद निरवाना, राखें जिनमत हीये ॥ ४७५ ॥
इंद्राणीसी देवी नाहीं, इंद्राणी न शचीसी[5] ।
इक भव धरि पावै सुखवासा[6], तीर्थंकर जननीसी ॥ ४७६ ॥
सेवक देव जिनेसुरजूके, नाहिं सुरेसुर तुल्या ।
शची सारिखी भक्त न कोई, धारै भाव अतुल्या ॥ ४७७ ॥
कल्याणक ए पाचूं पूजैं, शची शक्र जिनदासा ।
अहनिसि जिनवर चरचा इनके, धारें अतुल विलासा ॥ ४७८ ॥

---

१ शूकर । २. ज्ञान चारित्रके समान । ३ सौधर्म—पहले स्वर्गका इंद्र । ४ संसारमें । ५ पहले स्वर्गकी इंद्राणी । ६ मोक्ष ।

दोहा।

अब सुनि अहमिंद्रा महा, स्वर्ग ऊपरैं जे हि।
नव ग्रीवक नव अनुदिसा, पंचानुत्तर लेहि॥ ४७९॥
तेईसौं शुभ थान ए, तिनमें चौदा सार।
नव अनुदिश पंचोत्तरा, ये पावें भवपार॥ ४८०॥
सम्यकदृष्टी देव ए, चैादहथान निवास।
चौदहमें नहिं पंच से, महा सुखनकी रास॥ ४८१॥
पंचनिमें सरवारथी,–सिद्ध नाम है थान।
सकल स्वर्गको सीस जो, ता सम लोक न आन॥ ४८२॥
एकाभवतारी महा, सरवारथसिधि वास।
तिन से देव न इन्द्र कोउ, अहमिंदा न प्रकाश॥ ४८३॥
कहे देवमें सार ए, तैसें व्रतमें सार।
शील समान न गुरु कहैं, शील देय भवपार॥ ४८४॥
देव माहिं जे समकिती, देव देव हैं जेहि।
देव माहिं मिथ्यामती, पसुतें मूरख तेहि॥ ४८५॥
नारकमें जे समकिती, तिन से देव न जांनि।
तिरजंचनिमें श्राविका, तिन से मिनष न मांनि॥ ४८६॥
मिनषनमें जे अव्रतीं, अज्ञानी मतिमंद।
तिन से तिरजंचा नहीं, सेवें विषय सुछंद॥ ४८७॥
मिनषनि माहिं मुनिन्द्र जे, महाव्रती गुणवान।
तिन से अहमिंद्रा नहीं, ताको सुनहु बखान॥ ४८८॥
थावर नहिं क्रमिकीट से, ते सकलिन्द्री से न।
पंचेन्द्री नहिं नरन से, नर जु नरेन्द्र जिसे न॥ ४८९॥
महामंडलिक से न नृप, ते अधचक्री से न।
अधचक्री नहिं चक्रि से, ज्ञानवान गणे से न॥ ४९०॥
नाहिं गणेन्द्र जिनेन्द्र से, जे सबके गुरुदेव।
इंद्र फणिन्द्र नरेन्द्र मुनि, करें सुरासुर सेव॥ ४९१॥
ते जिनेन्द्र हू तप समै, करें सिद्धको ध्यान।
सिद्धनि सो संसारमें, नाहिं दूसरो आन॥ ४९२॥

१ गणधरके समान।

सिद्धनि सो यह आतमा, निश्चयनय करि होय।
सिद्धलोक दायक महा, नहीं सील सो कोय ॥ ४९३ ॥
भूमि न अष्टम भूमिसी, सर्व भूमिके शीश।
कर्मभूमितें पावही, अष्टमभूमि मुनीश ॥ ४९४ ॥
दीप अढ़ाई से नहीं, असंख्यात ही द्वीप।
जहां ऊपजें जिनवरा, तीनभुवनके दीप ॥ ४९५ ॥
नहिं जिनप्रतिमा सारिखी, कारण वर वैराग।
नहीं आन मूरति जिसी, कारण दोष रु राग ॥ ४९६ ॥
नहिं अनादिप्रतिमा[1] समा, सुंदररूप अपार।
नाहिं अकर्तम सारिखे, चैत्यालय विसतार ॥ ४९७ ॥
क्षेत्र न आरिज सारिखे, सिद्धक्षेत्र है सोइ।
भरतैरावत दस सवै, नहिं विदेह से कोइ ॥ ४९८ ॥
गिरि नहिं सुरगिरि सारिखे, तरु सुरतरु[2] से नाहिं।
नदी सुरनदीसी नहीं, सर्व नदीके माहिं ॥ ४९९ ॥
शिला न पांडुकाशिल समा, जा परि न्हावै ईश।
सिद्धसिलासी पांडु नहीं, सो त्रिभुवनके शीश ॥ ५०० ॥
उदधि न क्षीरोदधि समा, द्रह पदमादि जिसे न।
मणि नहिं चिंतामणि समा, कामधेनुसी धेनु ॥ ५०१ ॥
निधि नहिं नवनिधि सारिखी, सो निजनिधिसी नाहिं।
नहिं समुद्र गुणसिंधु सो, है निजनिधि जा माहिं ॥ ५०२ ॥
नन्दनादि से वन नहीं, ते निज वनसे नाहिं।
निजवनमें क्रीड़ा करें, ते आनन्द लहाहिं ॥ ५०३ ॥
केवल परणति सारिखी, नदी कलोलनि कोइ।
निजगंगा सोई गनों, ता सम और न होइ ॥ ५०४ ॥
देव न आतम देव सो, गुण आतम सो नाहिं।
धर्म न आतमधर्म सो, गुन अनन्त जा माहिं ॥ ५०५ ॥
बाजा दुंदुभि सारखा, नहीं जगतमें और।
राजा जिनवर सो नहीं, तीन भुवन सिरमौर ॥ ५०६ ॥
नाहिं अनाहततूरसे, देवदुंदुभी तूर।
सूर न तिन से, जे नरा, डारें मनमथ चूर ॥ ५०७ ॥

१ अकृत्रम प्रतिमा। २ कल्पवृक्ष।

वाहन नहीं विमान से, फिरैं गगनके माहिं।
नाहिं विमान जु ज्ञान से, जा करि शिवपुर जाहिं ॥ ५०८ ॥
हीन दीन अति तुच्छ तन, नहिं निगोदिया तुल्य।
सरवारथसिधि देव से, भववासी नहिं कुल्य ॥ ५०९ ॥
दीरघदेह न मच्छ से, सहसर जोजन देह।
चौइन्द्री नहिं भ्रमर से, जोजन एक गनेह ॥ ५१० ॥
कानखजुरथा से नहीं, तेइन्द्री त्रय कोस।
वेइन्द्री नहीं संख से, तन अढ़तालिस कोस ॥ ५११ ॥
एकेन्द्री नहिं कमल से, सहसर जोजन एक।
सब परि करुणा राखिवौ, इह जिनधर्म विवेक ॥ ५१२ ॥
धात न कनक समान सो, काई लगै न जाहि।
सोहु न चेतन धात सो, नहिं कबहूँ विनसाहि ॥ ५१३ ॥
पारस से पाषाण नहिं, लोहा कनक कराय।
पारसनाथ समान कोउ, पारस नाहिं कहाय ॥ ५१४ ॥
ध्यावौ पारसप्रभु महा, बसै सदा जो पास।
राशि सकल गुणरतनकी, काटै कर्म जु पासि[1] ॥ ५१५ ॥
चातुरमासिक सारिखे, उतपत जीवन आन।
व्रती जती से नाहिं कोउ, गमन तजैं गुणवान ॥ ५१६ ॥
जिनकल्याणक क्षेत्र से, और न तीरथ जान।
तेहु न निज तीरथ जिसै, इह निश्चै कर मान ॥ ५१७ ॥
निजतीरथ निजक्षेत्र है, असंख्यात परदेश।
तहां विराजै आतमा, जानै भाव असेस ॥ ५१८ ॥
अष्टमि चउदसि सारिखी, परवी और न जानि।
अष्टाह्निक से लोकमें, पर्व न कोइ भवानि ॥ ५१९ ॥
नंदीसुर सो धाम नहिं, जहां हरष अति होय।
नंदादिक वापीनसी, नहीं वापिका कोय ॥ ५२० ॥
नारक से क्रोधी नहीं, शठ नर सो न गुमान।
विकल न पशुगण सारिखे, लोभ न दंभ समान ॥ ५२१ ॥
नारक से न कुरूप कोउ, देवनि से न सुरूप।
नर से धन्धाधर नहीं, नहिं पशु से बहुरूप ॥ ५२२ ॥

[1] फांसी।

कारण भोग, न दान सो, तप सो सुर्ग न मूल ।
हिंसारंभ समान नहिं, कारण नरक सथूल ॥ ५२३ ॥
पशुगति कारण कपट सो, और न कोइ वखान ।
सरल निगर्व सुभाव सो, नरभव मूल न आन ॥ ५२४ ॥
सुखकारण नहिं शुभ समो, अशुभ समो दुखमूल ।
नहीं शुद्ध सो लोकमें, मोक्षमूल अनुकूल ॥ ५२५ ॥
पोसह पड़िकमणादि सो, शुभाचरण नहिं होइ ।
विषयकषाय कलंक सो, अशुभाचरण न कोइ ॥ ५२६ ॥
आतम अनुभव सारिखा, शुद्ध भाव नहिं वीर ।
नहीं अनुभवि सारिखे, तीन भुवनमें धीर ॥ ५२७ ॥
नारि समान न नागिनी, नारी सम न पिशाच ।
नारि समान न व्याधि है, रहें, मूढ़जन राचि ॥ ५२८
ब्रह्मज्ञानको विश्वमें, वैरी है विभचार ।
ब्रह्मचर्य्य सो मित्र नहिं, इह निश्चै उर धारि ॥ ५२९
कायर कृपण समान नहिं, सुभट न त्यागी तुल्य ।
रंक न आसादास से, लहै न भाव अतुल्य ॥ ५३० ॥
संत न आशारहित से, आशा त्यागें साध ।
साध समान अवाध नहिं, करहिं तत्त्व आराध ॥ ५३१ ॥
निजगुण से नहिं भूषणा, भूखन चाहि समान ।
वस्त्र न दश दिश सारिखे, इह भाषें भगवान ॥ ५३२ ॥
भोजन तृपति समान नहिं, भाजन गगन जिसौ न ।
राज न शिवपुरराज सो, जामें काळ धको न ॥ ५३३ ॥
राव न सिद्ध अनन्त से, साथ न भाव समान ।
भाव न ज्ञानानन्द से, इह निश्चै परवान ॥ ५३४ ॥
चेतनता सत्ता महा, ता सम पटरानी न ।
शक्ति अनंतानंतसी, राजलोक जानी न ॥ ५३५ ॥
नारक से दुखिया नहीं, विषयी देव जिसै न ।
चिंतावान न मिनष से, असहाई पसु से न ॥ ५३६ ॥
सूक्षम अलभ भजापता,-जीव निगोद निवास ।
ता सम सूक्षम थावर न, इह जिन आज्ञा भास ॥ ५३७ ॥

अलस्या से बेइन्द्रिया, और न अलप सरीर ।
नहीं कुंथिया से अलप, ते इन्द्रिय तन वीर ॥ ५३८ ॥
काणमच्छिका से न तुछ, चौइन्द्रिय तन धार ।
तन्दुलमच्छ समान तुछ, पंचेन्दी न विचार ॥ ५३९ ॥
चुगली-चारी अति बुरी, जोरी जारी ताप ।
चोरी चमचोरी तथा, जूवा आमिष पाप ॥ ५४० ॥
मदिरा मृगया[1] मांगना, पर महिलासूं प्रीति ।
परद्रोह परपंच अर, पाखंडादि प्रतीति ॥ ५४१ ॥
तजौ अभक्षण भक्ष्य[2] अरु, तजौ अगम्यागम्य ।
तजौ विपर्जै भाव सहु, त्याग हु पाप अरम्य ॥ ५४२ ॥
इनसी और न कुक्रिया, नरक निगोद प्रदाय ।
सकल कुक्रिया-त्याग सो, और न ज्ञान उपाय ॥ ५४३ ॥
उज्जल जल गाल्यौ उचित, सोध्यौ अन्न अडंक ।
ता सम भक्ष्य न लोकमैं, भाषैं विवुध निसंक ॥ ५४४ ॥
मद्य मांस मधु मांखणा, ऊमरादि फल निंदि ।
इन से अभख न लोकमैं, निंदैं नर जगवंदि ॥ ५४५ ॥
वेस्या दासी परत्रिया तिनसौं धारै प्रीति ।
एहि अगम्यागम्य है, या सम नाहिं अनीति ॥ ५४६ ॥
होय कलंकी सारखे, नाहिं अनीती कोय ।
वज्री चक्री सारिखे, नीतिवान नहिं जोय ॥ ५४७ ॥
गज नहिं कोइ गजेंद्र से, मृग मृगेंद्र से नाहिं ।
खग नहिं कोइ खगेंद्र से, जे अति जोर धराहिं ॥ ५४८ ॥
वादित्र न कोइ वीनसे, सुरपति से न प्रवीन ।
वाण न कोइ अमोघ से, हिंसक से न मलीन ॥ ५४९ ॥
असन न पान पियूँष[3] से, विसन न द्यूत समान ।
वस्त्राभरण न लोकमैं देवलोक सम आन ॥ ५५० ॥
वाजित्री न महेंद्र से, पंच कल्याणक माहिं ।
सदा वजावें राग धरि, गावें संसै नाहिं ॥ ५५१ ॥

१ शिकार । २ भोजन । ३ अमृत ।

अस्व नहीं जात्यस्व से, कटक न चक्रिसमान ।
अलंकार नहि मुकट से, अंग न सीस समान ॥ ५५२ ॥
पालें बाल जु ब्रह्मव्रत, ता सम पुरुष न नारि ।
खोवै वृद्धहिं ब्रह्मव्रत, ता सम पसु न विचारि ॥ ५५३ ॥
वज्र चक्र से लोकमें, आयुध और न वीर ।
वज्रायुध चक्रायुधी, तिन से प्रवल न धीर ॥ ५५४ ॥
हल मुसलायुध सारिखे, भद्रभाव नहिं भूप ।
नहिं धनुपायुध सारिखे, केलि कुतूहल रूप ॥ ५५५ ॥
नाहिं त्रिसूलायुध जिसै, और न भयंकर कोइ ।
नहिं पहुपायुध[1] सारिखे, महा मनोहर होइ ॥ ५५६ ॥
धर्मायुध से धर्मधर, सर्वोत्तम सवनाथ ।
और न जानों लोकमें, सकल जिनोंके साथ ॥ ५५७ ॥
नहिं विभचारी सारिखा, पापाचारी और ।
नाहिं ब्रह्मचारी समा, आचारी सिरमौर ॥ ५५८ ॥
मायासी कुलटा नहीं, लगी जगतके संग ।
विरचै क्षणमें पापिनी, परकीया वहु रंग ॥ ५५९ ॥
नहिं चिद्रूपा सिद्धिसी, सुकिया जगत मँझार ।
नहिं नायक चिद्रूप सो, आनंदी अविकार ॥ ५६० ॥
न्यारी होय न चेतना, है चेतनको रूप ।
रामरूपसी नहिं रमा, रामस्वरूप अनूप ॥ ५६१ ॥
कनक-कामिनी-रागतें. लखी जाय नहिं सोइ ।
संजम सील सुभावतें, ताको दरसन होइ ॥ ५६२ ॥
सील ओपमा बहुत हैं, कहै कहाँलौं कोय ।
जानें श्री जिनराजजू, सीलसिरोमणि सोय ॥ ५६३ ॥
दौलति और न ऋद्धिसी, ऋद्धि न बुद्धि समान ।
बुद्धि न केवल सिद्धिसी, इह निश्चै परवान ॥ ५६४ ॥

इति शील-उपमा वर्णन ।

अथ शीलस्वरूप निरूपण ।

कह्यौ दोय विध सीलव्रत, निश्चै अर व्यवहार ।
सो धारौ उरमें सुधी, त्यागौ सकल विकार ॥ ५६५ ॥

[1] कामदेव ।

निश्चै परम समाधितैं, खिसवौ नाहिं कदाचि ।
लखिवौ आतमभावको, रहिवौ निजमें राचि ॥ ५६६ ॥

निज परणति परगट जहां, पर परणति परिहार ।
निश्चै सील निधान जो, वर्जित सकल विकार ॥ ५६७ ॥

पर परणति जे परणमें, ते विभचारी जानि ।
मानि ब्रह्मचारी तिके, लेंहि ब्रह्म पहचानि ॥ ५६८ ॥

परम सुद्ध परणति विषैं, मगन रहै धरि ध्यान ।
पावें निश्चै सीलकों, भावें आतमज्ञान ॥ ५६९ ॥

निज परणति निज चेतना, ज्ञानसुरूपा होइ ।
दरसनरूपा परम जो, चारितरूपा सोइ ॥ ५७० ॥

जड़रूपा जगबुद्धि जो, आपापर न लखेह ।
पर परणति सो जानिए, तन-धन माहिं फसेह ॥ ५७१ ॥

पर परणतिके मूल ए, राग दोष मद मोह ।
काम क्रोध छल लोभ खल, परनिंदा परद्रोह ॥ ५७२ ॥

दंभ प्रपंच मिथ्यात मल, पाखंडादि अनंत ।
इन करि जीव अनादिके, भव भवमें भटकंत ॥ ५७३ ॥

जौ लग मिथ्यापरणती, सठजनके परकास ।
तौ लग सम्यकपरणती,—होय न ब्रह्मविकास ॥ ५७४ ॥

जोगीरासा ।

तजि विभचारी भाव, सवै ही भए ब्रह्मचारी जे ।
ते शिवपुरमें जाय विराजे, भव्यन भवतारी जे ॥ ५७५ ॥

विभचारी जे पापाचारी, ते भरमें, भववनमें ।
पर परणतिसों रचिया जौलों, तौलों जाय न सिवमें ॥ ५७६ ॥

जगमें पागे जड़ अनुरागे, लागे नाहीं निजमें ।
कर्म कर्मफलरूप होयकै, परे भँवर भ्रम रजमें ॥ ५७७ ॥

ज्ञानचेतना लखी न अवलों, तत्त्वस्वरूपा सुद्धा ।
जामें कर्म न भर्मकलपना, भाव न एक असुद्धा ॥ ५७८ ॥

मिथ्यापरणति त्यागै कोई, सम्यकदृष्टी होई ।
अनुभवरसमें भीगै जोई, सीलवंत है सोई ॥ ५७९ ॥

निश्चै सील वखान्यूं एई, अचल अखंड प्रभावा।
परम समाधिमई निजभावा, जहां न एक विभावा॥ ५८०

छन्द चाल।

अब सुनि व्यवहार सुसीला, धारनमें करहु न ढीला।
द्रिढ़ व्रत्त आखड़ी धरिवौ, नारिको संग न करिवौ॥ ५८१॥
नारी है नरकप्रतोली, नारिनमें कुमति अतोली।
ए महा मोहकी टोली, सेवें जिनकी मति भोली॥ ५८२॥
नारी जग-जन-मन चोरै, नारी भवजलमें वोरै।
भव भव दुखदायक जानों, नारीसों प्रीति न ठानों॥ ५८३॥
त्यागें नारीको संगा, नहिं करें सीलव्रत भंगा।
ते पावें मुक्तिनिवासा, कवहु न करें भववासा॥ ५८४॥
इह मदन महा दुखदाई, याकू जीतें मुनिराई।
मुनिराय महा वलवंता, मनजीत मानजित संता॥ ५८५॥
सीलहिं सुरपति सिर नावै, सीलहिं शिवपुर जति जावै।
साधू हैं सीलसरूपा, यह सील सुव्रत्त अनूपा॥ ५८६॥
मुनिके कछु हू न विकारा, मन वच तन सर्व प्रकारा।
चितवौ व्रत्त चेतन माही, नारीको सपरस नाहीं॥ ५८७॥
ग्रहपतिके कछुक विकारा, तातें ए अणुव्रत धारा।
परदारा कवहू न सेवै, परधन कवहू नहिं लेवै॥ ५८८॥
जेती जगमें परनारी, वेटी वहनी महतारी।
इह भांति गिनै जो भाई, सो श्रावक शुद्ध कहाई॥ ५८९॥
निजदारा पर संतोषा, नहिं काम राग अति पोषा।
विरकत भावैं कोउ समये, सेवै निज नारी कम ये॥ ५९०॥
दिनको न करै ए कामा, रात्री कवहुक परिणामा।
मैथुनके समये मवंना[1], नहिं राग करै रति रमना॥ ५९१॥
परवी सव ही प्रतिपालै, व्रत सील धारि अघ टालै।
अष्टाह्निक तीनों धारै, भादवके मास हु सारै॥ ५९२॥
ए दिवस धर्मके मूला, इनमें मैथुन अघ थूला।
अवर हु जे व्रतके दिवसा, पालै इन्द्रिनिके न वसा॥ ५९३॥

[1] मौन।

अपने अर तियके व्रत्ता, सव ही पालै निरवृत्ता ।
या विधि निजनारी सेवै, परि मनमें ऐसें वेवै ॥ ५९४ ॥
कव तजिहौं काम विकारा, इह कर्म महा दुख भारा ।
यामें हिंसा वहु होवै, या कर्म करें सुभ खोवै ॥ ५९५ ॥
जैसे नाली तिल भरिये, रंच हु खाली नहिं धरिये ।
तातौ कीलो ता माहैं, लोहेको संसै नाहैं ॥ ५९६ ॥
घालें तिल भस्म जु होई, यह परतछि देखौ कोई ।
तैसे ही लिंग करि जीवा, नासें भग माहिं अतीवा ॥ ५९७ ॥
तातें यह मैथुन निंद्या, याकों त्यागें जगवंद्या ।
धन धन्निभाग जाको है, जो मैथुनतें जु वच्यौ है ॥ ५९८ ॥
जे वाल ब्रह्मव्रत धारें, आजनम न मैथुन कारें ।
तिनके चरननकी भक्ती, दे भव्यजीवकूं मुक्ती ॥ ५९९ ॥
हमहू ऐसे कव होहैं, तजि नारी व्रत करि सोहैं ।
या मैथुनमें न भलाई, परतछ दीखै अघ भाई ॥ ६०० ॥
अपनीहू नारी त्यागै, जव जिनवरके मत लागै ।
यह देह हु अपनी नाहीं, चेतन वैठौ जा माहीं ॥ ६०१ ॥
तौ नारी कैसे अपनी, यह गुरु आज्ञा उर खपनी ।
या विधि चितवै मन माहीं, कव घर तजि वनकूं जाहीं ॥ ६०२ ॥
जवलों वलवान जु मोहा, तवलों इह मनमथ द्रोहा ।
छांडै नहिं हमसों पापी, तातें व्याही त्रिय थापी ॥ ६०३ ॥
जव हम वलवान जु होहैं, मारें मनमथ अर मोहै ।
असमर्था नारी राखें, समरथ आतमरस चाखें ॥ ६०४ ॥
यह भावन नित भावंतो, घर माहिं उदास रहंतो ।
जैसें परघर पाहुणियो, तैसें ये श्रावक गिणियो ॥ ६०५ ॥
वह तौ घर पहुंचौ चाहै, यह शिवपुरकों जु उमाहै ।
अति भाव उदासी जाको, निज चेतनमें चित ताको ॥ ६०६ ॥
छांडै सव राग रु दोषा, धारै सामायक पोषा ।
कवहू न रत्त है घरमें, है मगन त्रियासों न रमें ॥ ६०७ ॥
मुख आदि विकारा जे हैं, छांडें नर ज्ञानी ते हैं ।
इह त्रियसेवनविधि भाखी, विन पाणिग्रह नहिं राखी ॥ ६०८ ॥

श्रावकव्रत धरि सुरपति ह्वै, सुरपतितैं चय नरपति ह्वै ।
फुनि मुनि ह्वै पावै मुक्ती, इह शीलप्रभाव सु जुक्ती ॥ ६०९ ॥
नहिं शील सारिखौ कोई, दे सुरपुर शिवपुर होई ।
जे वाल ब्रह्मचारी हैं, सम्यकदर्शन धारी हैं ॥ ६१० ॥
तिनके सम है नहिं दूजा, पावै त्रिभुवन करि पूजा ।
जे जीव कुशीले पापा, पावें भव भव संतापा ॥ ६११ ॥
विभचारी तुल्य न होई, अपराधी जगमें कोई ।
ह्वै नरक निगोद निवासा, पापनिको अति दुख भासा ॥ ६१२ ॥
जेते जु अनाचारा हैं, विभचार पिछै सारा हैं ।
त्यागौ भविजन विभचारा, पालौ श्रावक आचारा ॥ ६१३ ॥

दोहा ।

मुख्य वारता यह भया, वाल ब्रह्मव्रत लेय ।
जो यह व्रत धार न सके, तौ इक व्याह करेय ॥ ६१४ ॥
दूजी नारि न जोग्य है, व्रतधारिनकों वीर ।
भोग समान न रोग है, इह धारै उर धीर ॥ ६१५ ॥
जो अभिलाषा वहुत है, विषयभोगकी जाहि ।
तौ विवाह औरहु करै, नहिं परदारा चाहि ॥ ६१६ ॥
परदारा सम पाप नहिं, तीनलोकमें और ।
जे सेवें परनारिकों, लहैं नर्कमें ठौर ॥ ६१७ ॥
नरक माहिं वहु काललों, दुख देखें अधिकाय ।
वज्रागनि पुतलीनिसों, तिनको अंग तपाय ॥ ६१८ ॥
जरि जरि तिनकी देह जो, जैसेको तैसो हि ।
रहै सागरावधि तहाँ, दुःख सहंतो सोहि ॥ ६१९ ॥
कहिवेमें आवें नहीं, नरकवासके कष्ट ।
ते पावें पापी महा, परदारातें दुष्ट ॥ ६२० ॥
नारकके वहु कष्ट लहि, खोटे नर तिर होय ।
जन्म जन्म दुरगति लहैं, दुख देखें अघ सोय ॥ ६२१
अर याही भवमें सठा, अपजस दुःख लहेय ।
राजदंड परचंड अति, पावें परतिय सेय ॥ ६२२ ॥

बेसरी छंद ।

जगमें धन वल्लभ है भाई, धनहूतें जीतव अधिकाई ।
जीतवतें लज्जा है वल्लभ, लज्जातें नारी नर दुल्लभ ॥ ६२३ ॥
जे पापी परदारा सेवें, ते वहुतनिकी लज्जा लेवें ।
वैर वढ़ै जु वहुसे तीं वीरा, परदारा सेवें नहिं धीरा ॥ ६२४ ॥
धन जीतव लज्जा जस माना, सर्व जाय या करि व्रत ज्ञाना ।
कुलकों लागै वड़ो कलंका, या अघकों निंदैं अकलंका ॥ ६२५ ॥
परनारीरत पापिनकों जे, दस वेगा उपजें मनसों जे ।
चिंता अर देखन अभिलाषा, फुनि निसास नाँखन भी भाषा ॥६२६॥
कामज्वर होवै परकासा, उपजे दाह महादुख भासा ।
भोजनकी रुचि रहै न कोई, वहुरि महामूरछा होई ॥ ६२७ ॥
तथा होय सो अति उनमत्ता, अंध महा अविवेक प्रमत्ता ।
जानौं प्राण रहनको संसै, अथवा छूटें प्राण निसंसै ॥ ६२८ ॥
कहे वेग ए दश दुखदाई, विभचारीके उपजें भाई ।
कौलग वर्णन कीजै मित्रा, परदारा सेवें न पवित्रा ॥ ६२९ ॥
इही पाप है मेर समाना, और पाप है सरस्यूं दाना ।
याके तुल्य कुकर्म न कोई, सर्व दोषको मूल जु होई ॥ ६३० ॥
नर तेही परदारा त्यागें, नारी जे पर पुरुष न लागें ।
सर्वोत्तम वह नारि जु भाई, ब्रह्मचर्य्य आजन्म धराई ॥ ६३१ ॥
व्याह करै नहिं जो गुणवन्ती, विषय भाव त्यागै गुणवन्ती ।
ब्राह्मी सुन्दरि ऋषभ सुता जे, रहित विकार सुधर्म रता जे ॥ ६३२ ॥
चेटक पुत्री चंदनवाला, ब्रह्मचारिणी व्रत्त विशाला ।
वहुरि अनन्तमती अति शुद्धा, वणिकसुता व्रत शील प्रवुद्धा ॥ ६३३ ॥
इत्यादिक जो कीर्ति चितारै, निरमल, निरदूषण, व्रत पालै ।
महासती जाकै न विकारी, विषयन ऊपरि भाव न धारी ॥ ६३४ ॥
आतम तत्त्व लख्यौ निरवेदा, काम कलपना सवै निषेदा ।
पुरुष लखै सहु सुत अरु भाई, पिता समाना रंच न काई ॥ ६३५ ॥
धारै वाल ब्रह्मव्रत शुद्धा, गुरुप्रसाद भई प्रतिवुद्धा ।
ऐसी समरथ नाहीं पावै, तो पातिव्रत व्रत्त धरावै ॥ ६३६ ॥
मात पिताकी आज्ञा लेती, एक पुरुष धारै विधि सेती ।
पाणिग्रहण कर सो कुलवन्ती, पतिकी सेव करै गुणवन्ती ॥ ६३७ ॥

और पुरुष सहु पिता समाना, कै भाई पुत्रा करि माना ।
मेघेस्वर राजाकी राणी, तथा रामकी राणी जाणी ॥ ६३८ ॥
श्रीपाल भूपतिकी नारी, इत्यादिक कीरति जु चितारी ।
जगसों विरकत भाव प्रवर्त्तैं, औसर पाय सिताव निवर्त्तैं ॥ ६३९ ॥
मैथुनकों जानें पशुकर्मा, यह उत्तम नारिनको धर्मा ।
ताजि परिवार जु सम्यकवंती, है आर्या तप संजमवंती ॥ ६४० ॥
ज्ञान विवेक विराग प्रभावै, स्त्रीपद छांड़ि स्वर्गपुर जावै ।
सुरग माहिं उतकिष्ठा सुर है, वहुत काल सुख लहि फुनि नर है ॥ ६४१ ॥
धारै महाव्रत्त निज ध्यावै, कर्म काटि शिवपुरकों जावै ।
शिवपुर सिद्धक्षेत्रकूं कहिये, और न दूजौ शिवपुर लहिये ॥ ६४२ ॥
शिव है नाम सिद्ध भगवन्ता, अष्टकर्म हर देव अनन्ता ।
भुक्ति मुक्तिदायक इह शीला, या धरवेमें ना कर ढीला ॥ ६४३ ॥
शील सुधारस पान करै जो, अजरामर पद काय धरै जो ।
शील बिना नारी धृग जन्मा, जन्म जन्म पावै हि कुजन्मा ॥ ६४४ ॥
रानी राव जशोधर केरी, शील विना आपद वहुतेरी—।
लही नरकमें, तातैं त्यागौ, कदै कुशीलपंथ मति लागौ ॥ ६४५ ॥
शील समान न धर्म जु होई, नाहिं कुशील समौ अघ कोई ।
जे नर नारि शीलव्रत धारें, ते निश्चै परब्रह्म निहारें ॥ ६४६ ॥
त्यागें दशों दोष व्रतवन्ता, ते सुनि एकचित्त करि संता ।
अंजन मंजन वहु सिंगारा, करना नहीं व्रतिनिकों भारा ॥ ६४७ ॥
तजिवौ तिनकों असन गरिष्ठा, अर तजिवौ संसर्ग सपष्टा ।
नरकों नारीको संसर्गा, नारिनकों उचित न नरवर्गा ॥ ६४८ ॥
है संसर्ग थकी जु विकारा, अर तजिवौ तौर्यत्रिक सारा ।
तौर्यत्रिकको अर्थ जु भाई, गीत नृत्य वाजित्र वजाई ॥ ६४९ ॥
मुनिको इनतें कछुहु न कामा, श्रावकके पूजा विश्रामा ।
करे जिनेश्वर पदकी पूजा, जिनप्रतिमा विन और न दूजा ॥ ६५० ॥
अष्टद्रव्यसे पूजा करई, तहां गीत वादित्र जु धरई ।
नृत्य करै प्रभुजीके आगें, जिनगुनमें भविजन मन लागै ॥ ६५१ ॥

१ धीमतासे ।

और न सिंगारादिक गाव, केवल जिनपदसों उर लाव।
नारी-विषयनको संकलपा, ताजिवौ बुधकों सर्व विकलपा ॥ ६५२ ॥
अंग उपंग निरखनों नाहीं, जो निरखै तो दोष धराहीं।
सतकारादिक नारीजनसों, करनों नाहीं मन-वच-तनसों ॥ ६५३ ॥
पूरव भोग-विलास न चितवौ, अर आगामी वांछा हरिवौ।
सुपने हू नहिं मनमथ कर्मा, ए दश दोष तजै व्रत धर्मा ॥ ६५४ ॥
व्रत नहीं शील वरावर कोई, जिनशासनकी आज्ञा होई।

उक्तं च श्रीज्ञानार्णवमध्ये

आद्यं शरीरसंस्कारो द्वितीयं वृष्यसेवनम् ।
तौर्यत्रिकं तृतीयं स्यात्संसर्गस्तुर्यमिष्यते ॥ १ ॥
योषिद्विषयसंकल्पं पंचमं परिकीर्तितं ।
तदंगवीक्षणं षष्ठं सत्कारः सप्तमो मतः ॥ २ ॥
पूर्वानुभूतसंभोगः स्मरणं स्यात्तदष्टमम् ।
नवमे भावनी चिंता दशमे वस्तिमोक्षणं ॥ ३ ॥

कवित्त ।

तिय-थल-वासि प्रेमरुचि निरखन, देखि रीझ भाषत मधु वैन ।
पूरव भोग केलिरस चितवन, गरु व अहार लेत चित चैन ।
करि सुचि तन सिंगार वनावत, तिय परजंक मध्य सुखसैन ।
मनमथकथा उदरभरि भोजन, ए नव वाड़ि जानि मत जैन ॥ ६५५ ॥

दोहा

अतीचार सुनि पांच अव, सुनि करि ताजि वर वीर ।
जव चौथो व्रत शुद्ध ह्वै, इह भाषें मुनि धीर ॥ ६५६ ॥
व्याह-सगाई पारकी, किरिया अव्रतपोष ।
शीलवंत नर नहिं करै, जिन त्यागे सहु दोष ॥ ६५७ ॥
इत्वरिका कुलटा त्रिया, ताकी है द्वै जाति ।
परिग्रहीता एक है, जाके सामिल खाति ॥ ६५८ ॥
अपरिग्रहीता दूसरी, जाके स्वामि न कोय ।
ए इत्वरिका द्वै विधा, पर-पुरुषा-रत होय ॥ ६५९ ॥
जिनसों रहनों दूर अति, तिनको संग तजेय ।
तिनसों संभाषण नहिं, तवै जनम सुधरेय ॥ ६६० ॥

गमन करै नहिं वा तरफ, विचरै जहाँ कुनारि ।
डारि नारिको नेह नर, धरै व्रत्त अघटारि ॥ ६६१ ॥
तजि अनंगक्रीड़ा सबै, क्रीड़ा अघकी एहि ।
मैन[1] मान मन जीति करि, ब्रह्मचय व्रत लेहि ॥ ६६२ ॥
निज नारीहूतैं सुधी, कर न अधिकी प्रीति ।
भाव तीव्र नहिं कामके, धरै धर्मकी रीति ॥ ६६३ ॥
कहे अतिक्रम पंच ए, इनमें भला न कोय ।
ए सब ही तजिया थका, शील निर्मला होय ॥ ६६४ ॥
नीली सेठसुता सुमा, शीलव्रत्तपरसाद ।
देवन करि पूजा लही, दूरि भयो अपवाद[2] ॥ ६६५ ॥
शीलप्रभावै जयप्रिया[3], सुभ सुलोचना नारि ।
लही प्रशंसा सुरनि करि, सम्यकदर्शन धारि ॥ ६६६ ॥
शील-प्रसादै रामजी, जनकसुता सुभ भाव ।
पूज्य सुरासुर नरनि करि, भए जगतकी नाव ॥ ६६७ ॥
सेठ विजय अर सेठनी, विजया शीलप्रसाद ।
भई प्रशंसा मुनिन करि, भये रहित परमाद ॥ ६६८ ॥
शुक्लपक्ष अर कृष्णपख, धारि शीलव्रत तेहि ।
तीनलोक-पूजित भये, जिन आज्ञा उर लेहि ॥ ६६९ ॥
सेठ सुदर्शन आदि बहु, सीझे शीलप्रताप ।
नमस्कार या व्रत्तकों, जो मैटे भवताप ॥ ६७० ॥
जे सीझे ते शील करि, और न मारग कोय ।
जनम जरा मरणादिको, नाशक यह व्रत होय ॥ ६७१ ॥
धरि कुशील बहु पापिया, बूडे नरक मँझार ।
तिनको को निरणय करै, कहत न आवै पार ॥ ६७२ ॥
रावण खोटे भाव धरि, गये अधोगति माहिं ।
धवल सेठ नरकैं गयो, यामें संशय नाहिं ॥ ६७३ ॥
कोटपाल जमदंड शठ, करि कुशील अति पाप ।
गयो नरककी भूमिमें, लहि राजातें ताप ॥ ६७४ ॥
बहुरि हुतौ जमदंड इक, कोटपाल गुणवंत ।
नीति धर्म परभावतें, पायौ जस जयवंत ॥ ६७५ ॥

१ कामदेव । २ निंदा । ३ जयकुमारकी स्त्री ।

सर्व गुणां हैं शीलमें, अरु कुशीलमें दोप ।
नाहिं कुशील समान कोउ, और पापको पोष ॥ ६७६ ॥
इन दोउनके गुण अगुण, कहत न आवै थाह ।
जानें श्री जिनरायजू, केवलरूप अथाह ॥ ६७७ ॥
महिमा शील महंतकी, कहैं महा गणधार ।
भाषै श्रीजिन भारती, रटै साधु भव तार ॥ ६७८ ॥
सरवारथसिधिके महा, अहमिन्द्रा परवीन ।
गावें गुण व्रत शीलके, जे अनुभव रसलीन ॥ ६७९ ॥
कथैं कीर्ति इन्द्रादिका, जपें सुजस जोगिन्द्र ।
लौकान्तिक वरणन करें, रटैं नरिन्द्र फणीन्द्र ॥ ६८० ॥
चन्द सूर सुर असुर खग, महिमा शील करेय ।
सूरि संत अध्यापका, मन वच काय धरेय ॥ ६८१ ॥
हमसे अलपमती कहौ, कैसें गुण वरणेह ।
नमों नमों व्रत शीलकों, रहैं ऋषी शरणेह ॥ ६८२ ॥
दया सत्य अस्तेय अर, शीलै करि परिणाम ।
भाषों पंचम व्रत्त जो, परिग्रहत्याग सुनाम ॥ ६८३ ॥

इति चतुर्थव्रतनिरूपण ।

इन चारनि विन ना हुवै, परिग्रहको परिहार ।
परिग्रहके परिहार विन, नहिं पावै भवपार ॥ ६८४ ॥
मुनिकों सर्वहि त्यागवौ, अंतर वाहिज संग ।
धर्म अकिंचन धारिवौ, करिवौ तृष्णाभंग ॥ ६८५ ॥
अपने आतमभाव विनु, जो पररूपा वस्तु ।
सो परिग्रह भाषौ सुधी, ताको त्याग प्रसस्त ॥ ६८६ ॥
सर्व भेद चउवीस हैं, चउदस अर दस भेलि ।
अन्तर वाहिज संग ये, दुरगति फलकी वेलि ॥ ६८७ ॥
परिग्रह द्वैविध त्यागिये, तव लहिये निज भाव ।
ब्रह्मज्ञानके शत्रु ये, नर्क निगोद उपाय ॥ ६८८ ॥
अंतरंग परिग्रहतनें, भेद चतुर्दस जान ।
मिथ्यात्वादिक जो सवै, जिन आज्ञा उर आन ॥ ६८९ ॥

राग दोष मिथ्यात अर, चउ कषाय क्रोधादि ।
षट हास्यादिक वेद फुनि, चउदस भेद अनादि ॥ ६९० ॥
राग कहावै प्रीति अरु, दोष होइ अप्रीति ।
राग दोष तज भव्यजन, धरै धर्मकी रीति ॥ ६९१ ॥
जहां तत्त्व श्रद्धा नहीं, सो मिथ्यात कहाय ।
जड़ चेतनको ज्ञान नहिं, भर्मरूप दरसाय ॥ ६९२ ॥
क्रोध मान चउ लोभ ये, चउ कषाय बलवन्त ।
हतिये ज्ञान सुवानतें, लहिये भाव अनन्त ॥ ६९३ ॥
हास्य अरति अरु शोक भय, बहुरि गलानि वखान ।
तजिये षट हास्यादिका, मोह प्रकृति दुखदानि ॥ ६९४ ॥
वेद भेद हैं तीन फुनि, पुरुष नपुंसक नारि ।
चेतनतें न्यारे लखौ, जिनवानी उर धारि ॥ ६९५ ॥
एक समय इक जीवकै, उदय होय इक वेद ।
तातैं गनिये वेद इक, यह गावें निरवेद ॥ ६९६ ॥
संख असंख अनन्त हैं, इनि चउदहके भेद ।
अन्तरंग ये संग तजि, करिये कर्म विछेद ॥ ६९७ ॥
अन्तर संग तजे विना, होइ न सम्यकज्ञान ।
विना ज्ञान लोभ न मिटै, इह भाषैं भगवान ॥ ६९८ ॥
अब सुन वाहर संग जे, दलधा हैं दुखदाय ।
मुनिनें त्यागे सर्व ही, दीये दोष उड़ाय ॥ ६९९ ॥
क्षेत्र वास्तु चौपद द्विपद, धान्य द्रव्य कुप्यादि ।
भाजन आसन सेज ये, दस परकार अनादि ॥ ७०० ॥
तजैं संग चउवीस सहु, भजें नाथ चउवीस ।
सजैं साज शिवलोकको, सबमें बड़े मुनीस ॥ ७०१ ॥
मूर्छा ममता सहु तजी, तृष्णा दई उड़ाय ।
नगन दिगम्बर भव तिरें, धरें न बहुरी काय ॥ ७०२ ॥
श्रावकके ममता अलप, बहुतृष्णाको त्याग ।
राग नहीं पर द्रव्यसों, एक धर्मको राग ॥ ७०३ ॥
धरम हेत खरचै दरब, गर्व नाहिं मन माहिं ।
सर्व जीवसौं मित्रता, दुराचारता नाहिं ॥ ७०४ ॥

जीव दयाके कारणें, तजौ वहुत आरम्भ ।
परिग्रहको परिमाण करि, तजौ सकल ही दम्भ ॥ ७०५ ॥
लोभ लहरि मेटी जिनौं, धरचौ धर्म-संतोष ।
ते श्रावक निरदोष हैं, नहीं पापको पोष ॥ ७०६ ॥
क्षेत्र आदि दस संगको, कियौ तिनैं परिमाण ।
राख्यौ परिग्रह अलप ही, तिन सम और न जाण ॥ ७०७ ॥
कह्यौ परिग्रह दस विधा, वहिरंगा जे वीर ।
तिनके भेद सुनू भया, भाखें मुनिवर धीर ॥ ७०८ ॥

चौपई ।

खेत्र परिग्रह खेत वखान, जहाँ ऊपजै धान्य निधान ।
वास्तु कहावै रहवा तना, मन्दिर हाट नौहरा वना ॥ ७०९ ॥
हस्ती घोटक ऊंट र आदि, गाय वलध महिषी इत्यादि ।
होय राखणों जो तिरजंच, चौपद परिग्रह जानि प्रपंच ॥ ७१० ॥
द्विपद परिग्रह दासी दास, पुत्र कलत्रादिक परकास ।
धान्य कहावै गेहूं आदि, जीवन जनको अन्न अनादि ॥ ७११ ॥
धनकनकादिक सवही धात, चिन्तामणि आदिक मणि जात ।
चौवा चन्दन अगर सुगन्ध, अतर अगरजा आदि प्रवन्ध । ७१२ ॥
तेल फुलेल घृतादिक जेह, वहुरि वस्त्र सव भांति कहेह ।
ये सव कुप्य परिग्रह कहे, संसारी जीवनिनें गहे ॥ ७१३ ॥
भाजन नाम जु वासन होय, धातु पषाण काठके कोय ।
माटी आदि कहाँ लग कहैं, साधन भाजनके सहु गहें ॥ ७१४ ॥
आसन वैसनके वहु जान, सिंघासन प्रमुखा परवान ॥
गद्दी गिलम आदि जेतक, त्यागौ परिग्रह धारि विवेक ॥ ७१५ ॥
सज्या नाम सेझको कह्यौ, भूमिशयन मुनिराजनि गह्यौ ॥
ए दसधा परिग्रह द्वै रूप, कैइक जड़ कैइक चिद्रूप ॥ ७१६ ॥
द्विपद चतुसपद आदि सजीव, रतन धातु वस्त्रादि अजीव ।
अपने आतमतें सव भिन्न, परिग्रहतें है खेद जु खिन्न ॥ ७१७ ॥
हैं परिग्रह चिंताके धाम, इनकों त्याग लहैं शिवठाम ।
जिनवर चक्री हलधर धीर, कामदेव आदिक वर वीर ॥ ७१८ ॥

ताजि परिग्रह धारें मुनिरूप, मुनिसम और न धर्म अनूप ।
मुनि होवेकी शक्ति न होय, श्रावक व्रत धारै नर सोय ॥ ७१९ ॥
करै परिग्रहको परमाण, त्यागै तृष्णा सोहि सुजाण ।
इह परिग्रह अति दुखको मूल, है सुखतें अति ही प्रतिकूल ॥ ७२० ॥
जैसें वेगारी सिर भार, तैसें यह परिग्रह अधिकार ।
जेतौ थोरौ तेतौ चैन, यह आज्ञा गावें जिन वैन ॥ ७२१ ॥
तातें अल्पारम्भी होय, अल्प परिग्रह धारै सोय ।
ताहूकों नित त्यागौ चहै, मन माहीं अति विरकत रहै ॥ ७२२ ॥
जैसें राहु केतु करि कान्ति, रवि शशिकी ह्वै और हि भांति ।
तैसें परणति होय मलीन, आतमकी परिग्रह करि दीन ॥ ७२३ ॥
ध्यान न उपजै या करि कवै, याहि तजें पावै शिव तवै ।
समताको यह वैरी होय, मित्र अधीरपनाको सोय ॥ ७२४ ॥
मोह तनों विश्राम निवास, यातें भविजन रहहि उदास ।
नासै सुखकों सुभतें दूर, असुभ भावतें है परिपूर ॥ ७२५ ॥
खानि पापकी दुखकी रासि, रह्यौ आपदाको पद भासि ।
आरति रुद्र मकाशइ कंग (?), धर्म, ध्यानको धरइ न संग ॥ ७२६ ॥
गुण अनंत धन धान्यौ चहै, सो परिग्रहतें दूरहि रहै ।

दोहा ।

लीलावन दुरध्यानको, वहु आरंभ सरूप ।
आकुलताकी निधि महा, संसैरूप विरूप ॥ ७२७ ॥
मदको मंत्री काम घर, हेतु शोकको सोइ ।
कलह तनों क्रीड़ाग्रह, जनक वैरको होइ ॥ ७२८ ॥
धन्य घरी वह होयगी, जव तजियेगौ संग ।
यामें वड़पन नांहि कछु, महा दोषको अंग ॥ ७२९ ॥
हिंसादिक अपराधको, कारण मूल वखानि ।
जनम जनममें जीवको, दुखदाई सो जानि ॥ ७३० ॥
धृग धृग द्विविधा संगको, जो रोकै शिव संग ।
चहुँगति माहिं भमाय करि, करै सदा सुख भंग ॥ ७३१ ॥
जो यामें वड़पन गिनै, सो मूरख मतिहीन ।
परिग्रहवान समान नहिं, और जगतमें दीन ॥ ७३२ ॥

धन्य धन्य धरमज्ञ जे, याकू तुच्छ गिनेय ।
माया ममता मूरछा, सर्वारंभ तजेय ॥ ७३३ ॥
यही भावना भावतो, भविजन रहै उदास ।
मनमें मुनिव्रतकी लगन, सो श्रावक जिनदास ॥ ७३४ ॥
वहुरि विचारै सो सुधी, अगनि धरै गुण शीत ।
जो कदापि तौहु न कवै, परिग्रहवान अभीत ॥ ७३५ ॥
कालकूट जो अमृता, होइ दैवसंजोग ।
नहिं तथापि सुख होय ये, इन्द्रिनके रसभोग ॥ ७३६ ॥
विषयनिमें जे राचिया, ते रुलि हैं भव माहिं ।
सुख है आतमज्ञानमें, विषय माहिं सुख नाहिं ॥ ७३७ ॥
थिर है तड़ितै[1] प्रकाश जो, तौहु देह थिर नाहिं ।
देह नेह करिवौ वृथा, यह चितवैं मन मांहि ॥ ७३८ ॥
इन्द्रजाल जो सत्य है, दैवजोग परवान ।
तौ पनि संसारी जना, नाहिं कदे सुखवान ॥ ७३९ ॥
चहुँगतिमें नहिं रम्यता, रम्य आतमाराम ।
जाके अनुभवतैं महा, है पंचमगति धाम ॥ ७४० ॥
इह विचार जाके भयौ, देहहु अपनी नाहिं ।
सो कैसे परपंच करि, वूढ़ै परिग्रह माहिं ॥ ७४१ ॥

सवैया २३ सा ।

है[2] गय पायक आदि परिग्रह, पुण्य उदै गृह होय विभौ अति ।
पाय विभौ फुनि मोहित होत, सरूप विसारि करैं परसौं रति ।
तारहि पोषण कारण काज, रच्यौ वहु आरंभ वाँधत दुर्गति ।
ज्ञानि कहै हमकूं कवहू मन, राम वहै फुनि देहहु द्यो मति ॥ ७४२ ॥
नाहिं संतोष समान जु आन है, श्रीभगवान प्रधान सुधर्मा ।
है सुखरूप अनूप इहै गुण, कारण ज्ञान हरै सव कर्मा ।
पापनिको यह वाप जु लोभ, करै अतिक्षोभ धरै अति मर्मा ।
धारि संतोष लहै गुणकोष, तजै सव दोष लहै निजमर्मा ॥ ७४३ ॥
रंक सवै जग राव रिपीसुर, जो हि धरै शुभ शील संतोषा ।
सो हि लहै निज आतम भेद, करै अघ छेद हरै दुख दोषा ।

---

१ विजलीका प्रकाश । २ घोड़ा ।

श्रावक धन्य तजै सहु अन्य, हुए जु अनन्य गहै गुण कोपा ।
काम न मोह न लोभ न लेश, गहै नहिं मान दहै रति रोपा ।। ७४४।।
लोभ समान न औगुण आन, नहीं चुगली सम पाप अरूपा ।
सत्य हि वैन कहै मुखतें सुभ, ता सम व्रत्त न तप्प निरूपा ।
पावन चित्त समान न तीरथ, आतम तुल्य न देव अनूपा ।
सज्जनता सम और कहा गुण, भूषन और न कीरति रूपा ।। ७४५ ।।
ब्रह्म सुग्यान समान कहा धन, औजस तुल्य न मृत्यु कहाई ।
देवनिको गुरु देव दयानिधि, ता सम कोइ न है सुखदाई ।
रोष समान न दोष कहैं वुध, मोक्ष समान न आनन्द भाई ।
तोष समान न कारण मोक्ष, कहैं भगवन्त कृपा उर लाई ।। ७४६ ।।
अंग प्रसंग भये वहु संग, तिनौं महिं नाहिं अभंग जु कोई ।
सुद्ध निजातम भाव अखंडित, ता महिं चित्त धरै वुध सोई ।
बंध विदारण दोष निवारण, लोक उधारण और न होई ।
जा सम कोइ न जान महामति, टारइ राग विरोध जु दोई ।। ७४७ ।।

दोहा ।

धन्य धन्य श्रावकव्रती, जो समकितधर धीर ।
तन धन आतम भावतें, न्यारे देखै वीर ।। ७४८ ।।
तन धनको अनुराग नहिं, एक धर्मको राग ।
संतोषी समता धरा, करै लोभको त्याग ।। ७४९ ।।
मोहतनी ग्यारह प्रकृति, शांत होय जब वीर ।
तब धारै श्रावकव्रता, तृष्णावर्जित धीर ।। ७५० ।।
तीन मिथ्यात कषाय वसु[1], ये ग्यारह परवान ।
पंचमठानें[2] श्रावका, इनतें रहित सुजान ।। ७५१ ।।
गई चौकरी द्वय प्रवल, जे दुरगति दुखदाय ।
रही चौकरी द्वय अबै, तिनको नाश उपाय ।। ७५२ ।।
चितवै मनमें सासतौ, है जौलग अवसाय ।
तौलग तीजी चौकरी, उदै धरै रहवाय ।। ७५३ ।।
अल्प परिग्रह धारई, जाके अल्पारंभ ।
अवसर पाय सिताव ही, त्यागै सर्वारम्भ ।। ७५४ ।।
मुनिव्रतके परसाद शिव,—है अथवा अहामिन्द्र ।
श्रावकवरत प्रभावतें, सुर है तथा सुरिन्द्र ।। ७५५ ।।

१ आठ । २ पांचवें गुणस्थानमें ।

परिग्रहको परमाण करि, जयकुमार गुणधार ।
सुर-नर कर पूजित भयौ, लह्यौ भवोदधिपार ॥ ७५६ ॥
परिग्रहकी तृष्णा करै, लुवधदत्त गुणवीत ।
गयौ दुरगती दुख लहे, जो सुनि ज्यों समश्रु नवनीत ॥ ७५७ ॥
करै जु संख्या संगकी, हरै देहतें नेह ।
अति न भ्रमावै नर पसू, गिनै आपसम तेह ॥ ७५८ ॥
बोझ बहुत नहिं लादिवौ, करनों बहुत न लोभ ।
अति संग्रह तजिवौ सदा, करनों बहुत न क्षोभ ॥ ७५९ ॥
अति विस्मय नहिं धारिवौ, रहनों निःसन्देह ।
झूठी माया जगतकी, अचिरज नाहिं गनेह ॥ ७६० ॥
परिग्रहसंख्यावरतके, अतीचार हैं पंच ।
तिनकूं त्यागें जे व्रती, तिनके पाप न रंच ॥ ७६१ ॥
क्षेत्र वास्तु संख्या करी, ताकों करै उलंघ ।
अतीचार है प्रथम यह, भाषै चउविधि संघ ॥ ७६२ ॥
काहु प्रकारे भूलि करि, जोहि उलंघै नेम ।
अतीचार ताकों लगै, भाषें पण्डित एम ॥ ७६३ ॥
द्विपद चतुसपद संगको, करि प्रमाण जो वीर ।
अभिलाषा अधिकी धरै, सो न लहै भवतीर ॥ ७६४ ॥
अतीचार दूजो इहै, सुनि तीजो अघरास ।
धन धान्यादिक वस्तुको, करि प्रमाण गुरु पास ॥ ७६५ ॥
चित संकोचि सकै नहीं, मन दौरावै मूढ़ ।
सो न लहै व्रतशुद्धता, होय न ध्यानारूढ़ ॥ ७६६ ॥
हम राख्यौ परिग्रह अलप, सरै न एते माहिं ।
ऐसें विकलप जो करै, वर्तवान सो नाहिं ॥ ७६७ ॥
कूप भाण्ड परिग्रह तनों, करि प्रमाण तन धारि ।
चित्त चाहि मेटै नहीं, सो चोथो अतिचार ॥ ७६८ ॥
शयन नाम सज्या तनों, आसन द्वय विधि होय ।
थिर आसन चर आसना, करै प्रमाण जु कोय ॥ ७६९ ॥
फुनि अधिको अभिलाष धरि, लावै व्रतहीं दोष ।
अतीचार सो पांचमो, रोकै मारग मोष ॥ ७७० ॥

थिर आसन सिंहासनों, ताहि आदि वहु जानि।
त्यागै चक्रीमंडली, जिन आज्ञा उर आनि॥ ७७१॥
स्यंदन कहिए रथ प्रगट, सिवका है सुखपाल।
ए थलके चर आसना, त्यागै भव्य भुपाल॥ ७७२॥
वहुरि विमानादिक जिके, चर आसन शुभरूप।
ते अकासके जानिये, त्यागें खेचर[1] भूप॥ ७७३॥
नाव जिहाजादिक गनें, चर आसन जल माहिं।
चर आसनकों पंडिता, यान कहें सक नाहिं॥ ७७४॥
सकल परिग्रह त्यागिवौ, सो मुनिमारग होई।
किंचित मात्र जु राखिवौ, व्रत श्रावकको सोय॥ ७७५॥
व्याधि न तृष्णा सारखी, तृष्णासी न उपाधि।
नहिं संतोष समान है, कारण परम समाधि॥ ७७६॥
तृष्णा करि भववन भ्रमै, तृष्णा त्यागें संत।
गृह परिग्रह वंधन गिनैं, ते निर्वाण लहंत॥ ७७७॥
व्रत पांचमो इह कह्यौ, सम संतोषस्वरूप।
धन्य धन्य ते धीर हैं, त्यागैं लोभ विरूप॥ ७७८॥
जे सीझे ते लोभ हरि, और न मारिग होय।
मोह प्रकृतिमें लोभ सो, और न परवल कोय॥ ७७९॥
सर्व गुणनिको शत्रु है, लोभ नाम वलवंत।
ताहि निवारें व्रत्त ए, करें कर्मको अंत॥ ७८०॥
नमसकार संतोषकों, जाहि प्रशंसें धीर।
जाकी महिमा अगम है, जा सम और न वीर॥ ७८१॥
जानैं श्री जिनरायजू, या व्रतके गुण जेह।
और न पूरन ना लखै, गणधर आदि जिकेह॥ ७८२॥
हमसे अलपमती कहौ, कैसें कैहैं वनाय।
नमों नमों या व्रत्तकों, जो भव पार कराय॥ ७८३॥
संतोषी जीवानिकों, वारवार परिणाम।
जिन पायौ संतोष धन, सर्व सुखनिको धाम॥ ७८४॥
नहिं संतोष समान गुरु, धन नहिं या सम और।
निर विकलप नहिं या समा, इह सवको सिर मौर॥ ७८५॥

इति पंचमव्रत[2] निरूपण।

---

१ विद्याधर। २ अचौर्य।

दया सत्य असतेय अर, ब्रह्मचर्य संतोष ।
इन पांचानिकों करि प्रणति, छट्टम व्रत निरदोष ॥ ७८६ ॥
भाषों दिसि परिमाण शुभ, लोभ नासिवे काज ।
जीवदयाके कारणें, उर धरि श्री जिनराज ॥ ७८७ ॥
द्वादश व्रतमें पंच व्रत, सप्त शील परवानि ।
सप्त शीलमें तीन गुण[1], चउ शिक्षाव्रत जानि ॥ ७८८ ॥
जैसें कोट जु नग्रके, रक्षाकारण होय ।
तैसें व्रतरक्षा निमित्त, शील सप्त ये जोय ॥ ७८९ ॥
वरत शील धारें सुधी, ते पावें सुखराशि ।
कहे व्रत्त अब शीलके, भेद कहों परकाशि ॥ ७९० ॥
पहलो गुणव्रत गुणमई, छट्टो व्रत सौ जानि ।
दसों दिशा परमाण करि, श्रीजिनआज्ञा मानि ॥ ७९१ ॥
तीन गुणव्रतमें प्रथम, दिग्व्रत कह्यौ जिनेश ।
ताहि धरें श्रावकव्रत्ती, त्यागें दोष असेस ॥ ७९२ ॥
लोभादिक नाशन निमित, परिग्रहको परिमाण ।
कीयौ तैसें ही करौ, दिशि परमान सुजाण ॥ ७९३ ॥

वेसरी छंद ।

पूरव आदि दिशा चउ जानौं, ईशानादि विदिशि चउ मानौं ।
अध उरध मिलि दस दिशि होई, करै प्रमाण व्रती है सोई ॥ ७९४ ॥
सीलवान व्रत धारक भाई, जाके दरशनतें अघ जाई ।
या दिशिकों एतोही जाऊं, आगै कवहु न पाँव धराऊँ ॥ ७९५ ॥
या विधिसों जु दिशाको नेमा, करै सुवुधि धरि व्रतसों प्रेमा ।
मरजादा न उलंघै जोई, दिग्व्रत धारक कहिये सोई ॥ ७९६ ॥
दसों दिशाकी संख्या धारै, जिती दूरलौं गमन विचारै ।
आगै गये लाभ है भारी, तौपनि जाय न दिगव्रत धारी ॥ ७९७ ॥
संतोषी समभावी होई, धनकूं गिनै धूरिसम सोई ।
गमनागमन तज्यौ वहु जानै, दया धर्म धार्‌यो उर तानै ॥ ७९८ ॥
लगै न हिंसा तिनको अधिकी, त्यागी जिन तृष्णा धननिधिकी ।
कारण हेत चालनो परई, तौ प्रमाण माफिक पग धरई ॥ ७९९ ॥

१ गुणव्रत ।

मेरु डिगै परि पैंड न एका, जाय सुवुद्धी परम विवेका ।
व्रत करि नाश करै अघकर्मा, प्रगटै परम सरावक धर्मा ॥ ८०० ॥
विना प्रतिग्या फल नहिं कोई, रहै वात परगट अवलोई ।
अतीचार पांचों तजि वीरा, छट्टो व्रत धारौ चित धीरा ॥ ८०१ ॥
पहलो उरध व्यतिक्रम होई, ताको त्याग करौं श्रुति जोई ।
गिरि परि अथवा मिंदर ऊपरि, चढ़नो परई ऊरध भूपरि ॥ ८०२ ॥
ऊरधकी संख्या है जेती, ऊंची भूमि चढ़ै वुध तेती ।
आगै चढ़िवेको जो भावा, अतीचार पहलो सु कहावा ॥ ८०३ ॥
दूजो अधव्यतिक्रम तजि मित्रा, जा तजिये व्रत होइ पवित्रा ।
वापी कूप खानि अर खाई, नीची भूमि माहिं उतराई ॥ ८०४ ॥
तौ परमाण उलंघि न उतरौ, अधिकी भू उतर्‍यां व्रत खतरौ ।
अधिक उतरनेको जो भावा, अतीचार दूजो सु कहावा ॥ ८०५ ॥
तीजो तिर्यग व्यतिक्रम त्यागौ, तब छट्टे व्रतमाहीं लागौ ।
अष्ट दिशा जे दिसि विदिशा हैं, तिरछे गमने माहिं गिना हैं ॥ ८०६ ॥
वहुरि सुरंगादिकमें जावौ, सोऊ तिरछे गमन गिनावौ ।
चउदिशि चउविदिशा परमाणा, ताको नाहिं उलंघ वखाणा ॥ ८०७ ॥
जो अधिके जावेको भावा, अतीचार तीजो सु कहावा ।
चोथो क्षेत्रवृद्धि है दूपन, ताको त्याग करें व्रतभूपन ॥ ८०८ ॥
जेती दूर जानको नेमा, सो स्वक्षेत्र भाषें श्रुतिप्रेमा ।
जो स्वक्षेत्रतें वाहिर ठौरा, सो परक्षेत्र कहावै औरा ॥ ८०९ ॥
जो परक्षेत्रथकी इह संधा, राखै सठमति हिरदे अंधा ।
ह्वाँतें क्रय विक्रय जो राखै, क्षेत्रवृद्धि दूपण गुरु भाखें ॥ ८१० ॥
पंचम अतीचारको नामा, स्मृत्यंतर भासें श्रीरामा ।
ताको अर्थ सुनों मनलाई, करि परमाण भूलि जो जाई ॥ ८११ ॥
जानत और अजानत मूढ़ा, सो नहिं होइ व्रत आरूढ़ा ।
ए पांचूं दोषा जे टारें, ते व्रत निर्मल निश्चल धारें ॥ ८१२ ॥
श्री कहिए निजज्ञान विभूती, शुद्ध चेतनानिज अनुभूती ।
केवल सत्ता शुद्ध स्वभावा, आतमपरणति रहित विभावा ॥ ८१३ ॥
ता परणतिसों रमिया जोई, कर्मरहित श्रीराम जु होई ।
तिनकी आज्ञारूप जु धर्मा, धारें ते नाशें सव भर्मा ॥ ८१४ ॥

अब सुनि व्रत सातमो भाई, जो दूजो गुणव्रत कहाई ।
दिशा तणों कीयौ परिमाणा, तामें देश प्रमाण वखाणा ॥ ८१५ ॥
देश नगर अर गांव इत्यादी, अथवा पाटक हाट जु आदी ।
पाटक कहिए अर्ध जु ग्रामा, करै प्रमाण व्रती गुण धामा ॥ ८१६ ॥
जिन देशनिमें धर्म जु नाहीं, जाय नहीं तिन देशनि माहीं ।
जब वह बहु देशनितें छूटै, तब यासों अति लोभ जु टूटै ८१७ ॥
बहु हिंसा आरंभ निवर्त्यौं, जीवदया मन माहिं प्रवर्त्यौं ।
दिश अरु देशनिको जु प्रमाणा, लोभ नाशने निमित्त वखाना ॥ ८१८ ॥
जिनवर मुनिवर अर जिन धामा, जिनप्रतिमा अर तीरथठामा ।
यात्राकाज गमन निरदोषा, दीप अढाईलौं व्रतपोसा ॥ ८१९ ॥
अतीचार पांचों तजि धीरा, जाकरि देश व्रत है थीरा ।
चित पसरत रोकनके कारन, मन वच तन मरजादा धारन ॥ ८२० ॥
कबहू नाहिं उलंघि सु जाई, अर ह्वांतें आसा न धराई ।
प्रेष्य नाम है सेवकको जी, ताहि पठावौ जो अधिको जी ॥ ८२१ ॥
वस्तु भेजिवौ लोभनिमित्ता, प्रेष्यप्रयोग दोष है मित्ता ।
तातें जेतौ देश जु राख्यौ, भृत्य भेजिवौ ह्वांतक भाख्यौ ॥ ८२२ ॥
आगै वस्तु पठैवौ नाहीं, इह वातें धारौ उरमाहीं ।
दूजो दोष आनयन त्यागै, तब हि व्रत्त विधानहिं लागै ॥ ८२३ ॥
परक्षेत्र जु तें वस्तु मँगावै, सो गुणव्रतको दूषण लावै ।
जो परमाण वाहिरा ठौरा, सो परक्षेत्र कहैं जगमौरा ॥ ८२४ ॥
तीजो दोष शब्दविनिपाता, ताको भेद सुनों तुम भ्राता ।
जाय नहीं परि शब्द सुनावै, सो निरदूषण व्रत्त न पावै ॥ ८२५ ॥
चोथों दूषण रूपनिपाता, रूप दिखावण जोगि न वाता ।
पंचम पुद्गलक्षेप कहावै, कंकर आदिक जोहि वगावै ॥ ८२६ ॥

भावार्थ—दिशा अर देशको जावजीव नियम कियो छै, तीहूमें वर्ष छमासी चौमासी दुमासी मासी पाखी नेम धार्‌यौ छै, तीमें भी निति नेम करै छै। सो निति नेम मरजादामें क्षेत्र निपट थोड़ो राख्यौ सो गमन तौ मरजादा वाहिर क्षेत्रमें न करै परि हेलौ मारि सवद सुनावै, अथवा जिह तरफ जिह प्रानीसों प्रयोजन होय तिह तरफ झांकि झरोकादिकमें वैठि करि तिंह प्राणीनें अपना रूप दिखाय प्रयोजन जणावै अथवा कंकर इत्यादि वगाय पैलाने मतलव जतावै सो अतीचार लगाय व्रतने मलीन करै।

वेसरी छंद ।

अब सुनि वरत आठमो भाई, तीजो गुणव्रत अति सुखदाई ।
अनरथदंड पापको त्यागा, यह व्रत धारें ते वड़भागा ॥ ८२७ ॥
पंच भेद हैं अनरथदोपा, महा पापके जानहु पोपा ।
पहलो दुर्ध्यान जु दुखदाई, ताको भेद सुनों मनलाई ॥ ८२८ ॥
पर औगुण गहणो उरमाहीं, परलक्ष्मी अभिलाप धराई ।
परनारी अवलोकन इच्छा, इन दोपनतें सुधी अनिच्छा ॥ ८२९ ॥
कलह करावन करन जु चाहै, वहुरि अहेरा करन उगाहै ।
हारि जीति चितवै काहूकी, करै नहीं भक्ति जु साहूकी ॥ ८३० ॥
चौर्यादिक चितवै मनमाहीं, सो दुरगति पावै शक नाहीं ।
दूजो पापतनों उपदेशा, सो अनरथ तजि भजों जिनेशा ॥ ८३१
कृपि पसु धंधा वाणिज इत्यादी, पुरुप नारि संजोग करादी ।
मंत्र यंत्र तंत्रादिक सर्वा, तजौ पापकर वचन सगर्वा ॥ ८३२ ॥
सिंगारादिक लिखन लिखावन, राजकाज उपदेश वतावन ।
सिलपि करम आदिक उपदेशा, तजौ पाप कारिज उपदेशा ॥ ८३३ ॥
तजहू अनरथ विफला चरज्या, सो त्यागौ श्रीगुरुनें वरज्या ।
भूमिखनन अरु पानी ढोरन, अगनि प्रजालन पवन विलोरन ॥ ८३४ ॥
वनसपती छेदन जो करनों, सो विफला चरज्याकों धरनों ।
हरित तृणांकुर दल फल फूला, इनको छेदन अघको मूला ॥ ८३५ ॥
अब सुनि चोथो अनरथदंडा, जा करि पावौ कुगति प्रचंडा ।
हिंसादान नाम है जाको, त्याग करौ तुम वुधजन ताको ॥ ८३६ ॥
दयादान करिवौ जु निरंतर, इह वातां धारौ उर अंतर ।
छुरी कटारी खड्ग रु भाला, जूती आदिक देहिन लाला ॥ ८३७ ॥
विष नहिं देवौ अगनि न देनी, हल फाल्यादिक दे नहिं जैनी ।
धनुषवान नहिं देनों काकों, जो दे अघ लागै अति ताकों ॥ ८३८ ॥
हिंसाकारन जेती वस्तू, सो देवो तौ नाहिं प्रसस्तू ।
वध वंधन छेदन उपकरणा, तिनको दान दयाको हरणा ॥ ८३९ ॥
पापवस्तु मांगी नहिं देवै, जो देवै सो शुभ नहिं लेवै ।
जामें जीवनिको उपकारी, सौ देवो सबकों हितकारी ॥ ८४० ॥
अन्नवस्त्र जल औषध आदी, देवौ श्रुतमें कह्यौ अनादी ।
दान समान न आनजु कोई, दयादान सवके सिर होई ॥ ८४१ ॥

मंजारादिक दुष्ट सुभावा, मांस अहारी मलिन कुभावा।
तिनको धारन कबहु न करनों, जीवनिकी हिंसातें डरनों ॥ ८४२ ॥
नखिया पखिया हिंसक जेही, धर्मवंत पालै नहिं तेही।
आयुधको व्यापार न कोई, जाकरि जीवनको वध होई ॥ ८४३ ॥
सीसा लोह लाख साबुन ए, वनिजजोग नहिं अघकारन ए।
जेती वस्तु सदोष बताई, तिनको वनिज त्यागवौ भाई ॥ ८४४ ॥
धान पान मिष्टादि रसादिक, लवण हींग घृत तेल इत्यादिक।
दल फल तृण पहुपादिक कंदा, मधु मादिक विणिजै मतिमंदा ॥ ८४५ ॥
अतर फुलेल सुगंध समस्ता, इनको विणज न होइ प्रशस्ता।
तथा अजोग्य मोम हरतारे, हिंसाकारन उद्यम टारै ॥ ८४६ ॥
वध बंधनके कारिज जेते, त्यागहु पाप विणज तुम तेते।
पसु पंखी नर नारी भाई, इनको विणज महा दुखदाई ॥ ८४७ ॥
काष्ठादिकको विणज न करै, धर्म अहिंसा उरमें धरै।
ए सब कुविणज छांडै जोई, धरम सरावक धारै सोई ॥ ८४८ ॥
मूलगुणानिमें निंदे एई, अष्टम व्रतमें निंदे तेई।
वार वार यह विणज जु निंद्या, इनकूं त्यागैं ते नर वंद्या ॥ ८४९ ॥
सुवरण रूपा रतन प्रसस्ता, रूई कपरा आदि सुवस्ता।
विणज करै तौ ए करि मित्रा, सर्व तजौ अति ही अपवित्रा ॥ ८५० ॥
सुनों पांचमो और अनर्था, जे शठ सुनहिं मिथ्यामत अर्था।
इह कुसूत्र सुणवौ अघ मोटा, और पाप सब यातें छोटा ॥ ८५१ ॥
पाप सकल उपजें या सेती, उपजै कुबुधि जगतमें तेती।
भंडिम वात सुनों मति भाई, वसीकरण आदिक दुखदाई ॥ ८५२ ॥
वसीकरण मनको करि संता, मन जीत्यां ह्वै ज्ञान अनंता।
कामकथा सुनिवौ नहिं कबहू, भूलै घनें चेत परि अबहू ॥ ८५३ ॥
परनिंदा सुनियां अति पापा, निंदक लहै नरक संतापा।
कबहु न करिवौ राग अलापा, दोष त्यागिवौ होय निपापा ॥ ८५४ ॥
विकथा करिवौ जोगि न वीरा, धर्मकथा सुनिवौ शुभ धीरा।
आलवाल बकिवौ नहिं जोग्या, गालि काढिवौ महा अजोग्या ॥ ८५५ ॥
विना जैनवानी सुखदानी, और चित्त धरिवौ नहिं प्रानी।
केवलि श्रुतकेवलिकी आणा, ताकों लागै परम सुजाणा ॥ ८५६ ॥

ते पावें निर्वाण मुनीशा, अजरामर होवें जोगीशा।
सीख श्रवण रचना कुकथाको, नाहिं करौ जु कदापि वृथाको ॥ ८५७ ॥
जीवदयामय जिनवरपंथा, धारै श्रावक अर निरग्रंथा।
काम क्रोध मद छल लोभादी, टारै जैनी जन रागादी ॥ ८५८ ॥
आगम अध्यातम जिनवानी, जाहि निरूपें केवलज्ञानी।
ताकी श्रद्धा दिढ़ धरि धीरा, करणगोचरी कर वर वीरा ॥ ८५९ ॥
जाकरि छूटै सर्व अनर्था, लहिये केवल आतम अर्था।
धर्म धारणा धारि अखंडा, तजौ सर्व ही अनरथदंडा ॥ ८६० ॥
इन पंचनिके भेद अनेका, त्यागै सुवुधी धारि विवेका।
बड़ो अनर्थदंड है दूजो, यातैं सर्व पाप नहिं दूजो ॥ ८६१ ॥
या सम और न अनरथ कोई, सकल वरतको नाशक होई।
द्यूत कर्मके विसन न लागै, तब सब पापपंथतैं भागै ॥ ८६२ ॥
द्यूतकर्ममें नाहिं बड़ाई, जाकरि बूढ़ै भवमें भाई।
अनरथ तजिवौ अष्टम व्रत्ता, तीजो गुणव्रत्त पापनिवृत्ता ॥ ८६३ ॥
ताके अतीचार तजि पंचा, तिन तजियां अघ रहै न रंचा।
पहलो अतीचार कंदर्पा, ताको भेद सुनों तजि दर्पा ॥ ८६४ ॥
कामोद्दीपक कुकथा जोई, ताहि तजै वुधजन है सोई।
कौतकुच्य है दोष द्वितीया, ताको त्याग व्रतिनिनें कीया ॥ ८६५ ॥
वदन मोरिवौ वाँको करिवौ, भौंह नचैवौ मच्छर धरिवौ।
नयनादिकको जो हि चलावौ, विषयादिकमें मन भटकावौ ॥ ८६६ ॥
इत्यादिक जे भंडिम बातें, तजौ व्रती जे सुव्रत घातें।
कौतकुच्यको अर्थ वखानों, फुनि सुनि तीजो दोष प्रवानों ॥ ८६७ ॥
भोगानर्थक है अति पापा, जाकरि पइये दुर्गति तापा।
ताकों सदा सर्वदा त्यागौ, श्री जिनवरके मारग लागौ ॥ ८६८ ॥
वहुत मोल दे भोगुपभोगा, सेवै सो पावै दुख रोगा।
भोगुपभोगथकी यह प्रीती, सो जानों अधिकी विपरीती ॥ ८६९ ॥
वहुरि भूखतें अधिको भोजन, जल पीवौ जो विनहि प्रयोजन।
शक्ति नहीं अह नारी सेवौ, करि उपाय मैथुन उपजेवौ ॥ ८७० ॥
वृथा फूल फल पानादिक जे, बाधा करैं लहैं शठ अघ जे।
इत्यादिक जे भोगैऽनर्था, जो सेवै सो लहै अनर्था, ॥ ८७१ ॥

है मौखर्य चतुर्थो दोषा, ताहि तजै श्रावक व्रतपोषा।
जो वाचालपनाको भावा, सो मौखर्य कहैं मुनिरावा॥ ८७२॥
विना विचारचौ अधिको वकिवौ, झूठे वाकजालमें छकिवौ।
असमीक्षित अधिकर्ण जु वीरा, अतीचार पंचम तजि धीरा॥ ८७३॥
विन देख्यौ विन पूछचौ कोई, घंट्टी मूसल उखली जोई।
कछु भी उपकरणा विन देख्या, विन पूँछ्यां ग्रहिवौ न असेखा॥ ८७४॥
तव हिंसा टरिहै परवीना, हिंसातुल्य अनर्थ न लीना।
ए सब अष्टम व्रतके दोषा, करै जु पापी व्रतकों सोखा॥ ८७५॥
इन तजिसी व्रत निर्मल होई, तातें तजै धन्य है सोई।
गुणव्रत काहेतें जु कहाये, ताको अर्थ सुनों मनलाये॥ ८७६॥
पंच अणुव्रतकों गुणकारी, तातें गुणव्रत नाम जु धारी।
जैसें नग्रतनें है कोटा, तैसें व्रत रक्षक ए मोटा॥ ८७७॥
क्षेत्रनि होय वाड़ि जो जैसें, पंचनिके ए तीनूं तैसें।
अव सुनि चउ शिक्षाव्रत मित्रा, जिन करि होवें अष्ट पवित्रा॥ ८७८॥
अष्टनिकों संख्यादायक ए, ज्ञानमूल तप व्रत नायक ए।
नवमो व्रत पहिलो शिक्षाव्रत, धारहु चित धीर धारहु अणुव्रत॥ ८७९॥
सामायक है नाम जु ताको, धारन करै सुधीजन याकों।
सामायक शिवदायक होई, या सम नाहिं क्रिया निधि कोई॥ ८८०॥

दोहा।

प्रथम हि सातों शुद्धता, भाषों श्रुत अनुसार।
जिन करि सामायक विमल, होय महा अविकार॥ ८८१॥
क्षेत्र काल आसन विनय, मन वच काय गनेहु।
सामायककी शुद्धता, सात चित्त धरि लेहु॥ ८८२॥
जहां शब्द कलकल नहीं, बहुजनको न मिलाप।
दंसादिक प्राणी नहीं, ता क्षेत्र करि जाप॥ ८८३॥
क्षेत्र शुद्धता इह कही, अव सुनि काल विशुद्धि।
प्रात दुपहरां सांझकों, करै सदा सदबुद्धि॥ ८८४॥
षट षट घटिका जो करै, सों उतकिष्टी रीति।
चउ चउ घटिका मध्य है, करै सुद्धि धरि प्रीति॥ ८८५॥

द्वै द्वै घटिका जघनि है, जेती थिरता होइ ।
तेती वेला जोग्य है, या सम और न कोइ ॥ ८८६ ॥
धरै सुधी एकाग्रता, मन लावै, जिगमाहिं ।
यहै शुद्धता कालकी, समै उलंघै नाहिं ॥ ८८७ ॥
तीजी आसन शुद्धता, ताको सुनहु विचार ।
पल्यंकासन धारिकै, ध्यावै त्रिभुवन सार ॥ ८८८ ॥
अथवा काऊसर्ग करि, सामायक करतव्य ।
तजि इंद्रियव्यापार सहु, ह्वै निश्चल जन भव्य ॥ ८८९ ॥
विनै शुद्धता है भया, चौथी जिनश्रुति माहिं ।
जिनवचनै एकाग्रता, और विकल्पा नाहिं ॥ ८९० ॥
हाथ जोड़ि आधीन ह्वै, शिर नवाय दे ढोक ।
तन मन करि दासा भयौ, सुमरै प्रभु तजि शोक ॥ ८९१ ॥
विनय समान न धर्म कोउ सामायकको, मूल ।
अव सुन मनकी शुद्धता, ह्वै व्रतसों अनुकूल ॥ ८९२ ॥
मन लावै निजरूपसों, अथवा जिनपद माहिं ।
सो मन शुद्धि जु पंचमो, यामैं संसै नाहिं ॥ ८९३ ॥
छट्ठी वचन विशुद्धता, विन सामायक और ।
वचन कदापि न वोलिए—यह भाषै जगमौर ॥ ८९४ ॥
काय शुद्धता सातमी, ताको सुनहु विचार ।
काय कुचेष्टा नहिं करै, हस्तपदादिक सार ॥ ८९५ ॥
क्षेत्र प्रमाण कियौ जिनैं, तजे पापके जोग ।
मुनि सम निश्चल होयकै, करै जाप भविलोग ॥ ८९६ ॥
राग दोषके त्यागतैं, समता सव परि होइ ।
ममताकों परिहार जो, सामायक है सोइ ॥ ८९७ ॥
सामायक अहनिसि करैं, ते पावैं भवपार ।
सामायक सम दूसरो, और न जगमें सार ॥ ८९८ ॥
राति दिवस करनों उचित, वहु थिरता नहिं होय ।
तौहु त्रिकाल न टारिवौ, यह धारै वुध सोय ॥ ८९९ ॥
जो सामायकके समय, थिरता गहै सुजान ।
अणुव्रत्त धारै सो सुधी, तौपनि साधु समान । ॥ ९०० ॥

छंद चाल ।

सामायक सो नहिं मित्रा, दूजो व्रत कोइ पवित्रा ।
गृहपतिकों जतिपति तुल्या, करई इह व्रत जु अतुल्या ॥ ९०१ ॥
तसु अतीचार तजि पंचा, जब होइ सामायक संचा ।
मन वच तन दुःप्रणिधाना, तिनको सुनि भेद बखाना ॥ ९०२ ॥
जो पाप काज चिंतवना, सो मनको दूषण गिनना ।
फुनि पाप वचनको कहिवौ, सो वचन व्यक्तिक्रम लहिवौ ॥ ९०३ ॥
सामायक समये भाई, जो कर-चरणादिचलाई ।
सो तनको दोष बतायो, सतगुरुने ज्ञान दिखायो ॥ ९०४ ॥
चौथो जु अनादर नामा, है अतीचार अघधामा ।
आदर नहिं सामायकको, निश्चै नहिं जिननायकको ॥ ९०५ ॥
समरण अनुपस्थाना है, इह पंचम दोष गिना है ।
ताको सुनि अर्थ विचारा, समरणमें भूलि प्रचारा ॥ ९०६ ॥
नहिं पूरो पाठ पढ़ै जो, परिपूरण नाहिं जपै जो ।
कछुको कछु बोलै बाल, सो सामायक नहिं काल ॥ ९०७ ॥
ए पंच अतीचारा हैं, सामायकमें टारा हैं ।
समता सब जीवन सेती, संजम सुभ भावन लेती ॥ ९०८ ॥
आरति अरु रोद्र जु त्यागा, सो सामायक बड़भागा ।
सामायक धारौ भाई, जाकरि भवपार लहाई ॥ ९०९ ॥

वेसरी छंद ।

क्षमा करौ हमसों सब जीवा, सबसों हमरी क्षमा सदीवा ।
सर्व भूत हैं मित्र हमारे, वैरभाव सबहीसों टारे ॥ ९१० ॥
सदा अकेलो मैं अविनाशी, ज्ञान-सुदर्शनरूप प्रकाशी ।
और सकल जो हैं परभावा, ते सब मोतें भिन्न लखावा ॥ ९११ ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध अखंडा, गुण अनंतरूपी परचंडा ।
कर्मबंधतें रुलै अनादी, भटको भववन माहिं जु वादी ॥ ९१२ ॥
जब देखै अपनों निजरूपा, तब होवो निर्वाणसरूपा ।
या संसार असार मँझारे, एक न सुखकी ठौर करारे ॥ ९१३ ॥
यहै भावना नित भावंतो, लहै आपनों भाव अनंतो ।
अब सुनि पोसहकी विधि भाई, जो दसमो व्रत है सुखदाई ॥ ९१४ ॥

१ पापका स्थान । २ प्राणी । ३ व्यर्थ ।

दूजा शिक्षाव्रत अति उत्तम, याहि धरें तेई जु नरोत्तम ।
न्हावन लेपन भूषन नारी,—संगति गंध धूप नहिं कारी ॥ ९१५ ॥
दीपादिक उद्योत न होई, जानहु पोसहकी विधि सोई ।
एक मासमें चउ उपवासा, द्वै अष्टमि द्वै चउदसि मासा ॥ ९१६ ॥
षोडश पहर धारनों पौसा, विधिपूर्वक निर्मल निर्दोसा ।
सामायककी सो जु अवस्था, षोडश पहर धारनी स्वस्था ॥ ९१७ ॥
पोसह करि निश्चल सामायक, होवै यह भासे जगनायक ।
पोसक सामायकको जोई, पोसह नाम कहावै सोई ॥ ९१८ ॥
जे सठ चउ उपवास न धारें, ते पशुतुल्य मनुषभव हारें ।
वहुत करै तो वहुत भला है, पोसा तुल्य न और कला है ॥ ९१९ ॥
चउ टारै चउगतिके माहीं, भरमें यामें संशै नाहीं ।
द्वै उपवासा पखवारेमें, इह आज्ञा जिनमत भारेमें ॥ ९२० ॥
व्रतकी रीति सुनों मनलाये, जाकरि चेतन तत्त्व लखाये ।
सप्तमि तेरसि धारन धारै, करि जिनपूजा पातिग टारै ॥ ९२१ ॥
एकभुक्त करि दो पहरांतें, तजि आरंभ रहै एकांतें ।
नहिं ममता देहादिक सेती, धरि समता वहु गुणहि समेती ॥ ९२२ ॥
चउ अहार चउ विकथा टारै, चउ कषाय तजि समता धारै ।
धरमी ध्यानारूढ़मती सो, जगत उदास शुद्धवरती सो ॥ ९२३ ॥
स्त्री पशु पंड[1] वालकी संगति, तजि करि उरमें धारै सनमति ।
जिनमंदिर अथवा वन उपवन, तथा मसानभूमिमें इक तन ॥ ९२४ ॥
अथवा और ठौर एकांता, भजै एक चिद्रूप महंता ।
सर्व पाप जोगनितें न्यारा, सर्व भोग तजि पोसह धारा ॥ ९२५ ॥
मन वच काय गुप्ति धरि ज्ञानी, परमातम सुमरै निरमानी ।
या विधि धारण दिन करि पूरा, संध्या करै साँझकी सूरा ॥ ९२६ ॥
सुचि संथारे रात्रि गुमावै, निद्राको लवलेश न आवै ।
कै अपनों निजरूप चितारै, कै जिनवर चरणा चित धारै ॥ ९२७ ॥
कै जिनविंव निरखई मनमें, भूल न ममता धरई तनमें ।
अथवा ओंकार अपारा, जपै निरंतर धीरज धारा ॥ ९२८ ॥
नमोकार ध्यावै वर मित्रा, भयौ भर्मतें रहित स्वतंत्रा ।
जगविरक्त जिनमत आसक्तो, सकल मित्र जिनपति अनुरक्तो ॥ ९२९ ॥

1 नपुंसक ।

कर्म शुभाशुभको जु विपाका, ताहि विचारै नाथ क्षमाका ।
निजकों जानै सबतें भिन्ना, गुण-गुणिकों मानै जु अभिन्ना ॥ ९३० ॥
इम चितवनतें परम सुखी जो, भववासिन सो नाहिं दुखी जो ।
पंच परमपदको अति दासा, इंद्रादिक पदतेंहु उदासा ॥ ९३१ ॥
रात्रि धारनाकी या विधिसों, पूरी करै भरचौ व्रतनिधिसों ।
फुनि प्रभात संध्या करि वीरा, दिन उपवास ध्यान धरि धीरा ॥ ९३२ ॥
पूरो करै धर्मसों जोई, संध्या करै सांझकों सोई ।
निशि उपवासतणी व्रतधारी, पूरी करै ध्यानसों सारी ॥ ९३३ ॥
करि प्रभात सामायक सुबुधी, जाके घटमें रंच न कुबुधी ।
पारण दिवस करै जिनपूजा, प्रासुक द्रव्य और नहिं दूजा ॥ ९३४ ॥
अष्ट द्रव्य ले प्रासुक भाई, श्री जिनवरकी पूज रचाई ।
पात्रदान करि दो पहरां जे, करै पारणूं आप घरां जे ॥ ९३५ ॥
ता दिन हू यह रीति बताई, टौर अहार अल्प जल पाई ।
धारन पारन अर उपवासा, तीन दिवसलों वरत निवासा ॥ ९३६ ॥
भूमिशयन शीलव्रत धारै, मन वच तन करि तजै विकारै ।
इह उतकिष्टी पोसह विधि है, या पोसह सम और न निधि है ॥ ९३७ ॥
मध्य जु पोसह बारह पहरा, जघनि आठ पहरा गुण गहरा ।
अतीचार याके तजि पंचा, जाकरि छूटै सर्व प्रपंचा ॥ ९३८ ॥
विन देखी विन पूँछे वस्तू, ताको ग्रहिवौ नाहिं प्रशस्तू ।
ग्रहिवौ अतीचार पहलो है, ताको त्यागसु अतिहि भलो है ॥ ९३९ ॥
विन देखे विन पूँछे भाई, संथारे नहिं शयन कराई, ।
अतीचार छूटै तव दूजो, इह आज्ञा धरि जिनवर पूजौ ॥ ९४० ॥
विन देखी विन पूँछी जागा, मल मूत्रादि न कर बड़भागा ।
करिवौ अतीचार है तीजो, सर्व पाप तजि पोसह लीजो ॥ ९४१ ॥
पर्व दिनाको भूलन चौथो,— अतीचार यह गुणतें चोथो ।
वहुरि अनादर पंचम दोषा, पोसहको नहिं आदर पोषा ॥ ९४२ ॥
ये पांचो तजियां है पोषा, निरमल निश्चल अति निरदोषा ।
सामायक पोषह जयवंता, जिनकरि पइये श्रीभगवंता ॥ ९४३ ॥
मुनि होनेको एहि अभ्यासा, इन सम और न कोइ अध्यासा ।
भुक्ति मुक्तिदायक ये व्रत्ता, धन्य धन्य जे करहिं प्रवृत्ता ॥ ९४४ ॥

अब सुनि व्रत ग्यारमो मित्रा, तीजो शिक्षाव्रत्त पवित्रा ।
जे भोगोपभोग हैं जगके, ते सहु वटमारे[1] जिनमगके ॥ ९४५ ॥
त्याग जोग हैं सकल विनासी, जो शठ इनको होय विलासी ।
सो रुलि है भवसागर माहीं, यामें कछु संदेहा नाहीं ॥ ९४६ ॥
एक अनंतो नित्य निजातम, रहित भोग उपभोग महातम ।
भोजन तांवूलादिक भोगा, वनिता[2] वस्त्र आदि उपभोगा ॥ ९४७ ॥
एक बार भोगनमें आवै, ते सहु भोगा नाम कहावै ।
वारवार जे भोगे जाई, ते उपभोगा जानहु भाई ॥ ९४८ ॥
भोगुपभोग तनों यह अर्था, इन सम और न कोइ अनर्था ।
भोगुपभोग तनों परमाणा, सो तीजो शिक्षाव्रत जाणा ॥ ९४९ ॥
छैता[3] भोग त्यागें वड़भागा, तिनकैं इंद्रादिक पद लागा ॥
अछताहू न तजें जे मूढ़ा, ते नहिं होय व्रत्त आरूढ़ा ॥ ९५० ॥
करि प्रमाण आजन्म इनूंका, वहुरि नित्य नियमादि तिनूंका ।
गृहपतिके थावरकी हिंसा, इन करि हैं फुनि तज्या अहिंसा ॥ ९५१ ॥
त्याग वराबर धर्म न कोई, हिंसाको नाशक यह होई ।
अंग विषें नहिं जिनको रंगा, तिनके कैसे होय अनंगा ॥ ९५२ ॥
मुख्य वारता त्याग जु भाई, त्याग समान न और वढ़ाई ।
त्याग वनै नहिं तौहु प्रमाणा, तामें इह आज्ञा परवाणा ॥ ९५३ ॥
भोग अजुक्त[4] न करनें कोई, तजनें मन वच तन करि सोई ।
जुक्त भोगको करि परमाणा, ताहूमें नित नेम वखाणा ॥ ९५४ ॥
नियम करौ जु घरी हि घरीको, त्याग करौ सवही जु हरीको ।
जे अनंतकाया दुखदाया, ते साधारण त्याग कराया ॥ ९५५ ॥
पत्र जाति अर कंद समूला, तजनें फूलजाति अघ थूला ।
तजनें मद्य मांस नवनीता, सहत त्यागिवौ कहैं अजीता ॥ ९५६ ॥
तजनें कांजी आदि सवै ही, अत्थाणा संधाण तजै ही ।
तजनें परदारादिक पापा, तजिवौ परधन पर संतापा ॥ ९५७ ॥
इत्यादिक जे वस्तु विरुद्धा, तिनकों त्यागै सो प्रतिवुद्धा ।
सवही तजिवौ महा अशुद्धा, अर जे भोगा हैं अविरुद्धा ॥ ९५८ ॥

१ चोर लुटेरे । २ स्त्री । ३ मौजूद-पास हुए । ४ अयोग्य ।

भोगभावमें नाहिं भलाई, भोग त्यागि हूजैं शिवराई ।
अपने गुण-परजाय स्वरूपा, तिनमें राचैं रहित विरूपा ॥ ९५९ ॥
वस्त्राभरण व्याहता नारी, खान पान निरदूपण कारी ।
इत्यादिक जे अविरुध भोगा, तिनहूकों जानैं ए रोगा ॥ ९६० ॥
जो न सर्वथा तजिया जाई, तौ परमाण करौ वहु भाई ।
सर्व त्यागवौ कहैं विवेकी, गृहपतिके कछु इक अविवेकी ॥ ९६१ ॥
तौलग भोगुपभोग हि अल्पा, विधिरूपा धारैं अविकल्पा ।
मुनिके खान पान इक वारा, सोहू दोष छियालिस टारा ॥ ९६२ ॥
और न एको है जु विकारा, तातैं महाव्रती अणगारा ।
तजैं भोग उपभोग सबै ही, मुनिवरका शुभ विरद फवै ही ॥ ९६३ ॥
शक्तिप्रमाण गृही हू त्यागैं, त्याग विना व्रतमें नहिं लागैं ।
राति दिवसके नेम विचारैं, यम-नियमादि धरैं अघ टारैं ॥ ९६४ ॥
यम कहिये आजन्म जु त्यागा, नियम नाम मरजादा लागा ।
यम-नियमादि विना नरदेही, पसुहूतैं मूरख गनि एही ॥ ९६५ ॥
खान पान दिनहीकों करनों, रात्रि चतुर्विधऽहार हि तजनों ।
नारी सेवै रैनि विपैं ही, दिनमें मैथुन नाहिं फवै ही ॥ ९६६ ॥
निसि ही नितप्रति करनों नाहीं, त्याग विराग विवेक धराहीं ।
नियम माहिं करनों नित नेमा, सीम माहिं सीमाको प्रेमा ॥ ९६७ ॥
करि प्रमाण भोगनिको भाई, इन्द्रिनिकों नहिं प्रवल कराई ।
जैसें फणिकूं दूध जु प्यावौ, गुणकारी नहिं विप उपजावौ ॥ ९६८ ॥
जो तजि भोगभाव अधिकाई, अलपभोग संतोप धराई ।
सो वहुती हिंसातैं छूट्यौ, मोहवतैं नहिं जाय जु लूट्यौ ॥ ९६९ ॥
दयाभाव उपजो घट ताके, भोगभावकी प्रीति न जाके ।
भोगुपभोग पापके मूला, इनकूं सेवैं ते भ्रमभूला ॥ ९७० ॥

दोहा ।

हिंसाके कारण कहे, सर्व भोग उपभोग ।
इनको त्याग करैं सुधी, दयावंत भविलोग ॥ ९७१ ॥
सो श्रावक मुनि सारिखा, भोग अरुचि परणाम ।
समता धरि सव जीव परि, जिनके क्रोध न काम ॥ ९७२ ॥
भोगुपभोग प्रमाण सम, नहीं दूसरो और ।
तृष्णाको क्षयकार जो, है व्रतनि सिरमोर ॥ ९७३ ॥

अतीचार या व्रतके, तजौ पंच दुखदाय ।
तिन तजियां व्रत विमल है, लहिए श्री जिनराय ॥ ९७४ ॥
नियम कियौ जु सचित्तको, भूलिर करै अहार ।
सो पहलो दूषण भयो, तजि दूजे अविकार ॥ ९७५ ।
प्रासुक वस्तु सचित्तसों, मिश्रित कबहूं होय ।
उष्ण जलें सीतल उदक, मिल्यो न लेवौ कोय ॥ ९७६ ॥
गृहें, दोष दूजो लगे, अब सुनि तीजो दोप ।
जो सचित्तसंबंध है, तजौ पापको पोप ॥ ९७७ ॥
पातल दूनां आदि जे, वस्तु सचित्त अनेक ।
तिनसों ढक्यौ अहार जो, जीमें सो अविवेक ॥ ९७८ ॥
सुनि चौथो दूषण सुधी, नाम जु अभिषव जास ॥
याको अर्थ अजोगि जे, ते न भखै जिनदास ॥ ९७९ ॥
अथवा काम उदीपका, भोजन अति हि अजोगि ।
ते कबहू करनें नहीं, वरजें देव अरोगि ॥ ९८० ॥
बहुरि तजौ बुध पांचमो, अतीचार अघरूप ।
दुःपक्को आहार जो, अव्रतको जु स्वरूप ॥ ९८१ ॥
अति दुर्जर आहार जो, वस्तु गरिष्ट सु होय ।
नहीं जोगि जिनवर कहैं, तजें धन्नि हैं सोय ॥ ९८२ ॥
कछू पक्यो कछु अपक ही, दुखसों पचे जु कोय ।
सो नहिं लेवो व्रतिनिकों, यह जिन आज्ञा होय ॥ ९८३ ॥
अतीचार पांचों तज्या, व्रत निर्मल है वीर ।
निर्मल व्रतप्रभावतें, लहै ज्ञान गंभीर ॥ ९८४ ॥

छंद चाल ।

धरि वरत बारमो मित्रा, जो अतिथिविभाग पवित्रा ।
इह चौथो शिक्षाव्रत्ता, जे याकों करै प्रवृत्ता ॥ ९८५ ॥
ते पावें सुर शिव भूती, वा भोगभूमि परसूती ।
सुनि या व्रतकी विधि भाई, जा विधि जिनसूत्र बताई ॥ ९८६ ॥
त्रिविधा हि सुपात्रा जगमें, जगकी नौका जिनमगमें ।
महव्रत अणुव्रत समदृष्टी, जिनके घट अमृतवृष्टी ॥ ९८७ ॥

तिनकों बहुधा भक्तीतें, श्रद्धादि गुणनि जुक्तीतें ।
देवो चउदान सदा जो, सो है व्रत द्वादशमो जो ॥ ९८८ ॥
चउ दान सबोंमें सारा, इनसे नहिं दान अपारा ।
भोजन औषध अरु ज्ञाना, फुनि दान अभै परवाना ॥ ९८९ ॥
भोजन-दानहिं धन पावै, औषधि करि रोग न आवै ।
श्रुति-दान बोध जु लहाई, इह आज्ञा श्रीजिन गाई ॥ ९९० ॥
अभया है अभय प्रदाता, भाषैं प्रभु केवलज्ञाता ।
इक भोजनदानैं माहीं, चउ दान सधैं शक नाहीं ॥ ९९१ ॥
नहिं भूख समान न व्याधी, भव माहीं बड़ी उपाधी ।
तातैं भोजनसों अन्या, नहिं दूजी औषध धन्या ॥ ९९२ ॥
फुनि भोजनबल करि साधू, करई जिनसूत्र अराधू ।
भोजनतें प्राण अधारा, भोजनतें थिरता धारा ॥ ९९३ ॥
तातें चउ दान सधें हैं, दानैं करि पुण्य बँधें हैं ।
सो सहु वांछा तजि ज्ञानी, होवै दानी गुणखानी ॥ ९९४ ॥
इह भव परभवको भोगा, चाहै नहिं जान हि रोगा ।
दे भक्ति करि सुपात्रनकों, निजरूप ज्ञानगात्रनिकों ॥ ९९५ ॥
तिह रतनत्रयमें संघो, थाप्यो चउविधिको संघो ।
सो पावै भुक्ति विमुक्ती, इह केवलि भाषित उक्ती ॥ ९९६ ॥
नहिं दान समान जु कोई, सब व्रतको मूल जु होई ।
................................, ... ॥ ९९७ ॥
जो भाषे त्रिविधा पात्रा, तिनमें मुनि उत्तम पात्रा ।
हैं मध्यम पात्र अणुव्रत्ती, समदृष्टी जघन्य अव्रत्ती ॥ ९९८ ॥
इन तीननिके नव भेदा, भाषैं गुरु पाप उछेदा ।
उत्तममें तीन प्रकारा, उतकिष्ट मध्य लघु धारा ॥ ९९९ ॥
उत्तम तीर्थंकर साधू, मध्य सु गणधर आराधू ।
तिनतें लघु मुनिवर सर्वे, जे तप श्रुतसूं नहि गर्वे ॥ १००० ॥
ए त्रिविधि उत्तमा पात्रा, तप संजम शील सुमात्रा ।
तिनकी करि भक्ति सु वीरा, उतरै जा करि भवनीरा ॥ १ ॥
मुनिवर होवै निरगंथा, चालै जिनवरके पंथा ।
जे विरकत भव भोगनितें, राग न दोष न लोगनितें ॥ २ ॥

विश्राम आपमें पायौ, काहूमें चित्त न लायौ ।
रहनों नहिं एकै ठौरा, करनों नहिं कारिज औरा ॥ ३ ॥
धरनूं निज-आतम-ध्यान, हरनूं रागादि अज्ञान ।
नहिं मुनिसे जगमें कोई, उतरें भवसागर सोई ॥ ४ ॥

दोहा ।

मोह कर्मकी प्रकृति सहु, होय जु अट्ठाईस ।
तिनमें पंद्रह उपसमें, तब होवै जोगीस ॥ ५ ॥
पंद्रा रोकें मुनिव्रतें, ग्यारा अणुव्रत रोध ।
सात जु रोकें पापिनी, सम्यक दरसन बोध ॥ ६ ॥
क्रोध मान छल लोभ ए, जीवोंकों दुखदाय ।
सो चंडाल जु चौकरी वरजें श्री जिनराय ॥ ७ ॥
अनंतानुवंधी प्रथम, द्वितीय अप्रत्याख्यान ।
प्रत्याख्यान जु तीसरी, अर चौथी संजूलान ॥ ८ ॥
तिनमें तीन जु चौकरी, अर तीनूं मिथ्यात ।
ए पंदरा प्रकृतियां,-तजि व्रत होइ विख्यात ॥ ९ ॥
पहली दूजी चौकरी, बहुरि मिथ्यात जु तीन ।
ए ग्यारां प्रकृती गया, श्रावकव्रत लवलीन ॥ १० ॥
प्रथम चौकरी दूरि ह्वै, टरैं तीन मिथ्यात ।
ए सातों प्रकृती टर्यां, उपजे सम्यक भ्रात ॥ ११ ॥
तीन चौकरी मुनिव्रतें, द्वै अणुव्रत्त विधान ।
पहली रोकें सम्यका, चौथी केवलज्ञान ॥ १२ ॥
तीन मिथ्यात हतें महा, मुनिव्रत अर अणुव्रत्त ।
अव्रत सम्यककूं हतें, करहिं अधर्म प्रवृत्त ॥ १३ ॥
प्रथम मिथ्यात अबोध अति, जहां न निज-पर-बोध ।
धर्म अधर्म विचार नहिं, तीव्रलोभ अर क्रोध ॥ १४ ॥
दूजी मिश्र मिथ्यात है कछु इक बोध अबोध ।
तीजो सम्यक प्रकृति जो, वेदकसम्यक बोध ॥ १५ ॥
कछु चंचल कछु मलिन जो, सर्वघाति नहिं होइ ।
तीन माहिं इह शुभ तहूं,-वरजनीक है सोइ ॥ १६ ॥
ए मिथ्यात जु तीन विधि, कहे सूत्र अनुसार ।
सुनों चौकरी बात अब, चारि चारि परकार ॥ १७ ॥

क्रोध जु पाहन रेख सो, पाहन थंभ जु मान ।
माया बांस जु जड़ समा, अति परपंच वखान ॥ १८ ॥
लोभ जु लाखा रंग सो, नर्कजोनि दातार ।
भरमावै जु अनंत भव, प्रथम चौकरी भार ॥ १९ ॥
हलरेखा सम क्रोध है, अस्थि थंभसम मान ।
माया मीढ़ा सींगसी, तिथि षट मास प्रमान ॥ १०२० ॥
रंग आलके सारखो, लोभ, पशूगति दाय ।
इह दूजी है चौकरी, अप्रत्याख्यान कहाय ॥ २१ ॥
रथरेखा सम क्रोध है, काठथंभ सो मान ।
गोमूत्रकी जु वक्रता, ता सम माया जान ॥ २२ ॥
लोभ कसूमारंग सो, नरभव दायक होय ।
दिन पंदरा लग वासना, तृतीय चौकरी सोइ ॥ २३ ॥
जलरेखा सो रोस है, वेंतलता सो मान ।
माया सुरभी चमरसी, लोभ पतंग समान ॥ २४ ॥
तथा हरिद्रारंग सो, सुरगति दायक जेह ।
एक महूरत वासना, अंत चौकरी लेह ॥ २५ ॥
कही चौकरी चारि ये, च्यार हि गतिकों मूल ।
चारि चौकरी परि हरै, करै करम निरमूल ॥ २६ ॥
मुनिनें तीन जु परि हरीं, धरी सांतता सार ।
चौथी हूको नाश करि, पावै भवजल पार ॥ २७ ॥
सकल कर्मकी प्रकृति सौ, अरु ऊपरि अड़ताल ।
मुनिवर सर्व खपावहीं, जीवानिके रिछपाल ॥ २८ ॥
मुनिपद बिन नहिं मोक्ष पद, यह निश्चै उरधारि ।
मुनिराजनकी भक्ति करि, अपनों जन्म सुधारि ॥ २९ ॥

छंद चाल ।

मुनि हैं निर्भय वनवासी, एकान्तवास सुखरासी ।
निज ध्यानी आतमरामा, जगकी संगति नहिं कामा ॥ ३० ॥
जे मुनि रहनेको थाना, वनमें कारहिं मतिवाना ।
ते पावें शिव सुर थाना, यह सूत्रप्रमाण वखाना ॥ ३१ ॥
मुनि लेह अहारइ मित्रा, लघु एक वार कर पात्रा ।

१ पत्थर । २ हड्डी ।

जे मुनिकों भोजन देहीं, ते सुरपुर शिवपुर लेहीं ॥ ३२ ॥
जौ लग नहिं केवलभावा, तौं लग आहार धरावा।
केवल उपजें न अहारा, भागें भवदूषण सारा ॥ ३३ ॥
नहिं भूख तृषादि सबै ही, जब केवल ज्ञान फबैही।
केवल पायें जिनराजा, केवल पदले मुनिराजा ॥ ३४ ॥
मुनिकी सेवा सुखकारी, बड़भाग करें उर धारी।
पुसतक मुनिपै ले जावें, मुनि सूत्र अर्थ ते आवें ॥ ३५ ॥
ते पावें आतमज्ञाना, ज्ञानहिं करि ह्वै निरवाना।
भेषज भोजनमें युक्ता, मुनिकों लखि रोग भव्यक्ता ॥ ३६ ॥
देवें ते रोग नसावें, कर्मादिक फेरि न आवें।
मुनिके उपसर्ग निवारें, ते आतम भवदीध तारें ॥ ३७ ॥
मुनिराज समान न दूजा, मुनिपद त्रिभुवन करि पूजा।
मुनिराज त्रिवर्णा[1] होवै, शूद्र नहिं मुनिपद जोवे ॥ ३८ ॥
मुनि आर्या ऐल[2] महा ए, ह्वै क्षत्री द्विज वणिजाए।
अब मध्यपात्रके भेदा, त्रिविधा मुनि पाप उछेदा ॥ ३९ ॥
उतकिष्ट रु मध्य जघन्या, जिनसे नहिं जगमें अन्या।
पहली पड़िमासों लेई, छट्ठीतक श्रावक जेई ॥ ४० ॥
मध्यानिमें जघिन कहावै, गुरु धर्म देव उर लावै।
जे पंचम ठाणें भाई, अणुव्रती नाम धराई ॥ ४१ ॥
पहली पड़िमा धर बुद्धा, सम्यक दरसन गुण शुद्धा।
त्यागें जे सातों बिसना, छांडें विषयनिकी तृष्णा ॥ ४२ ॥
जे अष्ट मूलगुण धारें, तजि अभख जीव न संघारे।
दूजी पड़िमा धर धीरा, व्रतधारक कहिये वीरा ॥ ४३ ॥
बारा व्रत पालै जोई, सेवै जिनमारग सोई।
जे धारें पंच अणुव्रत, त्रय गुणव्रत चउ शिक्षाव्रत ॥ ४४ ॥

चौपई।

तीजी पड़िमा धरि मतिवंत, सामायकमें मुनिसे संत।
पोसासें आरूढ़ विशाल, सो चौथी पड़िमा प्रतिपाल ॥ ४५ ॥

१ ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य। २ ऐलक।

पंचम पड़िमा धर नर धीर, त्याग सचित वस्तु वर वीर ।
पत्र फूल फल कूंपल आदि, छालि मूल अंकुर बीजादि ॥ ४६ ॥
मनवच तन करि नीली हरी, त्यागै उरमें दृढ व्रत धरी ।
जीवदयाको रूप निधान, षट कायाकों पीहर जान ॥ ४७ ॥
पाल्यौ जैन वचन जिन धीर, सर्वजीवकी मैटी पीर ।
छट्टी प्रतिमा धारक सोई, दिवस नारिको परस न होई ॥ ४८ ॥
रात्रि विषैं अनसन व्रत धरै, चउ अहारकों है परिहरै ।
गमनागमन तजै निशि माहिं । मनवचतन दिन शील धराहिं ॥ ४९ ॥
ए पहलीलों छट्टी लगें, जघन्नि श्रावकके व्रत जगें ।
पतिव्रता व्रतवंती नारि, मध्यम पात्र जघन्नि विचारि ॥ ५० ॥
श्रावक और श्राविका जेह, घरवारी व्रतधारी तेह ।
मध्यम पात्तर कहे जघन्य, इनकी सेव करै सो धन्य ॥ ५१ ॥
वस्त्राभरण अन्न जल आदि, थान मान औषध दानादि ।
देनें श्रुत सिद्धांत जु वीर, हरनी तिनकी सबही पीर ॥ ५२ ॥
अभैदान देवौ गुणवान, करनी भगति कहैं भगवान ।
भवजलके द्रोहण ए पात्र, पार उतारैं दरसन मात्र ॥ ५३ ॥

दोहा ।

सप्तम प्रतिमा धारका, ब्रह्मचर्यव्रत धार ।
नारीकों नागिनि गिनें, लख्यौ तत्व अविकार ॥ ५४ ॥
मन वच तन करि शीलधर, कृत कारित अनुमोद ।
निजनारीहूकूं तजे, पावै परम प्रमोद ॥ ५५ ॥
जैसे ग्यारम दशम नव, अष्टम पड़िमा धार ।
मन वच तन करि शील धरि, तैसें ए अविकार ॥ ५६ ॥
तिनतैं एतो आंतरो, ते आरंभ वितीत ।
इनके अलपारंभ है, क्रोध लोभ छल जीत ॥ ५७ ॥
लख्यौ आपनों तत्व जिन, नहिं मायासों मोह ।
तजै राग दोषादि सब, कामक्रोध परद्रोह ॥ ५८ ॥
कछु इक धनको लेस है, तातैं घरमें वास ।
इनकी जे सेवा करैं, ते पावें सुखरास ॥ ५९ ॥

१ फर्क ।

छंद चाल ।

अब सुनि अष्टम पड़िमा ए, त्रस थावर जीवदया ए ।
कछु ही धंधा नहिं करनों, आरंभ सबै परिहरनों ॥ ६० ॥
भजनों जिनकों जगदीसा, तजनों जगजाल गरीसा ।
तनसों नहिं स्वामित धरनों, हिंसासों अति ही डरनों ॥ ६१ ॥
श्रावकके भोजन करई, नवमी सम चेष्टा धरई ।
नवमीतें एतो अंतर, ए हैं कछुयक परिग्रह धर ॥ ६२ ॥
वनमाहीं थोरो रहनों, शीतोष्ण जु थोरो सहनों ।
जे नवमी पड़िमावंता, जगके त्यागी विकसंता ॥ ६३ ॥
जिन धातु मात्र सब नांखे, कपरा कछुयक ही राखे ।
श्रावकके भोजन भाई, नहिं माया मोह धराई ॥ ६४ ॥
आवै जु बुलाएँ जीवां, जिनकों नहिं माया छीवा ।
है दशमीतें कछु नूना, परि कीये कर्म अघ चूना ॥ ६५ ॥
एतो ही अंतर उनतें, कबहुक लौकिक वचजनतें ।
बोलें परि विरकतभावा, धनको नहिं लेश धरावा ॥ ६६ ॥
आतेकों आरुकारा, जातें सों हल भल धारा ।
दसमीतें अतिहि उदासा, नहिं लौकिक वचन प्रकाशा ॥ ६७ ॥
सप्तम अष्टम अर नवमा, ए मध्य सरावग पड़िमा ।
मध्यनिमें मध्य जु पात्रा, व्रत शील ज्ञान गुण गात्रा ॥ ६८ ॥
अथवा हो श्राविक शुद्धा, व्रतधारक शील प्रबुद्धा ।
जो ब्रह्मचारिणी बाला, आजनम शील गुणमाला ॥ ६९ ॥
सो मध्यम पात्रम मध्या, जानों व्रत शील अवध्या ।
अथवा निजपतिकों त्यागै, सो ब्रह्मचर्य अनुरागै ॥ ७० ॥
सो परम श्राविका भाई, मध्यनिमें मध्य कहाई ।
इनकों जो देय अहारा, सो है भवसागर पारा ॥ ७१ ॥

दोहा ।

अन्न वस्त्र जल औषधी, पुस्तक उपकरणादि ।
थान नान दान जु करें, ते भव तिरें अनादि ॥ ७२ ॥
हरें सकल उपसर्ग जे, ते निरुपद्रव होंहिं ।
सुर नरपति ह्वै मोक्षमें, राजें अति सुखसों हि ॥ ७३ ॥

१ जीमनेके लिये ।

छंद चाल ।

जो दशमी पड़िमा धारा, श्रावक सु विवेकी चारा ।
जग धंधाको नहिं लेसा, नहिं धंधाको उपदेशा ॥ ७४ ॥
वनमें हु रहै वर वीरा, ग्रामे हु रहै गुणधीरा ।
आवै श्रावक घरि जींवा, नहिं कनकादिक कछु छींवा ॥ ७५ ॥
एकादशमीतें छोटे, परि और सकलतें मोटे ।
जिनवानी विन नहिं वोलें, जे कितहू चित्त न डोलें ॥ ७६ ॥
मुनिवरके तुल्य महानर, दशमी एकादशमी धर ।
एकादशमी द्वै भेदा, एलिक छुल्लक अघछेदा ॥ ७७ ॥
इनसे नहिं श्रावक कोई, सवमें उतकिष्ट होई ।
त्यागौ जिन जगत असारा, लाग्यौ निज रंग अपारा ॥ ७८ ॥
पायौ जिनराज सुधर्मा, छांडे मिथ्यात अधर्मा ।
जिनके पंचम गुणठाणा, पूरणतारूप विधाना ॥ ७९ ॥
द्वै माहिं महंत जु ऐला, निश्चलता करि सुरशैला[1] ।
जिनके परिग्रह कोपीना, अर कमडल पीछी तीना ॥ ८० ॥
जिनसासनको अभ्यासा, भवभावनिसूं जु उदासा ।
श्रावकके घर अविकारा, ले आप उदंड अहारा ॥ १०८१ ॥
गुणवान साधु सारीसा, लुंचितकेसा विनरीसा[2] ।
ए ऐलि त्रिवर्णी होई, शूद्रा नहिं ऐलि जु कोई ॥ ८२ ॥
इतनें छुल्लक कछु छोटे, परि और सकलतें मोटे ।
इक खंडित कपरा राखें, तिनकौं छुल्लक जिन भाखें ॥ ८३ ॥
कमडलु पीछी कोपीना, इन विन परिग्रह तजि दीना ।
जिनश्रुति अभ्यास निरंतर, जान्यूं है निज पर अंतर ॥ ८४ ॥
जे हैं जु उदंड विहारा, ले भाजनमाहिं[3] अहारा ।
कातरिका केस करावै, ते छुल्लक नाम कहावै ॥ ८५ ॥
चारों हैं वर्ण जु छुल्लक, राखें नहिं जगसूं तल्लुक ।
आनंदी आतमरामा, सम्यकदृष्टी अभिरामा ॥ ८६ ॥
ए द्वै हैं भेद वड़ भाई, ग्यारस पड़िमा जु कहाई ।
वन माहिं रहैं वर वीरा, निरभै निरव्याकुल धीरा ॥ ८७ ॥
तिनकी करि सेव जु भाया, जो जीवनिकों सुखदाया ।

१ सुमेरु पर्वत । २ क्रोधरहित । ३ पात्रमें ।

तिनके रहनेकों थाना, वनमें करने मतिवाना ॥ ८८ ॥
भोजन भेषज जिनग्रंथा, इनकों दे सो निजपंथा—।
पावै अर दे उपकरणा, सो हरै जनम जर मरणा ॥ ८९ ॥
उपसर्ग उपद्रव टारै, ते निरभै थान निहारै।
दसमी अर ग्यारम दोऊ, मध्यम उतकिष्टे होऊ ॥ ९० ॥
अथवा आर्या व्रतधारी, अणुव्रतमें श्रेष्ठ अपारी।
आर्या घरवार जु त्यागै, श्रीजिनवरके मत लागै ॥ ९१ ॥
राखै इक वस्त्र हि मात्रा, तप करि है क्षीण जु गात्रा।
कमडल पीछी अर पोथी,—ले भूति तजी सहु थोथी ॥ ९२ ॥
थावर जंगम तनवाना, जानैं सव आप समाना।
जे मुनि करि पात्रे अहारा, सिर लोंच करैं तप धारा ॥ ९३ ॥
तिनकीसी रीति जु धारै, जगसों ममता नहिं कारै।
द्विज क्षत्री बाणिक कुला ही, है आर्या अति विमला ही ॥ ९४ ॥
अणुव्रत परि महाव्रत तुल्या, नारिनमें एहि अतुल्या।
माता त्रिभुवनकी भाई, परमेसुरसों लव लाई ॥ ९५ ॥
आर्याकों वस्त्र जु भोजन, देनें भक्ती करि भोजन।
पुस्तक औषधि उपकरणा, देनें सहु पाप जु हरणा ॥ ९६ ॥
उपसर्ग हरै बुधिवाना, रहनेकों उत्तम थाना।
देवेमें पुन अविनासी, लेवै अति आनंदरासी ॥ ९७ ॥

दोहा।

छै पड़िमा जानों जघनि, मध्य जु नवमी ताइँ।
दस एकादशमी उभै, उतकिष्टी कहवाइँ ॥ ९८ ॥
पतिव्रता जो श्राविका, मध्यनिमाहिं जघन्य।
ब्रह्मचरिणी मध्य है, आर्या उत्तम धन्य ॥ ९९ ॥
पंचम गुण ठाणें व्रती, श्रावक मध्य जु पात्र।
छठें सातवें ठाण मुनि, महामात्र गुणगात्र १०० ॥
कहे मध्यके भेद त्रय, अर उतकिष्टे तीन।
सुनों जघन्य जु पात्रके, तीन भेद गुणलीन ॥ १०१ ।
चौथे गुणठाणे महा, क्षायक सम्यकवंत
सो उतकिष्ट जघनिमें, भाषें श्रीभगवंत ॥ १०२ ॥

१ संबंध। २ हाथमें।

क्रोध मान छल लोभ खल, प्रथम चौकरी जानि ।
मिथ्या अर मिश्रहि तथा, समै प्रकृति पर वानि ॥ १०३ ॥
सात प्रकृति ए खय गई, रह्यौ अलप संसार ।
जीवनमुक्त दशा धरै, सो क्षायकसम धार ॥ १०४ ॥
सातो जाके उपसमें, रमै आपमें धीर ।
सो उपसमसम्यक धनी, जघनि माहिं मधि वीर ॥ १०५ ॥
सात माहिं षट उपसमें, एक तृतीय मिथ्यात-।
उदै होय है जा समें, सो वेदक विख्यात ॥ १०६ ॥
वेदक सम्यकवंत जो, जघनि जघनिमें जानि ।
कहे तीन विध जघनि ए, जिन आज्ञा उर आनि ॥ १०७ ॥
जघनि पात्रकूं अन्न जल, औषध पुस्तक आदि ।
वस्त्राभूषण आदि शुभ-, थान मान दानादि-॥ १०८ ॥
देवो गुरु भार्षे भया, करनों वहु उपगार ।
हरनी पीरा कष्ट सहु, धरनों नेह अपार ॥ १०९ ॥
सब ही सम्यकधारका, सदा शांत रसलीन ।
निकट भव्य जिनधर्मके,-धोरी परम प्रवीन ॥ ११० ॥
नव भेदा सम्यक्तके, तामें उत्तम एक ।
सात भेद गनि मध्यके, जघनि एक सुविवेक ॥ १११ ॥
वेदक एक जघन्य है, उत्तम क्षायक एक ।
और सबै गनि मध्य ए, इह धारौ जु विवेक ॥ ११२ ॥
क्षयोपसम वरतै त्रिविध, वेदक चारि प्रकार ।
क्षायक उपसम जुगल जुत, नौधा समकित धार ॥ ११३ ॥
वेदक कछुयक चंचला, तौपनि भर्म उछेद ।
लखै आपकी शुद्धता, जानें निज पर भेद ॥ ११४ ॥
सेवाजोग्य सु पात्र ए, कहे जिनागम माहिं ।
भक्ति सहित जे दान दें, ते भवभ्रांति नसाहिं ॥ ११५ ॥
त्रिविधि पात्रके भेद नव, कहे सूत्र परवान ।
मुनिको नवधा भक्ति करि, देहि दान बुधिवान ॥ ११६ ॥
विधिपूर्वक शुभ वस्तुकों, स्वपर अनुग्रह हेत ।
पातरकों दान जु करै, सो शिवपुरको लेत ॥ ११७ ॥

नवधा भक्ति जु कोनसी, सो सुनि सूत्र प्रवानि ।
मिथ्यामारग छाँड़ि करि, निज श्रद्धा उर आनि ॥ ११८ ॥
आवौ आवौ संवद कहि, तिष्ट तिष्ट भासेहि ।
सो संग्रह जानों बुधा, अघ-संग्रह टारेहि ॥ ११९ ॥
ऊँचौ आसन देय शुभ, पात्रनिकों परवीन ।
पग धोवै अरचै वहुरि, होय वहुत आधीन ॥ १२० ॥
करै प्रणाम विनै करी, त्रिकरण शुद्धि धरेहि ।
खानपानकी शुद्धता, ये नव भक्ति करेहि ॥ १२१ ॥
सुनों सात गुण पंडिता, दातारनिके जेह ।
धारै धरमी धीर नर, उधरै भवजल तेह ॥ १२२ ॥
इह भव फल चाहै नहीं, क्रियावान अति होय ।
कपट रहित ईर्षा रहित, धरै विषाद न सोय ॥ १२३ ॥
हुइ उदारता गुण सहित, अहंकार नहिं जानि ।
ए दाताके सप्त गुण, कहे सूत्रपरवानि ॥ १२४ ॥
श्रद्धा धरि निज शक्तिजुत, लोभ रहित है धीर ।
दया क्षमा दृढ़ चित्त करि, देय अन्न अर नीर ॥ १२५ ॥
रागदोष मद भोग भय, निद्रा मन्मथपीर ।
उपजावै जु असंजमा, सो देवौ नहिं वीर ॥ १२६ ॥
यह आज्ञा जिनराजकी, तप स्वाध्याय सु ध्यान ।
बुद्धिकरण देवौ सदा, जाकरि लहिए ज्ञान ॥ १२७ ॥
मोक्ष कारणा जे गुणा, पात्र गुणनके धीर ।
तातें पात्र पुनीत ए, भांषें श्रीजिन वीर ॥ १२८ ॥
संविभाग अतिथीनको, व्रत्त वारमों सोइ ।
दया तनों कारण इहै, हिंसानाशक होइ ॥ १२९ ॥
हिंसाको कारण महा, लोभ अजसकी खानि ।
दान करै नासै भया, इह निश्चै उर आनि ॥ १३० ॥
भोग रहित निज जोग धरि, परमेसुरके लोग ।
जिनके दर्शन मात्र ही, मिटै सकल दुख सोग ॥ १३१ ॥
मधुकर[1] वृति धारें मुनी, पर पीड़ा न करेय ।
पुन्यजोग आवें घरें, जिन आज्ञा जु धरेय ॥ १३२ ॥

१ भ्रामरी वृत्ति ।

तिनकों जो सु अहार दे, ता सम और न कोइ ।
दानधर्मतें रहित जे, किरपण कहिये सोइ ॥ १३३ ॥
कियौ आपने अर्थ जो, सो ही भोजन भ्रात ! ।
मुनिकों अरति विषाद तजि, सो भवपार लहात ॥ १३४ ॥
शिथिल कियौ जिह लोभकों, परमपंथके हेत ।
तेई पात्रनिकों सदा, विधि करि दान जु देत ॥ १३५ ॥
सम्यकदृष्टी दान करि, पावै पुर निरवान ।
अथवा भव धरनों परै, तौ पावै सुरथान ॥ १३६ ॥
विन सम्यक्त जु दान दे, त्रिविधि पात्रकों जोहि ।
पावै इंद्री भोग सुख, भोगभूमिमें सोहि ॥ १३७ ॥
उत्तम पात्र सु दानतें, भोगभूमि उतकिष्ट ।
पावै दशधा कल्पतरु, जहां न एक अनिष्ट ॥ १३८ ॥
मध्य पात्रके दान करि, मध्य भोगभू माहिं ।
जघनि पात्रके दान करि, जघनि भोगभू जाहिं ॥ १३९ ॥
पात्रदानको फल इहै, भाषैं गणधर देव ।
धन्य धन्य जे जगतमें, करैं पात्रकी सेव ॥ १४० ॥

छंद चाल ।

देने औषध सु अहारा, देने श्रुत पाप प्रहारा ।
रहनेको देनी ठौरा, करने अति ही जु निहौरा ॥ १४१ ॥
हरने उपसर्ग तिनूंके, धरने गुण चित्त जिनूंके ।
सुख साता देनी भाई, सेवा करनी मन लाई ॥ १४२ ॥
ए नवविधि पात्र जु भाखे, आगम अध्यातम साखे ।
बहुरी त्रय भेद कुपात्रा, धारैं वाहिज व्रतमात्रा ॥ १४३ ॥
जे शुभ किरिया करि युक्ता, जिनके नहिं रीति अयुक्ता ।
सम्यकदर्शन विन साधू, तप संजम शील अराधू ॥ १४४ ॥
पावैं नहिं भवजल पारा, जावैं सुरलोक विचारा ।
पहुँचैं नव ग्रीव लगै भी, जिनतें अघकर्म भगै भी ॥ १४५ ॥
पण भावलिंग विनु भाई, मिथ्यादृष्टी हि कहाई ।
द्रविलिंगि धार जति जेई, उतकिष्ट कुपात्रा तेई ॥ १४६ ॥
जे सम्यक विन अणुव्रत्ती, द्रवि-श्रावकव्रत्त प्रवृत्ती ।
ते मध्य कुपात्र वखानें, गुरुने, नहिं श्रावक मानें ॥ १४७ ॥

आपा पर परचैं नाहीं, गनिये वहिरातम माहीं ।
षोड्स सूरगलों जावें, आतम अनुभौ नहीं पावें ॥ १४८ ॥

दोहा ।

जघनि कुपात्रा अव्रती, वाहिर धर्मप्रतीति ।
दीखें समदृष्टी समा, नहिं सम्यककी रीति ॥ १४९ ॥
शुभगति पावै तौ कहा, लहै न केवलभाव ।
ये संसारी जानिये, भाषें श्रीजिनराव ॥ १५० ॥
इनको जानि सुपात्र जो, धारें भक्ति विधान ।
सो कुभोगभूमी लहै, अल्पभोग परवान ॥ १५१ ॥
पर उपगार दया निमित, सदा सकलकों देय ।
पात्रनिकी सेवा करै, सो शिवपुर सुख लेय ॥ १५२ ॥
नहिं श्रावक नहिं व्रत जती, नहिं श्रावकव्रत जानि ।
नहिं प्रतीति जिनधर्मकी, ते अपात्र परवानि ॥ १५३ ॥
विनै न करनों तिनतनों, दया सकल परि जोगि ।
करनी भक्ति सु पात्रकी, भक्ति अपात्र अजोगि ॥ १५४ ॥
करनी करुणा सकल परि, हरनी सवकी पीर ।
धरनी सेवा संतकी, इह भाषें श्रीवीर ॥ १५५ ॥
पात्रापात्र द्विभेद ए, कहे सूत्र अनुसार ।
अव सुनि करुणादानको, भेद विविधि परकार ॥ १५६ ॥
सर्व आतमा आपसे, चेतनगुण भरपूर ।
निज परकी पहिचान विन, भ्रमें जगतमें क्रूर ॥ १५७ ॥
उदै कर्मके हैं दुखी, आधि व्याधिके रूप ।
परे पिंडमें मूढ़धी, लखें नहीं चिद्रूप ॥ १५८ ॥
तिन सव पर धरिके दया, करै सदा उपगार ।
नर तिर सवही जीवको, हरै कष्ट व्रतधार ॥ १५९ ॥
अपनी शक्ति प्रमाण जो, मेटै परकी पीर ।
तन मन धन करि सर्वको, साता दे वर वीर ॥ १६० ॥
अन्न वस्त्र जल औषधी, त्रण आदिक जे देय ।
जाने अपने मित्र सहु, करुणाभाव धरेय ॥ १६१ ॥
वाल वृद्ध रोगीनिको, अति ही जतन कराय ।
अंध पंगु कुष्टी न परि, करै दया अधिकाय ॥ १६२ ॥

वंदि छुड़ावै द्रव्य दे, जीव बचावै सर्व।
अभैदान दे सर्वको, धरै न धनको गर्व ॥ १६३ ॥
काल दुकालै माहिं जो, अन्नदान बहु देय।
रंकनिको पीहर जिको, नरभवको फल लेय ॥ १६४ ॥
जाको जगमें कोउ नहीं, ताको भीरी सोइ।
दुरबलको बल शुभमती, प्रभुको दासा होइ ॥ १६५ ॥
शीतकालमें शीतहर, दे वस्त्रादिक वीर।
उष्णकालमें तापहर, वस्तु प्रदायक धीर ॥ १६६ ॥
वर्षाकालै धर्मधी, दे आश्रय सुखदाय।
जल बाधाहर वस्तु दे, कोमलभाव धराय ॥ १६७ ॥
भांति भांतिकी औषधी, भांति भांतिके चीर।
भांति भांतिकी वस्तु दे, सो जैनी जगवीर ॥ १६८ ॥
दान विधी जु अनंत है, कौ लग करें बखान।
जानें श्रीजिनरायजू, किह दाता बुधिवान ॥ १६९ ॥
भक्ति दया द्वै विधि कही, दान-धर्मकी रीति।
ते नर अंगीकृत करें, जिनके जैन प्रतीति ॥ १७० ॥
लक्ष्मी दासी दानकी, दान मुकतिको मूल।
दान समान न आन कोउ, जिन मारग अनुकूल ॥ १७१ ॥
अतीचार या व्रत्तके, तजै पंच परकार।
तब पावै व्रतशुद्धता, लहै धर्म अविकार ॥ १७२ ॥
भोजनकों मुनि आवहीं, तब जो मूढ़ कदापि।
मनमें ऐसी चिंतवै, दान करंता क्वापि ॥ १७३ ॥
लगि है वेला[1] चूकि हों, जगतकाजतें आज।
तातें काहूकों कहै, जाय करें जगकाज ॥ १७४ ॥
मो विन काम न होइगो, तातें जानों मोहि।
दान करैंगे भ्रातृ-सुत, इहहू कारिज होहि ॥ १७५ ॥
धनको जाने सार जो, धर्म हि जाने रंच।
सो मूढ़नि सिरमौर है, घटमें बहुत प्रपंच ॥ १७६ ॥
कहै भ्रात पुत्रादिको, दानतनों शुभ काम।
आप सिधारै जड़मती, जगधंधाके ठाम ॥ १७७ ॥

---

१ समय।

परदात्री उपदेश यह, दूषण पहलो जानि ।
पराधीन ह्वै या थकी, यह निश्चै उर आनि ॥ १७८ ॥
मुनि सम ह्वैगौ धन कहा, इह धारै उर धीर ।
भुक्ति मुक्ति दाता मुनि, पट कायनिके वीर ॥ १७९ ॥
फुनि सचित्तनिक्षेप है, दूजौ दोष अजोगि ।
ताहि तजें तेई भया, दानव्रत्तकों जोगि ॥ १८० ॥
सचित्त वस्तु कदली देला, ढाकपत्र इत्यादि ।
तिनमें मेली वस्तु जो, मुनिकों देवौ वादि ॥ १८१ ॥
दोष लगै जु सचित्तको, मुनिके अचित अहार ।
तातें सचितनिक्षेपको, त्याग करै व्रतधार ॥ १८२ ॥
तीजौ सचितपिधान है, ताहि तजौ गुणवान ।
कमलपत्र आदिक सचित, तिन करि ढांक्यौ धान ॥ १८३ ॥
नहिं देनों मुनिरायको, लगै सचितको दोष ।
प्रासुक आहारी मुनी, व्रत तप संजम कोष ॥ १८४ ॥
काल उलंघन दानको, योग्य होत नहिं दान ।
सो चोथो दूषण भया, त्यागें ते मतिवान ॥ १८५ ॥
है मच्छरता पंचमो, दूषण दुखकी खानि ।
करै अनादर दानको, ता सम मूढ़ न आनि ॥ १८६ ॥
देखि न सकै विभूति पर, परगुण देखि सकै न ।
सहि न सकै पर उच्चता, सो भववास तजै न ॥ १८७ ॥
नहिं मात्सर्य समान कोउ, दूषण जगमें आन ।
जाहि निषेधें सूत्रमें, तीर्थंकर भगवान ॥ १८८ ॥
अतीचार ए दानके, कहे जु श्रुत अनुसार ।
इनके त्याग किये शुभा, होवै व्रत अविकार ॥ १८९ ॥
नमों नमों चउदानकों, जे द्वादश-व्रत-मूल ।
भोजन भेषज भै हरण, ज्ञानदान, हर भूल ॥ १९० ॥
भोजन दानें ऋद्धि है, औषध रोग निवार ।
अभैदानतें निर्भया, श्रुति दानें श्रुति पार ॥ १९१ ॥
कहे व्रत द्वादश सबै, दया आदि सुखदाय ।
दान अनंत शुभंकरा, जिन करि सब दुख जाय ॥ १९२ ॥

१ केलेका पत्ते ।

एक एक व्रतके कहे, पंच पंच अतिचार ।
पालें निरतीचार व्रत, ते पावें भवपार ॥ १९३ ॥
सम्यक विन नहिं व्रत्त है, व्रत विन नहिं वैराग ।
बिन वैराग न ज्ञान है, राग तजें बड़भाग ॥ १९४ ॥

छंद चाल ।

अब सुनि सब व्रतको कोटा, देशावकाशिव्रत मोटा ।
ताकी सुनि रीति जु भाई, जैसी जिनराज बताई ॥ १९५ ॥
पहले जु करौ परमाणा, दिसि विदिशाको विधि जाणा ।
इंद्री विषयनिको नेमा, कीयौ धरि व्रतसों प्रेमा ॥ १९६ ॥
धन धान्य अरु वस्त्रादी, भोजन पानाभरणादी ।
मरजादा सबकी धारी, जीवितलों धर्म सम्हारी ॥ १९७ ॥
जामें मरजादा बरसी, तामें छै मासी दरसी ।
करनी चउमासी, तामें, बहुरी द्वै मासी जामें ॥ १९८ ॥
ताहूमें मासी नेमा, मासीमें पाखी प्रेमा ।
पाखीमें आधी पाखी, जाहूमें दिन दिन भाखी ॥ १९९ ॥
दिन माहीं पहरां धारै, पहरानिमें घरी विचारै ।
पल पलके धारै नेमा, जाके जिनमतसों प्रेमा ॥ २०० ॥
भोगनिसों घटतो जाई, व्रतमें चढ़तो अधिकाई ।
सीमामें सीमा कारै, जिनमारग जतनें धारै ॥ २०१ ॥
है वाड़ि फले क्षेत्रानिके, जैसें कोट जु नगरनिके ।
तैसें यह द्वादशव्रतके, देशावकाशि व्रत सबके ॥ २०२ ॥
देसावकाशि व्रत माहीं, सतरा नेम जु सक नाहीं ।
विनकी सुनि रीति जु मित्रा, जिन करि है व्रत्त पवित्रा ॥ २०३ ॥

दोहा ।

नियम किये व्रत शोभ ही, नियम विना नहिं शोभ ।
तातें व्रत धरि नेमकों, धारै तजि मद लोभ ॥ २०४ ॥

सतरा नेमके नाम ।

उक्तं च श्रावकाचारे ।

भोजने षटरसे पाने, कुंकुमादिविलेपने ।
पुष्पतांबूलगीतेषु, नृत्यादौ ब्रह्मचर्यके ॥ १ ॥

स्नानभूषणवस्त्रादौ, वाहने शयनाशने ।
सचित्तवस्तुसंख्यादौ, प्रमाणं भज प्रत्यहम् ॥ २ ॥

चौपई ।

भोजनकी मरजादा गहै, वारंवार न भोजन लहै ।
परघर भोजन तोहि जु करै, प्रात समै जो संख्या धरै ॥ २०५ ॥
अन्न मिठाई मेवा आदि, भोजन माहिं गिने जु अनादि ।
वहुरि चवीणीं अर पकवान, भोजन जाति कहे भगवान ॥ २०६ ॥
सव मरजादा माफिक गहै, वारवार ना लीयो चहै ।
षट रसमें राखे जो रसा, सोई लेय नेममें वसा ॥ २०७ ॥
और न रस चाखौ बुधिवन्त, इह आज्ञा भाषें भगवन्त ।
कामउदीपक हैं रसजाति, रसपरित्याग महातप भाति ॥ २०८ ॥
जो रसजाति तजी नहिं जाय, करि प्रमाण जियमें ठहराय ।
पानी सरवत दूधरु मही, इत्यादिक पीवेके सही ॥ २०९ ॥
तिनमें लेवौ राखै जोहि, ता माफिक लेवौ बुध सोहि ।
चोवाचन्दन तेल फुलेल, कुंकुम और अरगजा मेल ॥ २१० ॥
औषधि आदि लेप हैं जेह, संख्या विन न लगावैं तेह ।
जानें येह देह दुरगन्ध, याके कहा लगावैं सुगन्ध ॥ २११ ॥
जो न सर्वथा त्यागै वीर, तोहु प्रमाण गृहै नर धीर ।
पहुपजातिसों छाँडै प्रेम, अति दोषीक कहे गुरु एम ॥ २१२ ॥
भोग उदै जो त्यागि न सकै, थोरे लेप पापतें सकै ।
पान सुपारी डोड़ा आदि, लोंगादिक मुखसोध अनादि ॥ २१३ ॥
दालचिनी जावित्री जानि, जाती फल इत्यादि वखानि ।
सवमें पान महा दोषीक, जैसे पापनि माहिं अलीक ॥ २१४ ॥
पानैं त्यागिवौ जावो जीव, पाननिमें प्राणी जु अतीव ।
जो अतिभोगी छांड़ि न सकै, थोरे खाय दोषतें सकै ॥ २१५ ॥
गीत नृत्य वादित्र जु सर्व, उपजावै अति मनमथ गर्व ।
ए कौतूहल अधिके वन्ध, इनमें जो राचै सो अन्ध । २१६ ।
जो न सर्वथा छांडे जाय, तोहु न अधिक न राग धराय ।
मरजादा माफिक ही भजै, औसर पाय सकल ही तजै । २१७ ।
एक भेद या माहीं और, आपुन बैठौ अपनी ठौर ।
गावत गीत त्रिया नीकली, सुनिकर हरषै चितधरि रली ॥ २१८ ॥

तामें दोष लगै अधिकाय, भाव सराग महा दुखदाय ।
पातरि नृत्य अखारे माहिं, नट नटवा अथ नृत्य कराहिं ॥ २१९ ॥
वादीगर आदिक बहु ख्याल, बिनु परमाण न देखौ लाल ।
अब सुनि ब्रह्मचर्यकी बात, याहि जु पाले तेहि उदात ॥ २२० ॥
पर नारीकौ है परिहार, निजनारीमें इह निरधार ।
जावो जीव दिवसकौ त्याग, रात्रिविषैं हू अलपहि राग ॥ २२१ ॥
पाँचूं परवी सील गहेय, अर सब व्रतके दिवस धरेय ।
कबहुक मैथुन सेवन परै, सो मरजादा माफिक करै ॥ २२२ ॥
महा दोषको मूल कुसील, या तजिवेमें ना करि ढील ।
सेवत मनमथ जीव विघात, इहै काम है अति उतपात ॥ २२३ ॥
जो न सर्वथा त्याग्यौ जाहि, तौहू अलप सेववौ ताहि ।
नदी तलाव वापिका कूप, तहाँ जाय न्हावौ जु विरूप ॥ २२४ ॥
जो न्हावै विनछाणें जले, ते सब धर्म-कर्मतैं टलैं ।
जैसौ रुधिरथकी है स्नान, तैसौ अनगाले जल जान ॥ २२५ ॥
अचित्त जले न्हावौ है भया, प्रासुक निर्मल विधिकरि लया ।
ताहूकी मरजादा धरै, विना नेम कारिज नहिं करै ॥ २२६ ॥
रात्री न्हावौ नाहिं कदापि, जीव न सूझै मित्र कदापि ।
हिंसा सम नहिं पाप जु और, दया सकल धर्मनिकौ मौर ॥ २२७ ॥
आभूषण पहिरे हैं जिते, घरमें और धरै हैं तिते ।
नियम विना नहिं भूषण धरै, सकल वस्तुकौ नियम जु करै ॥ २२८ ॥
परके दीये पहरै जे हि, नियम माहिं राखै हैं तेहि ।
रतनत्रय भूषण बिनु आन, पाहन सम जाने मतिवान ॥ २२९ ॥
वस्त्रनिकी जेती मरजाद, ता माफिक पहरै अविवाद ।
अथवा नए ऊजरे और, नियमरूप पहरै सुभतौर ॥ २३० ॥
सुसरादिकके दीने भया, अथवा मित्रादिकतैं लया ।
राजादिकने की बकसीस, अदभुत अंबर मोल गरीस ॥ २३१ ॥
नित्यनेममें राखै होइ, तौ पहिरै नहिंतरि नहिं कोइ ।
पाँवनिकी पनही हैं जे हि, तेऊ वस्त्रनि माहिं गिनेहि ॥ २३२ ॥
नई पुराणी निज परतणी, राखै सो पहिरै इम भणी ।
पनही तजै पहरवौ भया, तौ उपजै प्राणिनिकी दया ॥ २३३ ॥

रथवाहन सुखपाल इत्यादि, हस्ती ऊँटरु घोटक आदि ।
एहैं थलके वाहन सवै, फुनि विमान आदिक नभ फवै ॥ २३४ ॥
नाव जिहाज आदि जलकेह, इनमें ममता नाहिं धरेह ।
कोइक जावोजीवै तजै, कोइक राखै नियमा भजै ॥ २३५ ॥
तिनहूंमें निति नेम करेइ, वहु अभिलाषा छांडि जु देइ ।
मुनि हूवौ चाहे मन मांहि, जगमाहीं जाको चित नाहिं ॥ २३६ ॥
वाहन चढै होइ नहिं दया, तातैं तजैं धन्य ते भया ।
मुनि आर्या अर श्रावक वडे, हैं जु निरारंभी अति छडे ॥ २३७ ॥
ते वाहनकौ नाम न धरैं, जीवदया मारग अनुसरैं ।
आरंभी श्रावक राजादि, तिनके वाहन हैं जु अनादि ॥ २३८ ॥
तेऊ करैं प्रमाण सुवीर, नित्यनेम धारैं जगधीर ॥
तीर्थंकर चक्री अरु काम, मुनि ह्वै फिरैं पयादे राम ॥ २३९ ॥
तातैं पगां चालिवौ भलौ, परसिर चालिवौ हैं अघमिलौ
इहै भावना भावत रहै, सो वेगो शिवकारन लहै ॥ २४० ॥
रतनत्रय शिवकारण कहे, दरसन ज्ञान चरण जिन लहे ।
अव सुनि शयनाशनकौ नेम, धारैं श्रावक व्रतसौं प्रेम ॥ २४१ ॥
जोहि पलँगपरि सोवौ तनौं, सोहू शयन परिग्रह गनौं ॥
सौड़ दुलाई तकिया आदि, ए सव सज्जा माहिं अनादि ॥ २४२ ॥
इनकौ नेम धरै व्रतवान, भूमि शयन चाहै मतिवान ॥
भूमिशयन जोगीश्वर करैं, उत्तम श्रावक हू अनुसरैं ॥ २४३ ॥
आरंभी गृहपतिके सेज, तेहू नियम सहित अधिकेज ॥
जापरि परनारी सोवैहि, सो सज्ज्या वुध नहिं जोवैहि ॥ २४४ ॥
निज सज्जा राखी है भया, ताहूमें परमित अति लया ॥
व्रतके दिन भू सज्जा करै, भोगभावतैं प्रेम न धरै ॥ २४५ ॥
गादी गाऊ तकिया आदि, चौकी चौका पाट इत्यादि ॥
सिंहासन प्रमुखा जेतेक, आसन माहिं गिनौ जु अनेक ॥ २४६ ॥
गिलम गलीचा संतरजादि, जाजम चादर आदि अनादि ॥
....॥ २४७ ॥
जेती जाति विछौनाकी हि, सो सव आसन माहिं गनीहि ॥
निज घरके अथवा परठाम, जेते मुकते राखे धाम ॥ २४८ ॥

तिनपरि वैसे और जु त्याग, है जाको व्रतसूं अनुराग ॥
सचित वस्तुको भोजन निंद, जाहि निषेधै त्रिभुवनचंद ॥ २४९ ॥
मुनि आर्या त्यागेंहि सचित्त, उत्तम श्रावक लेंहि अचित्त ॥
पंचम पड़िमा आदि सुधीर, एकादस पाड़िमा लों वीर ॥ २५० ॥
कवहु न लेइ सचित्त अहार, गहै अचित्त वस्तु अविकार ॥
पहली पाड़िमा आदि चतुर्थ,—पड़िमा लों ले सचितहिं अर्थ ॥ २५१ ॥
पै मनमें कंपै सु विवेक, तजै सचित्त जु वस्तु अनेक ॥
केइक राखी तामें नेम, नितप्रति धारै व्रतसों प्रेम ॥ २५२ ॥
कहा कहावै वस्तु सचित्त, सो धारौ भाई निज चित्त ।
पत्र फूल फल छांड़ि इत्यादि, कूंपल मूल कंद वीजादि ॥ २५३॥
पृथिवी पाणी अग्नि जु वाय, ए सहु सचित कहे जिनराय ।
जीव सहित जो पुदगल पिंड, सो सव सचित तजै गुणपिंड ॥ २५४ ॥
ये सहु जाति सचित्त तजेय, सो निहचै जिनराज भजेय ।
जो न सर्वथा त्यागी जाय, तौ कैयक ले नेम धराय ॥ २५५ ॥
संख्या सचित वस्तुकी करै, सकल वस्तुको नियम जु धरै ।
गिनती करि राखै सव वस्तु, तवहि जानिय व्रत्त प्रशस्त ॥ २५६ ॥
लाडू पेड़ा पाक इत्यादि, औषधि रस अर चूरण आदि ।
वहुत वस्तु करि जो निपजेह, एक द्रव्य जानों वुध तेह ॥ २५७ ॥
वस्तु गरिष्ट न खावे जोग, ए सव काम तने उपयोग ।
जो कदापि ये खाने परै, अलपथकी अलप जु आहरै ॥ २५८ ॥
सत्रा नेम चितारै नित्य, जानों ए सहु ठाठ अनित्य ।
प्रातथकी संध्यालों करै, फुनि संध्या समये वुध धरै ॥ २५९ ॥
इती वस्तु तौ त्यागै धीर, राति परै नहिं सेवै वीर ।
भोजन षटरस पान समस्त, चंदनलेप आदि परसस्त ॥ २६० ॥
तजै राति तंवोल सुवीर, दया धर्म उर धारै धीर ।
गीत श्रवण जो होय कदापि, राखै नेम माहिं सो क्वापि ॥ २६१ ॥
नृत्यहुसों नहिं जाको भाव, पै न सर्वथा छांड्यौ चाव ।
जौ लग गृहपति कवहुक लखै, सोहू नेममाहिं जो रखै ॥ २६२ ॥
ब्रह्मचर्यसों जाको हेत, परनारीसों वीर सचेत ।
निज नारीहीमें संतोष, दिनकों कवहु न मनमथ पोष ॥ २६३ ॥

रात्रिहुमें पहलौ पहरौ न, चौथो पहरौ मनमथको न ।
दूजी तीजी पहर कदापि, परै सेवनो मैथुन क्वापि ॥ २६४ ॥
सोहू अलपथकी अति अल्प, नित प्रति नहिं याको संकल्प ।
राखै नेम माहिं सहु बात, विना नेम नहिं पांव धरात ॥ २६५ ॥
स्नान रातिकों कबहु न करै, दिनकों स्नान तनी विधि धरै ॥
भूषण वस्त्रादिकको नेम, राखै जाविधि धारै प्रेम ॥ २६६ ॥
वाहन शयनाशनकी रीति, नेम माहिं धारै सहु नीति ।
वस्तु सचित नहिं निसिकों भखै, रजनीमें जलमात्र न चखै ॥ २६७ ॥
खान पानकी वस्तु समस्त, रात्रिविषैं कोई न प्रशस्त ।
याविधि सतरा नेम जु धरै, सो व्रत धारि परम गति वरै ॥ २६८ ॥
नियम विना धृग धृग नर जन्म, नियमवान होवैहि अजन्म ।
यमनियमासन प्राणायाम, प्रत्याहार धारना राम ॥ २६९ ॥
ध्यान समाधि अष्ट ए अंग, योगतनें भाषै जु असंग ॥
सबमें श्रेष्ठ कही सु समाधि, नियमथकी उपजै निरुपाधि ॥ २७० ॥
रागदोषको त्याग समाधि, जाकरि टरै आधि अरु व्याधि ॥
परम शांतता उपजै जहां, लहिए आतम भाव जु तहां ॥ २७१ ॥
मरण काल उपजै जु समाधि, आय प्राप्त है आधिरु व्याधि ॥
नित्य अभ्यासी होय समाधि, तौ न नीपजै एक उपाधि ॥ २७२ ॥
जो समाधितें छांड़ै प्राण, तौ सदगति पावैहि सुजांण ॥
नांहिं समाधिसमान जु और, है समाधि व्रत्तनि सिरमौर ॥ २७३ ॥

छंद चाल ।

अब सुनि सल्लेखण भाई, जाकरि सहु व्रत सुधराई ॥
उत्तम जन याकों भावें, याकरि भवभ्रांति नसावें ॥ २७४ ॥
जे द्वादस व्रत संजुक्ता, सल्लेखण कारई युक्ता ।
होवें जु महा उपशांता, पावें सुरसौख्य सुकांता ॥ २७५ ॥
अनुक्रम पहुंचै थिर थानै, परकी सहु परणति भानै ।
यह एकहु निर्मलव्रत्ता, समदृष्टी जो दृढ़चित्ता ॥ २७६ ॥
करई सो सुरपति होवै, फुनि नरपति है शिव जोवै ॥
इह भुक्ति मुक्ति दायक है, सव व्रत्तनिको नायक है ॥ २७७ ॥

१ रात्रिमें ।

सोरठा ।

मेरौ जो निजधर्म, ज्ञान सुदर्शन आचरन ॥
सो नाशक वसु कर्म, भासक अमित सुभावको ॥ २७८ ॥
मैं भूल्यौ निज धर्म, भयौ अधर्मा जगविषैं ॥
तातें बंधे कर्म, कीये कुमरण अनंत मैं ॥ २७९ ॥
मरिमरि चहुंगति माहिं, जनम्यौ मैं शठ भ्रांति धर ॥
सो पदपायौ नाहिं, जहां जन्म मरण न हुवै ॥ २८० ॥
बिना समाधि जु मर्ण, मर्ण मिटै नहिं हमतनों ॥
यह एकैव जु सर्ण, है सल्लेखण अति गुणी ॥ २८१ ॥
निज परणतिसों मोहि, एकत करिवे सक इहै ॥
देख्यौ श्रुतिमें टोहि, ठौर ठौर याको जसा ॥ २८२ ॥
धरै निरंतर याहि, अंतिम सल्लेखण वरत ॥
उपजै उत्तम ताहि, मरणकाल निहसंकता ॥ २८३ ॥
करिहों पंडित मर्ण, किये बाळ मर्णा अमित ।
ले जिनवरको सर्ण, तजिहों काया कारिमा ॥ २८४ ॥
जिन आज्ञा अनुसार, अवश्य करौंगो अन्नसन ।
सल्लेखणव्रत धार, इहै भावना निति धरै । २८५ ॥

वेसरी छंद ।

मरण काल धरियेगो भाई, परि याकों नित मति चितराई ।
व्रत अनागत याविधि पालै, या व्रत करि सहु दूषण टालै ॥ २८६ ॥
मरणो नाहीं आतमतामें, तातें निरभै होय रहा मैं ।
पर संबंध ऊपनी काया, ताका नाता अवस्य वताया ॥ २८७ ॥

....

मैं अनादि सिद्धो अविनाशी, सिद्धसमानो अति सुखरासी ॥ २८८ ॥
सो अनादि कालजुतैं भूल्यौ, परपरणातिके रसमें फूल्यौ ।
परपरणति करि भयौ सदोषी, कर्मकलंक उपार्जक रोपी ॥ २८९ ॥
जातैं देह अनंती धारी, किये कुमर्ण अनंता भारी ।
मैं नहिं कबहूँ उपज्यो मूवौ, मैं चेतन मायातैं दूवौ ॥ २९० ॥
मोतैं भिन्न सकल परभावा, मैं चिद्रूप अनन्त प्रभावा ।
भयो कषाय-कलंकित चित्ता, मैं पापी अति ही अपवित्ता ॥ २९१ ॥

वहु तन धरि धरि डारै भाई, तन तजिवौ इह मरण कहाई।
तातैं कुमरण मूल कषाया, क्षीण करै ध्याऊँ जिनराया ॥ २९२ ॥
रागादिक तजि करौं सुमरणा, वहुरि न मेरे होइ कुमरणा।
इहै धारना धरि व्रतधारी, दुर्वल करै कषाय जु सारी ॥ २९३ ॥
कै गुरुके उपदेशथकी जो, कै असाध्य लखि रोग अती जो।
मरनकाल जानै जव नीरे, तव कायरता धरइन तीरे ॥ २९४ ॥
चउ अहार तजि च्यारि कषाया, तजि करि त्यागै त्यागी काया।
तन संवंध उदै मति आवौ, तनमें हमरौ नाहिं सुभावौ ॥ २९५ ॥

सोरठा।

कर्म संजोगे देह, उपज्यौ सो न रहायगो।
तातैं यासौं नेह, करनौ सो अति कुमति है ॥ २९६ ॥

चौपाई।

इहै भावना धारि विरागी, तजै कारिमा काय सभागी।
सो श्रावक पावै शुभ लोका, षोड़श सुर्ग लगैं सुखथोका ॥ २९७ ॥
नर ह्वै फिर मुनिके व्रत धारै, सिद्ध लोककों शीघ्र निहारै।
सल्लेखण सम व्रत्त न दूजा, इह सल्लेखण त्रिभुवन पूजा ॥ २९८ ॥
तजि कषाय त्यागै वुध काया, सो संन्यास महाफलदाया ॥
सल्लेखण संन्यास समाधी, अनसन एक अर्थ निरुपाधी ॥ २९९ ॥
पंडितमरणा वीरियमरणा, ये सव नाम कहे जु सुमरणा ॥
सुमरणतैं कुमरण सव नासै, अविनासी पद शीघ्र प्रकासै ॥ ३०० ॥
यह संन्यास न आतमघाता, कर्म विघाता है सुखदाता ॥
अर जो शठ करि तीव्र कषाया, जलमें डूवि मरै भरमाया ॥ ३०१ ॥
जीवत गड़ै भूमिमें कुमती, सो पावै दुरगति अति विमती ॥
अगनि दाह ले अथवा विष करि, तजै मूढ़धी काया दुख करि ॥ ३०२ ॥
शस्त्र प्रहारि जो त्यागै प्राणा, अथवा झंपापात वखाणा ॥
ए सव आतमघात वताये, इन करि जड़ भव भव भरमाये ॥ ३०३ ॥
हिंसाके कारण ये पापा, हैं जु कषाय प्रदायक तापा ॥
तनकौ क्षीण पारिवौ भाई, सो संन्यास कहैं जिनराई ॥ ३०४ ॥
जीवदयाकौ हेतु समाधी, विना समाधि मिटै न उपाधी ॥
दया उपाधि मिटै विन नाहीं, तातैं दया समाधि ही माहीं ॥ ३०५ ॥

व्रत शीलनिकौ सर्वस एही, इह संन्यास महा सुख देही ॥
मुनिकों अनशन शिवसुख देई, अथवा सुर अहमिंद्र करेई ॥ ३०६ ॥
श्रावककों सुर उत्तम कारै, नर करि मुनि करि भवदधि तारै ॥
उभय धर्मको मूल समाधी, मेटै सकल आधि अर व्याधी ॥ ३०७ ॥
कायर मरणें बहुत हि मूवा, अब धरि वीर मरण जगदूवा ॥
बहुत भेद हैं अनशनके जी, सबमें आराधन चउ ले जी ॥ ३०८ ॥
दरसन ज्ञान चरन तप शुद्धा, ए चारौं ध्यावैं प्रतिबुद्धा ।
निश्चय अर व्यवहार नयनि करि, चउ आराधन सेवैं चितकरि ॥ ३०९ ॥
ताकौ सुनहु विचार पवित्रा, जा करि छूटै भवभ्रम मित्रा ॥
देव जिनेशुर गुरु निरग्रंथा, सूत्र दयामय जैन सुपंथा ॥ ३१० ॥
नव तत्त्वनिकी श्रद्धा करिवौ, सो व्यवहार सुदर्शन धरिवौ ॥
निश्चै अपनो आतमरामा, जिनवर सो अविनश्वरधामा ॥ ३११ ॥
गुण-पर्याय स्वभाव अनंता, द्रव्यथकी न्यारे नहिं संता ।
गुण-गुणिकौ एकत्व सुलखिवौ, आतमरुचि श्रद्धाकौ धरिवौ ॥ ३१२ ॥
करि प्रतीति जे तत्त्वतनी जो, हनै कर्मकी प्रकृति घनी जो ॥
सो सम्यकदर्शन तुम जानों, केवल आतमभाव प्रवानों ॥ ३१३ ॥
अब सुनि ज्ञान अराधन भाई, सम्यकज्ञानमयी सुखदाई ॥
नव पदार्थकौ जानैं भेदा, जिनवानी परमान सुवेदा ॥ ३१४ ॥
पंच परम पदकों प्रभु जानैं, भयौ जु दासा बोध प्रवानै ।
इह व्यवहारतनों हि स्वरूपा, निश्चय जानैं हूँ जु अरूपा ॥ ३१५ ॥
शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध प्रवृद्धा, अतुल शक्ति रूपी अनुरुद्धा ।
.... ॥ ३१६ ॥
चेतन अनंत गुणातम ज्ञानी, सिद्ध सरीखौ लोक प्रवानी ।
अपनो भाव भायवौ भाई, सो निश्चय ज्ञान जु शिवदाई ॥ ३१७ ॥
फुनि सुनि सम्यकचारित रतना, त्रसथावरकौ अति ही जतना ।
आचरिवौ भक्ती जिन मुनिकी, आदरिवौ विधि जोहि सु पुनकी ॥ ३१८ ॥
पंच महाव्रत पंच सु समिती, तीन गुपति धारै हि जु सुजती ।
अथवा द्वादस व्रत्त सुधरिवौ, श्रावक-संयमकौ अनुसरिवौ ॥ ३१९ ॥
ए सब हैं विवहार चरित्रा, निश्चय आतम अनुभव मित्रा ।
जो सुस्वरूपाचरण पवित्रा, थिरता निजमें सो सु पवित्रा ॥ ३२० ॥

ए रतनत्रय भाषे भाई, चौथौ सम्यकतप सुखदाई।
व्यवहारें द्वादश तप संता, अनसन आदि ध्यान परजंता॥ ३२१॥
निश्चै इच्छाकौ जु निरोधा, पर परणति तजि आतम सोधा।
अपनो आतम तेजकरी जो, सो तप भाष हि कर्महरी जो॥ ३२२॥
ए चउ आराधन आराधै, सो संन्यास धरै शिव साधै।
अरंहता सिद्वा साधा जे, केवलि कथित सुधर्म दया जे॥ ३२३॥
ए चउ शरणा लेइ सु ज्ञानी, ध्यावै परम ब्रह्मपद ध्यानी।
णमाकोर मंतर जपतौ जो, ओंकार प्रणवै रटतौ जो॥ ३२४॥
सोऽहं अजपा अनादह सुनतौ, श्रीजिन विंव चित्तमें मुनतौ।
धर्मध्यान धरंतौ धोरी, लगी जिनेसुर पदसों डोरी॥ ३२५॥
ध्यावंतौ जिनवर गुन धीरो, निजरस रातौ विरकत वीरो।
दुर्वल देह अनेह जगतसों, करि कषाय दुर्वल निज धृतिसों॥ ३२६॥
क्षमा करै सव प्राणी गणसों, त्यागै प्राण लाय लव जिणसों।
सो पंडितमरणा जु कहावै, ताकौ जस श्रुतकेवलि गावै॥ ३२७॥
सल्लेखणके वहुते भेदा, भाषे जिनमत पाप उछेदा।
है प्रायोपगमन सव माहें, उत्तमसों उत्तम सक नाहें॥ ३२८॥
ताकौ अर्थ सुनौ मनलाये, जाकरि अपनों तत्त्व लखाये।
प्रायः कहिये मित्र सर्वथा, उप कहिये स्वसमीप निर्ग्रथा॥ ३२९॥
गमन जु कहिये जाग्रत होवौ, रात दिवस कवहूँ नहि सोवौ॥
सो प्रायोपगमन संन्यासा, सर्व गुणाकरि धर्म अध्यासा॥ ३३०॥
निजकों वारंवार चितारै, क्षण क्षण चेतन तत्व निहारै।
जग संतति तजि होइ इकाकी, कीरति गावें श्रीगुरु ताकी॥ ३३१॥
तजै अहार विहार समस्ता, भजै विचार समस्त प्रशस्ता॥
इह भव परभवकी अभिलाषा, जित करि होइ निरीह अभाषा॥ ३३२॥
या जड़ तनकी सेवा आपुन, करै न करावै विधिसों थापुन॥
अति वैराग्य परायण सोई, तजै अनातम भाव सवोई॥ ३३३॥
गहन वनें भू सज्जा धारी, निसप्रह जगतजोगथी भारी॥
चित्त दयाल सहनशीलो जो, सहै परीसह नहिं ढीलौ जो॥ ३३४॥
जो उपसर्गथकी नहिं कंपै, जाकौं कायरता नहिं चंपै॥
भागौ लोकप्रपंचथकी जो, परपरणति जातैं दिसिकी जो॥ ३३५॥

या संन्यासथकी जो प्राणा, त्यागै सो नहिं मुवौ सुजाणा ॥
सुर-शिवदायक है यह व्रत्ता, यामैं बुधजन करैं प्रवृत्ता ॥ ३३६ ॥
पंच अतीचारा जो त्यागै, तब संन्यास-पंथकौं लागै ॥
सो तजि पांचूं ही अतिचारा, ये तो सल्लेखण व्रत धारा ॥ ३३७ ॥
जीवित अभिलाषा अघ पहिला, ताकौं धारइ सो गिनि गहिला ॥
देखि प्रतिष्ठा जीयौ चाहै, सो सल्लेखण नहिं अवगाहै ॥ ३३८ ॥
दूजौ मरण तनीं अभिलाषा, जो धारै निज रस नहिं चाखा ॥
रोग कष्ट करि पीड़्यौ अति गति, मरिवौ चाहै सो गिनि शठमति॥३३९॥
तीजौ सुहृदनुराग सुगनिये, मित्रथकी अनुराग सु धरिये ॥
मरिवौ आनि वन्यूं परि मित्रा, मिल्यौ न इमसौं जोहु पवित्रा ॥ ३४० ॥
दूरि जु सज्जन तामैं भावा, मिलिवेको अति करहि उपावा ॥
अथवा मित्र कनारे जो है, ताके मोहथकी मन मोहै ॥ ३४१ ॥
यों अज्ञानथकी भव भरमै, पावै नहिं सल्लेखण घरमैं ॥
पुनि सुखानुवंधो है चौथौ, सुख संसार तनों सहु थोथौ ॥ ३४२ ॥
या तनमैं भुगते सुख भोगा, सो सब यादि करैं शठ लोगा ॥
यों नहिं जानैं भव सुख दुख ए, तीन कालमैं नाहीं सुख ए ॥ ३४३ ॥
इनकौं सुख जानैं जो भाई, भोंदू इनसौं चित्त लगाई ॥
सो दुख लहै अनंता जगके, पावै नहिं गुण जे जिन मगके ॥ ३४४ ॥
पंचम दोष निदान प्रबंधा, जो धारइ सो जानहु अंधा ॥
परभवमैं चाहे सुख भोगा, यों नहिं जानैं ए सहु रोगा ॥ ३४५ ॥
इंद्र चंद्र नागेन्द्र नरेन्द्रा, हूवौ चाहे फुनि अहमिंद्रा ॥
व्रतकौं वेचै विषयानि साटे, सो जड़ कर्मबंध नहिं काटै ॥ ३४६ ॥
ए पांचौं तजि धरइ समाधी, सो पावै सदगति निरुपाधी ॥
या व्रत सम नहिं दूजौ कोई, सबमैं सारजु इह व्रत होई ॥ ३४७ ॥
याकौ जस सुर नर मुनि गावैं, धीर चित्त यासौं लवलावैं ॥
नमौं नमौं या सुमरणकौं है, जो काटै जलदी कुमरणको है ॥ ३४८ ॥

दोहा।

उदै होउ सल्लेखणा, जोहि निवारै भ्रांति ॥
आवै वोध जु घटविषैं, पइये परम प्रशांति ॥ ३४९ ॥
कहे वरत द्वादश सबै, अर सल्लेखण सार ॥
अब सुनि तप द्वादश तनों, भेद निर्जराकार ॥ ३५० ॥

प्रथमहिं बारह तपविषैं, है अनसन अविकार॥
जाहि कहैं उपवास गुरु, ताकौ सुनहुं विचार॥ ३५१॥
इंद्रिनिकी उपसांतता, सो कहिये उपवास॥
भोजन करते हू मुनी, उपवासे जिनदास॥ ३५२॥
जो इंद्रिनिके दास हैं, अज्ञानी अविवेक॥
करैं उपासा तउ शठा, नहिं व्रत धार अनेक॥ ३५३॥
मुनि श्रावक दोऊनिकों, अनसन अति गुणदाय॥
जाकरि पाप विनाश ह्वै, भाषैं श्री जिनराय॥ ३५४॥
इंद्रिनिकों उपशांत करि, करै चित्तकौ रोध॥
ते उपवासे उत्तमा, लहैं आपकौ बोध॥ ३५५॥
गनि उपवासे ते नरा, मन इंद्रिनिकों जीति॥
करैं वास चेतनविषैं, शुद्धभावसों प्रीति॥ ३५६॥
इस भव परभव भोगकी, तजि आसा ते धीर॥
करम-निर्जराकारणैं, करैं उपास सु वीर॥ ३५७॥
आतम ध्यान धरैं बुधा, कै जिन श्रुत अभ्यास
तब अनसनकौ फल लहैं, केवल तत्त्व अध्यास॥ ३५८॥
चऊ अहार विकथा चऊ, तजिवौ चारि कषाय॥
इंद्री विषया त्यागिवौ, सो उपवास कहाय॥३५९॥
द्वै विधि अनसनकी कहैं, महामुनी श्रुतिमाहिं॥
सावधि निरवधि गुण धरी, जाकरि कर्म नशाहिं॥ ३६०॥
एक दिवस द्वै तीन दिन, च्यारि पांच पखवार॥
मासी द्वय त्रय च्यारि हू, मास छमास विचार॥ ३६१॥
वर्षावधि उपवास करि, करै पारनों जोहि॥
सावधि अनसन तप भया, भाषैं श्रीगुरु सोहि॥ ३६२॥
आयु-कर्म थोरौ रहै, तब ज्ञानी व्रत धीर॥
जावोजीव तजैं सबै, असन पान जगवीर॥ ३६३॥
मरणावधि अनसन करै, सो निरवधि उपवास॥
जे धारैं उपवासकों, ते जु करैं अघ नाश॥ ३६४॥
करते थके उपासकों, जे न तजैं आरंभ॥
जग धंधेमैं चित धरैं, तजैं न शठमति दंभ॥ ३६५॥

मोह-गहल चंचल दशा, लहै न फल उपवास ॥
कछुयक कायकलेसकौ, फल पावै जगवास ३६६ ॥
कर्मनिर्जरा फल सही, सो नहिं तिनकौं होइ ॥
इह निश्चै सतगुरु कहैं, धारैं बुधजन सोइ ॥ ३६७ ॥
धन्य धन्य उपवास है, देइ सासतौ वास ॥
अव सुनि अवमोदर्य जो, दूजौ तप सुखरास ॥ ३६८ ॥
जो मुनि करैं उनोदरी, तजि अहारकी गृद्धि ॥
प्रासुक योगसु अलप अति, ले अहार तप-वृद्धि ॥ ३६९ ॥
करै सु अवमोदर्यकौं, करै निर्जरा हेत ।
नहिं कीरतिकौ लोभ है, सो मुनि जिनपद लेत ॥ ३७० ॥
श्रावक होइ जु व्रत करै, लेइ अलप आहार ॥
जव स्वाध्याय सु ध्यान है, मिटैं अनेक विकार ॥ ३७१ ॥
संध्या पोसह पडिकमण, तासौं सधै अदोप ॥
जो अहार वहुत न करै, धरै महागुण कोप ॥ ३७२ ॥
कै अनसन अघ नाश कर, कै यह अवमोदर्य ॥
इन सम और न जगविषैं, ए तप अति सौंदर्य ॥ ३७३ ॥
इन विन कदै न जो रहै, सो पावै व्रतशुद्धि ॥
ध्यान कारनें जो करै, सो होवै मतिबुद्ध ॥ ३७४ ॥
अरु जो मायावी अधम, धरि कीरतिकौ लोभ ॥
करै सु अलप अहारकौं, सो नहिं होइ अछोभ ॥ ३७५ ॥
अथवा जो शठ अंधधी, यह विचार जियमाहिं ॥
करै सु अलप अहार जो, सोहू व्रतधरि नाहिं ॥ ३७६ ॥
जो करिहौं जु अहार अति, तौ जैसौ तैसौ हि ॥
मिलि हैं मोदक स्वादकरि, तातैं इह न भलौ हि ॥ ३७७ ॥
अलप अहार जु खाहुंगो, वहुत रसीली वस्त ॥
इहै भावधरि जो करै, सो नहिं व्रत्त प्रशस्त ॥ ३७८ ॥
मिष्ट भोज्य अथवा सुजस,—कारण अल्प अहार ॥
करै न फल तपकौ प्रवल, कर्म निर्जराकार ॥ ३७९ ॥

१ मोक्ष।

केवल आतमध्यानके, अर्थ करै व्रतधार।
कै स्वाध्याय सु व्रतके, कारण अल्प अहार ॥ ३८० ॥
अल्प अहारथकी क्षुधा, रोग न उपजै कापि।
निद्रा मनमथ आदि सहु, नहिं पीरै जु कदापि ॥ ३८१ ॥
वहु अहारसम दोष नहिं, महारोगकी खानि।
निद्रा मनमथ प्रमुख जो, उपजै पाप निद्धान ॥ ३८२ ॥
लोकमांहि कहवत इहै, मरै मूढ़ अति खाय।
कै विन बुद्धि जु वोझकों, भोंदू मरै उचाय ॥ ३८३ ॥
तातैं घनों न खाइवौ, करिवौ अलप अहार।
याहि करैं सतगुरु सदा, व्रतकौ वीज अपार ॥ ३८४ ॥
व्रतपरिसंख्या तीसरौ, तप ताकों सु विचार।
सुनूं सुगुरु भाषैं भया, परम निर्जराकार ॥ ३८५ ॥
मुनि उतरैं आहारकों, करि ऐसी परतिज्ञ।
मनमैं तौऊ छांटकों (?), सो धारौ तुम विज्ञ ॥ ३८६ ॥
एक घरें नहिं पाय हों, तौ न आन घर जाहुं।
और कछू नहिं खायहों, यह मिलि है तौ खांहुं ॥ ३८७ ॥
अथवा ऐसी मन धरैं, याविधिके तन चीर।
पहिरें होंगी श्राविका, तौ लेहूं अन नीर ॥ ३८८ ॥
तथा विचारैं सो सुधी, कारौ वलधा जोहि।
धरै सींग परि गुड़ला, मिलै पंथमैं मोहि ॥ ३८९ ॥
जाऊं भोजन कारनैं, नांतरि नहिं अहार।
इत्यादिक जे अटपटी, करैं प्रतिज्ञा सार ॥ ३९० ॥
व्रतपरिसंख्या तप लहैं, ते मुनिराय महंत
श्रावक हू इह तप करैं, कौन रीति सुन संत ॥ ३९१ ॥
प्रातहि संध्या विधि करैं, धारइ सतरा नेम।
तासम कवहू व्रत करै, परिसंख्यासों प्रेम ॥ ३९२ ॥
धारि गुप्ति चितवै सुधी, अपने चित्त मँझारि।
साखि जिनेश्वर देव हैं, ज्ञायक ज्ञेय अपार ॥ ३९३ ॥
और न जानें बात इह, जो धारै वुध नेम।
नहीं प्रेम भवभावसों, जप तप व्रतसों प्रेम ॥ ३९४ ॥

अनायास भोजन समै, मिलि हैं मोहि कदापि।
रूखी रोटी, मूंगकी, लेहूं और न कापि ॥ ३९५ ॥
इत्यादी जे अटपटी, धरैं प्रतिज्ञा धीर।
व्रतपरिसंख्या तप लहैं, ते श्रावक गंभीर ॥ ३९६ ॥
अब सुनि चौथौ तप महा, रसपरित्याग प्रवीन।
मुनि श्रावक दोऊनिकौं, भाषैं आतमलीन ॥ ३९७ ॥
अति दुखकौ सागर जगत, तामैं सुख नहिं लेश।
चहुंगति भ्रमण जु कब मिटै, कटैं कलंक अशेश ॥ ३९८ ॥
जगके झूंठे रस सबै, एक सरस अति सार।
इहै धारना धर सुधी, होइ महा अविकार ॥ ३९९ ॥
भवतैं अति भयभीत जो, डर्यो भ्रमणतैं धीर।
निर्वाणी निर्मान जो, चाखै निजरस वीर ॥ ४०० ॥
विषहूतैं अति विषम जे, विषया दुखकी खानि।
भवभव मोकूं दुख दियौ, सुख परणतिकौ भांनि ॥ ४०१ ॥
तातैं इनकौ त्यागकरि, धरौं ज्ञानकौं मित्र।
तप जो भव आतप हरै, करण पुनीत पवित्र ॥ ४०२ ॥
इह चिंतवतौ धीर जो, रसपरित्याग करेय।
नीरस भोजन लेयकै, ध्यावै आतम ध्येय ॥ ४०३ ॥
दूध दही घृत तेल अर, मीठौ लवण इत्यादि।
रस तजि नीरस अन्न ले, काटै कर्म अनादि ॥ ४०४ ॥
अथवा मिष्ट कषायलो, खारो खाटो जानि।
करवो और जु चिरपरो, यह षटरस परवानि ॥ ४०५ ॥
सब तजि नीरस जो भखै, सो आतमरस पाय।
देय जलांजलि भ्रमणकौं, सूधो शिवपुर जाय ॥ ४०६ ॥
भव बाकी है जो भया, तौ पावै सुरलोक।
सुरथी[1] नर है मुनिदशा, धारि लहै शिवथोक ॥ ४०७ ॥
अथवा सिंगारादिका, नव रस जगत विख्यात।
तिनमैं शांति सुरस गहै, जो सब रसकौ तात ॥ ४०८ ॥
पर रस तजि जिन रस गहै, जाके रस नहिं शेष।
सो पावै समभावकौं, दूरि करै सहु दोष ॥ ४०९ ॥

१ देव पर्य्याय पाकर।

रसपरित्याग समान नहिं, दूजौ तप जगमाहिं ।
जहां जीभके स्वाद सहु, त्यागे संशय नहिं ॥ ४१० ॥
अब विविक्तशय्यासना, पंचम तप सुनि वीर ।
रागद्वेषके हेतु जे, आसन सज्जा चीर ॥ ४११ ॥
ताजि मुनिवर निरग्रंथ है, वसैं आपमैं धीर ।
तन खीणा मन उनमना, जगतरूढ़ गंभीर ॥ ४१२ ॥
पूजा हमरी होयगी, बहुत भजेंगे लोक ।
इह वांछा नहिं चित्तमैं, नहीं हरप अर शोक ॥ ४१३ ॥
सकल कामना-रहित जे, ते साधू शिवमूल ॥
पापथकी प्रतिकूल है, भये ब्रह्म अनुकूल ॥ ४१४ ॥
ते संसार शरीर अरु, भोगथकी जु उदास ॥
अभ्यंतर निजबोध धर, तप-कुशला जिनदास ॥ ४१५ ॥
उपशमशीला शांतधी, महासत्व परवीन ॥
निवसैं निर्जन वनविषैं, ध्यान लीन तनखीन ॥ ४१६ ॥
गिरिसिर गुफा मँझार जे, अथवा वसैं मसान ॥
भूमिमाहिं निरव्याकुला, धीर वीर बहु जान ॥ ४१७ ॥
तरुकोटर सूना घरी, नदीतीर निवसंत ॥
कर्म-क्षपावन उद्यमी, ते जैनी मतिवंत ॥ ४१८ ॥
कंकरीली धरतीविषैं, विषम भूमिमैं साध ॥
तिष्टैं ध्यावैं तत्त्वकों, आराधन आराधि ॥ ४१९ ॥
जगवासिनकी संगती, ध्यान विघनकौ मूल ॥
तातैं तजि जड़ संगती, भये ज्ञान अनुकूल ॥ ४२० ॥
स्त्री-पशु-बाल-विमूढ़की, संगति अति दुखदाय ॥
कायरकी संगति थकी, सूरापन विनसाय ॥ ४२१ ॥
जे एकांत बसैं सुधी, अनेकांत धरि चित्त ॥
ते पावैं परमेसुरो, लहि रतनत्रय वित्त ॥ ४२२ ॥
मुनिकी रीति कही भया, सुनि श्रावककी रीति ॥
जाविधि पंचम तप करै, धरि जिन वचन प्रतीति ॥ ४२३ ॥
निजनारीहूतैं विरत, परनारीकौ वीर ॥
शीलवान शांतिक अती, तप धारै अति धीर ॥ ४२४ ॥

परनारीकी सेज अर, आसन चीर इत्यादि ॥
कबहुँ न भींटै भव्य जो, तजै काम रागादि ॥ ४२५ ॥
निज नारीहूकों तजै, जौलग त्याग न होय ॥
तौलग कबहुंक सेवही, बहुत राग नहिं कोय ॥ ४२६
एक सेज सोवै नहीं, जुदौ जु सोवै जोहि ॥
जब विविक्तशय्यासना, पावै तप अति सोहि ॥ ४२७ ॥
करै परोस न दुष्टकौ, तजै दुष्टकौ संग ॥
विसनीतैं दूरो रहै, पालै व्रत्त अभंग ॥ ४२८ ॥
जे मिथ्यामत धारका, अलगौ तिनसों होइ ॥
जिनधरमीकी संगती, धारै उत्तम सोइ ॥ ४२९ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मकौ, करै न जो विश्वास ॥
है विश्वासी जैनकौ, जिनदासनिकौ दास ॥ ४३० ॥
सामायक पोषा समै, गहै इकंत सुथान ।
सो विविक्तशय्यासना, भाषैं श्रीभगवान ॥ ४३१ ॥
करनों पंचम तप भया, अब छट्ठो तप धार ।
कायकलेस जु नाम है, कह्यौ सूत्र अनुसार ॥ ४३२ ॥
अति उपसर्ग उदै भयौ, ताकरि मन न डिगाय ।
क्षमावान शांतिक महा, मेर समान रहाय ॥ ४३३ ॥
देव मनुज तिरजंच कृत, अथवा स्वतैं स्वभाव ।
उपजौ जो उपसर्ग है, तामैं निर्मलभाव ॥ ४३४ ॥
खेद न आने चित्तमैं, कायकलेस सहेय ।
सो कलेस नहिं पावई, ज्ञान शरीर लहेय ॥ ४३५ ॥
गिरि सिर ग्रीषममैं रहै, शीतकाल जलतीर ।
वर्षाऋतु तरुतल वसइ, सो पावै अशरीर ॥ ४३६ ॥
आतापन जोग जु धरै, कष्ट सहै जु अशेश ।
अति उपवास करै सुधी, सो तप कायकलेस ॥ ४३७ ॥
कायकलेसैं सहु मिटैं, तन मनके जु कलेस ।
महापाप कर्म जु कटैं, गुण उपजैंहि अशेश ॥ ४३८ ॥
मुनि श्रावक दोऊनिकों, करिवौ कायकलेस ।
संकलेसता भाव तजि, इह आज्ञा जगतेश ॥ ४३९ ॥

वनवासीके अति तपा, घरवासीके अल्प ।
अपनी शक्ति प्रमाण तप, करिवौ त्याग विकल्प ॥ ४४० ॥
ए षट वाहिज तप कहै, अव अभ्यंतर धारि ।
इह भाषैं श्रुतकेवली, जिनवाणी अनुसार ॥ ४४१ ॥
दोष न करई आप जो, करवावै न कदापि ।
दोषतनी अनुमोदना, करै नहीं बुध कापि ॥ ४४२ ॥
मन वच तन करि गुणमई, निरदोषी निरुपाधि ।
आनंदी आनंदमय, धारै परम समाधि ॥ ४४३ ॥
अथवा कदै प्रमादतैं, किंचित लागै दोप ।
तौ अपने औगुण सुधी, नहिं गोपै व्रतपोप ॥ ४४४ ॥
श्रीगुरु पास प्रकाशई, सरल चित्तकरि धीर ।
स्वामी लाग्यौ दोप मुझ, दंड देहु जगवीर ॥ ४४५ ॥
तब जो श्रीगुरु दंड दे, व्रत तप दान सुयोग ।
सो सब श्रद्धातैं करै, पावै पंथ निरोग ॥ ४४६ ॥
ऐसी मनमैं ना धरै, अलप हुतौ यह दोप ।
दियौ दंड गुरुने महा, जाकरि तनकौ सोप ॥ ४४७ ॥
सवै त्यागि शंका सुधी, संकल विकलपा डारि ॥
प्रायश्चित्त करै तपा, गुरु आज्ञा अनुसारि ॥ ४४८ ॥
वहुरि न इच्छै दोषकों, त्यागै मन वच काय ॥
देहतनें सौ टूक है, तौहु न दोष उपाय ॥ ४४९ ॥
या विधिके निश्चै सहित, वरतै ज्ञानी जीव ॥
ताकै तप है सातमौ, भाषैं त्रिभुवन-पीव ॥ ४५० ॥
जो चितवै निजरूपकों, ज्ञानस्वरूप अनूप ॥
चेतनता-मंडित विमल, सकल लोककौ भूप ॥ ४५१ ॥
बार बार ही निज लखै, जानें वारंवार
बार वार अनुभव करै, सो ज्ञानी अविकार ॥ ४५२ ॥
विकथा विषैं कषायतैं, न्यारौ वरतै संत ।
ता विरकतके दोष कहु, कैसे उपजै मित ॥ ४५३ ॥
निरदोषी बहु गुण धरै, गुणी महा चिद्रूप ।
तासों परचै पाइयौ, सो तपधारि अनूप ॥ ४५४ ॥

दोषतनों परिहार जो, कहिए प्रायश्चित्त।
धारै सो निजपुर लहै, गहै सासतो वित्त ॥ ४५५ ॥
अब सुनि भाई आठमो, विनय नाम तप धार।
विनय मूल जिनधर्म है, विनय सु पंच प्रकार ॥ ४५६ ॥
दरसन ज्ञान चरित्र तप, ए चउ उत्तम होइ।
अर इन चउके धारका, उत्तम कहिये सोइ ॥ ४५७ ॥
इन पांचानिकौ अति विनय, सो तप विनय प्रधान।
ताके भेद सुनूं भया, जाकरि पद निरवान ॥ ४५८ ॥
दरसन कहिये तत्त्वकी, श्रद्धा अति दृढ़रूप।
ज्ञान, जानिवौ तत्त्वकौ, संशय रहित अनूप ॥ ४५९ ॥
चारित थिरता तत्त्वमैं, अति गलतानी होइ।
तप इच्छाकौ रोकिवौ, तन मन दंड न सोइ ॥ ४६० ॥
ए हैं चउ आराधना, इन विन सिद्ध न कोइ।
इनकौ अति आराधिवौ, विनयरूप तप सोइ ॥ ४६१ ॥
रतनत्रयधारक जना, तप द्वादस विधि धार।
तिनकी अति सेवा करै, तन मन करि अविकार ॥ ४६२ ॥
सो उपचार कह्यौ विनय, ताके वहुत विभेद।
जिनवर जिन प्रतिमा वहुरि, जिनमंदिर हरखेद ॥ ४६३ ॥
जिनवानी जिन तीरथा, मुनि आर्या व्रत धार।
श्रावक और सु श्राविका, समदृष्टी अविकार ॥ ४६४ ॥
इनकौ विनय जु धारिवौ, गुण अनुरागी होइ।
सो तप विनय कहावई, धारै उत्तम सोइ ॥ ३६५ ॥
जैसे सेवक लोग अति, सेवैं नरपति द्वार।
तैसे चउविधि संघकों, सेवै सो तप धार ॥ ४६६ ॥
आपथकी जो उत्तमा, तिनकौ दासा होइ।
सवसों समता भावई, विनयरूप तप सोइ ॥ ४६७ ॥
व्रत विन छोटे आपतैं, जे सम्यक्त निवास।
जिनधर्मी जिनदास हैं, तिनहूंसों हित भास ॥ ४६८ ॥
धर्मराग जाके भयौ, सो इह विनय धरेय।
पंच प्रकार विनय करि, भवसागर उतरेय ॥ ४६९ ॥
अब सुनि वैयावृत्त जो, नवमो तप सुखदाय ॥

जो उपचार करै सुधी, पर दुखहर अधिकाय ॥ ४७० ॥
हरै सकल उपसर्ग जो, ज्ञानिनके तपधार ।
सुधी वृद्ध रोगीनिकौ, करै सदा उपगार ॥ ४७१ ॥
महिमादिक चाहै नहीं, निरापेक्ष व्रतधार ।
वैयावृत्त करै भया, जिनवाणी अनुसार ॥ ४७२ ॥
मुनिकों उचित मुनी करै, टहल मुनिनिकी धीर ।
मुनि सेवासम नाहिं कोउ, त्रिभुवनमैं गंभीर ॥ ४७३ ॥
श्रावक भोजन पथ्य दे, औषधि आश्रम आदि ।
करै भक्ति साधूनिकी, इह विधि है जु अनादि ॥ ४७४ ॥
जो ध्यावै स्वैरूपको, सर्व विकलपा डारि ।
सम दम भाव हि दिढ़ धरै, वैयावृत सो धारि ॥ ४७५ ॥
सम कहिये समदृष्टिता, सकल जीवकों तुल्य ।
देखैं ज्ञान विचारतैं, इह दृष्टी जु अतुल्य ॥ ४७६ ॥
दम कहिये मन इंद्रियां, दमै महा तप धारि ।
चित्त लगावै आपसों, सहै लोककी गारि ॥ ४७७ ॥
तजै लोक व्यवहारकों, धरै अलौकिक वृत्ति ।
सो चउगतिकों दे जला, पावै महा निवृत्ति ॥ ४७८ ॥
सुनों सुबुद्धी कान धरि, दसमो तप स्वाध्याय ।
सर्व तपनिमैं है सिरै, भाषैं त्रिभुवनराय ॥ ४७९ ॥
नहिं चाहै जु महंतता, करवावै नहिं सेव ।
चाह नहीं परभावकी, सेवै श्रीजिनदेव ॥ ४८० ॥
दुष्ट विकलपनिकों भया, जो नासन समरत्थ ।
सो पावै स्वाध्यायकों, फल केवल परमत्थ ॥ ४८१ ॥
तत्त्व सुनिश्चै कारनें, करै शुद्ध स्वाध्याय ।
सिद्धि करै निज ऋद्धिकों, सो आतम लवलाय ॥ ४८२ ॥
आगम अध्यातममई, जिनवरकौ सिद्धान्त ।
ताहि भक्तिकरि जो पढ़ै, सो स्वध्याय सुकान्त ॥ ४८३ ॥
केवल आतम अर्थ जो, करै सूत्र अभ्यास ।
अपनी पूजा नहिं चहै, पावै तत्त्व अध्यास ॥ ४८४ ॥
अपने कर्म कलंकके, काटनकों श्रुतपाठ ।
करै निरंतर धर्मधी, नासै कर्म जु आठ ॥ ४८५ ॥

भेद पंच स्वाध्यायके, उपाध्याय भाषेहिं।
जे धारैं ते शांतधी, आतम रस चाखेहिं ॥ ४८६ ॥
कहीं वाचना पृच्छना, अनुप्रेक्षा गुरु देव।
आमनाय फुनि धर्मकौ, उपदेशौ बहुभेव ॥ ४८७ ॥
ग्रंथ बांचवौ वाचना, पृछना पूछन रीति।
बारंबार विचारिवौ, अनुप्रेक्षा परतीति ॥ ४८८ ॥
आमनायकौ जानिवौ, जिनमारगकी वीर।
धर्म कथन करिवौ सदा, कहैं धर्मधर धीर ॥ ४८९ ॥
निसप्रेही भवभावतैं, जो स्वाध्याय करेय।
सो पावै निजज्ञानकौं, भवसागर उतरेय ॥ ४९० ॥
जो सेवै जिनसूत्रकौं, जग अभिलाप धरेय।
गर्व धरै विद्यातनौं, सो चउगति भरमेय ॥ ४९१ ॥
हम पंडित बहुश्रुत महा, जानैं सकल जु अर्थ।
हमहिं न सेवैं मूढ़धी, देखौ बड़ौ अनर्थ ॥ ४९२ ॥
इहै वासना जो धरै, सो नहिं पंडित कोइ।
आतमभावे जो रमैं, सो बुध पंडित होइ ॥ ४९३ ॥
मान बढ़ाई कारनैं, जे श्रुति सेवैं अंध।
ते नहिं पावैं तत्त्वकौं, करैं कर्मकौ बंध ॥ ४९४ ॥
जैनसूत्र मद मान हर, ताकरि गर्वित होय।
ताहि उपाय न दूसरौ, भ्रमैं जगतमैं सोय ॥ ४९५ ॥
अमृत विषरूपी भयौ, जाकौ और इलाज।
कहौ, कहा जु बताइये, भाषैं पंडितराज ॥ ४९६ ॥
जो प्रतिकूल विमूढ़धि, साधर्मिनतैं होइ।
पढ़िवौ गुनिवौ तासके, हालाहल सम जोइ ॥ ४९७ ॥
रागद्वेष करि परिणम्यूं, करै असूत्र अभ्यास।
सो पावै नहिं धर्मकौं, करै न कर्म विनास ॥ ४९८ ॥
युद्ध कथा कामादिका, कुकथा चावै मूढ़।
लोक-रिझावन कारणैं, सो पद लहै न गूढ़ ॥ ४९९ ॥
जो जानै निजरूपकूं, अशुचि देहतैं भिन्न।
सो निकसै भवकूपतैं, भटकै भाव अभिन्न ॥ ५०० ॥
जानैं निज पर भेद जो, आतमज्ञान प्रवीन।

सो स्वामी सब लोककौ, सदा सांतरसलीन ॥ ५०१ ॥
लखिवौ आतमभावकौ, सो स्वाध्याय वखानि ।
मुनि श्रावक दोऊनिकौ, यह परमारथ जानि ॥ ५०२ ॥
अब सुनि ज्ञारम तप महा, काओसग शिवदाय ।
कायाकौ उतसर्ग जो, निर्ममता ठहराय ॥ ५०३ ॥
त्याग्यौ वैठ्यौ देहकौं, नहीं देहसौं नेह ।
लग्यौ रंग निजरूपसौं, वरसै आनंद मेह ॥ ५०४ ॥
छिदौ भिदौ लेंजाहु कोउ, प्रलय होउ निजसंग ।
यह काया हमरी नहीं, हम चेतन चिद अंग ॥ ५०५ ॥
इहै भावना उर धरै, जल-मल-लिप्त शरीर ।
महारोग पीड़े तऊ, भजै न औषध धीर ॥ ५०६ ॥
व्याधितनौ न उपायकौ, शिवकौ करै उपाय ।
इंद्रीविषय न सेवई, सेवै चेतनराय ॥ ५०७ ॥
भयौ विरक्त जु भोगतैं, भोजन सज्जा आदि ।
काहूकी परवा नहीं, भेटौ ब्रह्म अनादि ॥ ५०८ ॥
निजस्वरूप चिंतवन जग्यौ, भग्यौ भोगकौ भाव ।
लग्यौ चित्त चेतनथकी, प्रकट्यौ परम प्रभाव ॥ ५०९ ॥
शत्रु मित्र सहु सम गिनै, तजै राग अरु दोष ।
वंध-मोक्षतैं रहित निज,-रूप लख्यौ गुण कोष ॥ ५१० ॥

वेसरी छंद ।

है विरकत पुरुषनिकौं भाई, इह कायोतसर्ग सुखदाई ।
अरु जे तन पोषनमैं लागा, ते पावैं नहिं भाव विरागा ॥ ५११ ॥
उपकरणादिकमैं मन राखैं, ते नहिं ज्ञान सुधारस चाखैं ।
जग विवहार तजैं नहिं जौलौं, नहिं कायोतसर्ग तप तौलौं ॥ ५१२ ॥
नाम त्यागकौ है उतसर्गा, कंपै नहिं जो है उपसर्गा ।
तब कायोतसर्ग तप पावै, निज चेतनसौं चित्त लगावै ॥ ५१३ ॥
एक दिवस द्वै दिवसा भाई, पाख मास ऊभौ हि रहाई ।
चउमासी छहमासी वर्षा, रहै जु ऊभौ चितमैं हरषा ॥ ५१४ ॥
लहि निजज्ञान भयौ अति पुष्टा, जा हिन धेरै विकलप दुष्टा ।
सो कायोतसर्ग तपधारी, पावै शिवपुर आनंदकारी ॥ ५१५ ॥
मुनिके यह तप पूरण होई, श्रावकके किंचित तप जोई ।

श्रावक हू नहिं देहसनेही, जानों आतमतत्त्व विदेही ॥ ५१६ ॥
मरणतनों भै तिनके नाहीं, ते कायोतसर्ग तपमाहीं।
अब सुनि बारम तप है ध्याना, जा परसाद लहैं निज ज्ञाना ॥ ५१७ ॥
अंतर एक महूरत काला, है एकाग्रचित्त व्रत पाला।
ताकौ नाम ध्यान है भाई, च्यारि भेद भापैं जिनराई ॥ ५१८ ॥
द्वै प्रशस्त द्वै निंद्य वखानैं, श्रुत अनुसार मुनिनने जानैं।
आरति रौद्र अशुभ ए दोऊ, धर्म सुकल अति उत्तम होऊ ॥ ५१९ ॥
आरति तीव्र कपायें होई, महा तीव्रतैं रौद्र जु सोई।
मंद कपायें धर्म सु ध्याना, जाहि न पावै जीव अज्ञाना ॥ ५२० ॥
धर्मध्यानतैं सुकल सु ध्याना, सुकलध्यानतैं केवलज्ञाना।
रहित कपाय सुकल है सूधा, जा सम और न ध्यान प्रवूधा ॥ ५२१ ॥
चारि ध्यान ए भापै भाई, तिनके सोला भेद कहाई।
ते तुम सुनहु चित्त धरि मित्रा, त्यागौ आरति रौद्र विचित्रा ॥ ५२२ ॥
आरतिके चउ भेद जु खोटे, पशुगति दायक औगुण मोटे।
इष्टवियोग अनिष्टसंजोगा, पीराचितवन होइ अजोगा ॥ ५२३ ॥
चौथौ वंधनिदान कहावै, जो जीवनिकौ भव भरमावै।
वस्तु मनोहरकौ जु वियोगा, होय तवै धारै शठ शोगा ॥ ५२४ ॥
इष्ट वियोगारत सो जानों, दुःखतरुवरकौ मूल वखानों।
दूजौ भेद अनिष्ट संजोगा, ताकौ भाव सुनौ भविलोगा ॥ ५२५ ॥
वस्तु अनिष्ट मिलै जव आई, शोच करै तव भोंदू भाई।
भववनमें भरमैं शठमति सो, पाप वांधि पावै दुरगति सो ॥ ५२६ ॥
रोगनिकरि पीड्यौ अति शठजन, आरति धारै जो अपने मन।
सो पीराचितवन है तीजौ, आरतध्यान सदा तजि दीजौ ॥ ५२७ ॥
चौथौ आरति त्यागौ भाई, वंधनिदान महा दुखदाई।
जपतपव्रत करि चाहैं भोगा, ते जगमांहि महाशठ लोगा ॥ ५२८ ॥
ए चारों आरति दुखदाई, भवकारण भापैं जिनराई।
रौद्रध्यानके चारि विभेदा, अव सुनि जे दायक अतिखेदा ॥ ५२९ ॥
हिंसाकरि आनंद जु मानै, हिंसानंदी धर्म न जानै।
मृपावाद करि धरै अनंदा, मृपानंद सो जियकौ फंदा ॥ ५३० ॥
चोरीतैं आँनंद उपजावै, सो अघ चौर्यानंद कहावै।
परिग्रह वढें होय आनंदा, सो जानों जु परिग्रहनंदा ॥ ५३१ ॥

ए चउ भेद हरैं सुख साता, दुरमतिरूप उग्र दुखदाता ।
पर विभूतिकी घटती चाहैं, अपनी संपति देखि उमाहैं ॥ ५३२ ॥
रौद्रध्यानके लक्षण एई, त्यागैं धन्नि धन्नि हैं तेई ।
आरति रुद्र ध्यान ए खोटा, इनकरि उपजे पाप जु मोटा ॥ ५३३ ॥
दुखके मूल सुखनिके खोवा, ए पापी हैं जगत डवोवा ।
चउ आरतिके पाये भाई, तिर्यगगतिकारण दुखदाई ॥ ५३४ ॥
रौद्रध्यानके चारि ए पाये, अधोलोकके दायक गाये ।
अशुभध्यान ये दोय विरूपा, लगे जीवके विकलपरूपा ॥ ५३५ ॥
नरक निगोद प्रदायक तेई, वसैं मिथ्यात धरामैं एई ।
कवहुँ कदाचित अणुव्रत ताईं, काहूके रौद्र जु उपजाई ॥ ५३६ ॥
महाव्रतलों आरतध्याना, कवहुंक छट्टे परमित थाना ।
काहूके उपजैं त्रय पाये, सप्तमठाणे सर्व नसाये ॥ ५३७ ॥
भोगारति उपजै नहिं भाई, जो उपजै तौ मुनि न कहाई ।
अव सुनि धर्मध्यानकी वातैं, जे सहु पाप पंथकों घातैं ॥ ५३८ ॥
धर्म जु स्वतै स्वभाव कहावै, पंडितजन तासों लव लावै ।
क्षमा आदि दशलक्षण धर्मा, जीवदया विनु कटइ न कर्मा ॥ ५३९ ॥
इत्यादिक जिन भाषित जेई, धारैं धर्म धीर हैं तेई ।
धर्मविषैं एकाग्र सुचित्ता, विषैभोगसे अति हि विरत्ता ॥ ५४० ॥
जे वैराग्यपरायण ज्ञानी, धर्मध्यानके होंहिं सु ध्यानी ।
जो विशुद्धभावनिमैं लागा, जिनतैं रागदोष सहु भागा ॥ ५४१ ॥
एक अवस्था अंतर वाहिर, निरविकल्प निज निधिके माहिर ।
ध्यावै आतमभाव सुधीरा, ह्वै एकाग्रमना वर वीरा ॥ ४५२ ॥
जे निजरूपा हैं समभावा, ममत वितीता जग निरदावा ।
इंद्री जीति भये जु जितिन्द्री, तिनकों ध्यानी कहैं अतिन्द्री ॥ ५४३ ॥
चितवंता चेतन गुण धामा, ध्यानहिं लीना आतमरामा ।
निरमोही निरदुंद सदा ही, चितमैं कालिम नाहिं कदा ही ॥ ५४४ ॥
जेहि अनुभवैं निज चितधनकों, रोकैं मनकों सोखैं तनकों ।
आनंदी निज ज्ञानस्वरूपा, तिनके धर्म रु ध्यान निरूपा ॥ ५४५ ॥
मैत्री मुदिता करुणा भाई, अर मध्यस्थ महा सुखदाई ।
एहि भावना भावै जोई, धर्मध्यानकौ ध्याता सोई ॥ ५४६ ॥
सर्वजीवसों मैत्रीभावा, गुणी देखि चितमैं हरषावा ।

दुखी देखि करुणा उर आनैं, लखि विपरीत राग नहिं ठानैं ॥ ५४७ ॥
द्वेष जु नाहिं धरै जु महंता, है मध्यस्थ महा गुणवंता ।
वहुरि धर्मके चारि जु पाया, ते सम्यकदृष्टिनिकों भाया ॥ ५४८ ॥
आज्ञाविचय कहावै जोई, जिनवरने भाष्यौ सोई ।
ताकी दृढ़ परतीति करै जो, संसय विभ्रम मोह हरै जो ॥ ५४९ ॥
कर्म नाशकौ उद्यम ठानैं, रागद्वेषकी परणति भानैं ।
सो अपायविचयो है दूजौ, तिरै जगतथी धारै तू जौ ॥ ५५० ॥
करै उपाय शुद्ध भावनिकौ, अर निरवाणपुरी पावनकौ ।
तीजौ नाम विपाकविचै है, भवभावनितैं भिन्न रहै हैं ॥ ५५१ ॥
शुभके उदै संपदा आवै, अशुभ उदै आपद वहु पावै ।
दोऊ जानै तुल्य सदा ही, हर्ष-विषाद धरै न कदा ही ॥ ५५२ ॥
फुनि संठाणविचय है चौथौ, सर्व जगतकों जानै थोथौ ।
तीन लोकको जानि सरूपा, जिनमारग अनुसार अनूपा ॥ ५५३ ॥
सवकौ भूपण चेतनराया, चेतनसौं नहिं दूजौ भाया ।
सर्व लोकसूं छांड़ि जु प्रीती, चेतनकी धारै परतीती ॥ ५५४ ॥
चेतन भावनिमैं लौ लावै, अपनौं रूप आपमैं ध्यावै ।
ए हैं धरमध्यानके भेदा, सुकल प्रदायक पाप उछेदा ॥ ५५५ ॥
चौथे गुणठाणैं होइ धर्मा, संपूरण गुणठाणैं परमा ।
धर्मध्यानके चउ गुणठाणा, ते देवाधिदेवने जाणा ॥ ५५६ ॥
अहमिंद्रादिक पद फल ताकौ, वरणे जाहिं न अति गुण जाकौ ।
कारण सकल ध्यानकौ एही, धर्मध्यानतैं सकल जु लेही ॥ ५५७ ॥
मुनि श्रावक दोऊके गाया, धर्मध्यान सो नहिं उपाया ।
मुनिको पूरणरूप प्रवानौं, श्रावकके कछु नून वखानौं ॥ ५५८ ॥
मुनिके अति ही निश्चलताई, श्रावकके किंचित थिरताई ।
परिग्रह चंचलताकौ मूला, जातैं धर्म न होय सथूला ॥ ५५९ ॥
पै तृष्णा छांड़ी वहुतेरी, करि मरजादा परिग्रहकेरी ।
तातैं धर्मध्यानके पात्रा, श्रावक हू जाणौं गुणगात्रा ॥ ५६० ॥
धर्मध्यानके च्यारि स्वरूपा, और हु श्रीगुरु कहे कनूपा ।
इक पिंडस्थ पदस्थ द्वितीया, रूपस्था तीजौ गनि लीया ॥ ५६१ ॥
रूपातीत चतुर्थम भेदा, दृढ़ धर्मकी पाप उछेदा ।
इनके भेद सुनौ मन लाये, जाकरि सुकलध्यानकूं पाये ॥ ५६२ ॥

पिंडमाहिं सव लोक विभूती, चितवै ज्ञानी निज अनुभूती ।
पिंडलोककौ राजा चेतन, जाहि स्पर्श सकै न अचेतन ॥ ५६३ ॥
ताकौ ध्यान धरै जो ध्यानी, सो होवै केवल निज ज्ञानी ।
वहुरि पदस्थ ध्यान बुध धारै, जिनभापित पद मंत्र विचारै ॥ ५६४ ॥
पंच परमगुरु मंत्र अनादी, ध्यावै धीर त्याग क्रोधादी ।
नमोकारके अक्षर भाई, पैंतीसौ पूरण सुखदाई ॥ ५६५ ॥
षोड़स अक्षर मंत्र महंता, पंच परमगुरु नाम कहंता ।
मंत्र षड़ाक्षर अ र ह त सि द्धा, अ सि आ उ सा पंच प्रवुद्धा ॥ ५६६ ॥
नामोकारके पैंतिस अक्षर, प्रसिद्ध छै अरु पोड़स अक्षर ।
अरहत सिध आयरि उवझाया, साहू, जपेंतें अंक गिनाया ॥ ५६७ ॥
चउ अक्षर अ र हं त जपौ जू, सिद्ध नाम उरमाहिं थपौ जू ।
द्वै अक्षर भूलौ मति भाई, सिद्ध सिद्ध इह जाप कराई ॥ ५६८ ॥
मंत्र इकाक्षर है ओंकारा, व्रह्मवीज इह प्रणव अपारा ।
पंच परमपद या अक्षरमैं, याहि ध्याय जगमैं नहिं भरमैं ॥ ५६९ ॥
शुक्लरूप अति उज्जल सजला, ध्यावै प्रणवातैं ह्वै विमला ।
सोऽहं सोऽहं अजपाजापा, हरै संतके सव संतापा ॥ ५७० ॥
इह सुर सवही प्राणीगणके, होवै श्वास उश्वास सवानिके ।
पै नहिं याकौ भेद जु पावै, तातैं भोंदू भव भरमावै ॥ ५७१ ॥
जो यह नाद सुनै वरवीरा, पावै शुक्लध्यान गुणधीरा ।
उज्जलरूप दोय ए अंका, ध्यावै सो नासै अघपंका ॥ ५७२ ॥
जिनवर सो नहिं देव जु कोई, अजपा सो नहिं जाप सु होई ।
मंत्र अनेक जिनागम गाये, ते ध्यानी पुरुपनिने ध्याये ॥ ५७३ ॥
सवमैं पंच परम गुरु नामा, पंच इष्ट विन मंत्र निकामा ।
मंत्राक्षरमाला जो ध्यावै, नाम पदस्थध्यान सो पावै ॥ ५७४ ॥
अब सुनि तीजौ भेद सु भाई, है रूपस्थ महा सुखदाई ।
कर्तृम और अकर्तृम मूरत, जिनवरकी ध्यावै शुभ सूरत ॥ ५७५ ॥
जिनवरकौ साकार स्वरूपा, तेरम गुणठाणें जु अनूपा ।
अतिसै प्रातिहार्यधर स्वामी, धरै अनंत चतुष्टय नामी ॥ ५७६ ॥
समवसरण शोभित जिनदेवा, ताहि चितारै उर धरि सेवा ।
फुनि तजिरूप रंग गुणवाना, ध्यावै चौथौ भेद सु ज्ञाना ॥ ५७७ ॥

रूपातीत समान न कोई, धर्मध्यानकौ भेद जु होई ।
ध्यावै सिद्धरूप अतिशुद्धा, निराकार निरलेप प्रबुद्धा ॥ ५७८ ॥
पुरुषाकार अरूप गुसांई, निरविकार निरदूपण सांई ।
वसु गुण आदि अनंत गुणाकर, अवगुण रहित अनंत प्रभाधर ॥ ५७९ ॥
लोकशिखर परमेसुर राजै, केवलरूप अनूप विराजै ।
जिनकों उर अंतर जे ध्यावैं, रूपातीत ध्यान ते पावैं ॥ ५८० ॥
सिद्ध समान आपकों देखैं, निश्चयनय कछु भेद न पेखैं ।
विवहारे प्रभुके हम दासा, निश्चय शुद्ध बुद्ध अविनाशा ॥ ५८१ ॥
ए च्यारूं ध्यावैं जो धर्मा, ते हि पिछानैं श्रुतकौ मर्मा ।
धर्मध्यान चहुंगतिमैं होई, सम्यक विन पावै नहिं कोई ॥ ५८२ ॥
छट्ठम सत्तम मुनिके ठाणा, पंचम ठाणें श्रावक जाणा ।
चौथे अव्रत सम्यकज्ञानी, तेऊ धर्मध्यानके ध्यानी ॥ ५८३ ॥
चौथेसों ते सप्तमताई, धर्मध्यानकौं कहैं गुसांई ।
धर्मध्यान परभाव सुज्ञानी, नासै दस प्रकृती निजध्यानी ॥ ५८४ ॥
प्रथम चौकरी तीन मिथ्याता, सुर नारक अर आयु विख्याता ।
अष्टमसों चौदमलों सुकली, सुकल समान न कोई विमली ॥ ५८५ ॥
शुकलध्यान मुनिराज हि ध्यावैं, शुकलकरी केवलपद पावैं ।
शुकल नसावै प्रकृति समस्ता, करै शुकल रागादि विध्वस्ता ॥ ५८६ ॥
जे जिन आतमसों लव लावैं, शुकल तिनोंके श्रीगुरु गावैं ।
शुकलध्यानके चारि जु पाये, ते सर्वज्ञदेवने गाये ॥ ५८७ ॥
द्वै सुकला द्वै सुकल जु पर्मा, जानैं श्रीजिनवर सहु मर्मा ।
प्रथम पृथक्तवितर्कविचारा, पृथक नाम है भिन्न प्रचारा ॥ ५८८ ॥
भिन्न भिन्न निज भाव विचारै, गुण पर्याय स्वभाव निहारै ।
नाम वितर्क सूत्रकौ होई, श्रुति अनुसार लखै निज सोई ॥ ५८९ ॥
भावथकी भावांतर भावै, पहलो शुकल नाम सो पावै ।
दूजौ है एकत्ववितर्का,—अवीचार अगणित दुति अर्का ॥ ५९० ॥
भयौ एकतामैं लवलीना, एकी भाव प्रकट जिन कीना ।
श्रुत अनुसार भयौ अविचारी, भेदभाव परणति सब टारी ॥ ५९१ ॥
तीजौ सूक्षम किरियाधारी, सूक्षम जोग करै अविकारी ।
चौथौ जोगरहित निहकिरिया, जाहि ध्याय साधू भव तिरिया ॥ ५९२ ॥

अष्टमठाणें पहलो पायो, बारमठाणें दूजौ गायो ।
तीजौ तेरमठाणें जानों, चौथौ चौदमठाणें मानों ॥ ५९३ ॥
इनके भेद सुनों धरि भावा, जिनकरि नासै सकल विभावा ।
होंहिं पवित्रभाव अधिकाई, जे अब तक हूए नहिं भाई ॥ ५९४ ॥
भाव अनंत ज्ञान सुख आदी, तिनकौ धारक वस्तु अनादी ।
लिये अनंता शक्ति महंती, धरै विभूति अनंतानंती ॥ ५९५ ॥
अपनी आप माहिं अनुभूती, अति अनंतता अतुल प्रभूती ।
अपने भाव तेहि निज अर्था, और सबै रागादि अनर्था ॥ ५९६ ॥
अपनो अर्थ आपमैं जानै, आतम-सत्ता आप पिछानै ।
इक गुणतैं दूजौ गुण जावै, ज्ञानथकी आनंद बढ़ावै ॥ ५९७ ॥
गुण अनंतमैं लीलाधारी, सो पृथक्तवीतर्कविचारी ।
अर्थथकी अर्थांतर जावै, निज गुण सत्ता माहिं रहावै ॥ ५९८ ॥
योगथकी योगांतर गमना, राग दोष मोहादिक वमना ।
शब्दथकी शब्दांतर सोई, ध्यावै शब्दरहित है सोई ॥ ५९९ ॥
व्यंजन नाम शुद्ध परजाया, जाकौ नाश न कबहुं बताया ।
वस्तुशक्ति गुणशक्ति अनंती, तेई पर्यय जानि महंती ॥ ६०० ॥
व्यंजनतैं व्यंजन परि आवै, निजस्वभाव तजि कितहु न जावै ।
श्रुति अनुसार लखै निजरूपा, चिनमूरति चैतन्य स्वरूपा ॥ ६०१ ॥
जैनसूत्रमैं भाव श्रुती जो, प्रगटै अनुभव ज्ञानमती जो ।
सो पृथक्तवीतर्कविचारा, ध्यावै साधू ब्रह्म विहारा ॥ ६०२ ॥

दोहा ।

जानि पृथक्त अनंतता, नाम वितर्क सिधंत ।
है विचार अविचार निज, इह जानों विरतंत ॥ ६०३ ॥

वेसरी छंद ।

लेश्या शुक्ल भाव अति शुद्धा, मन वच काय सबै जु निरुद्धा ।
यामैं एक और है भेदा, सो तुम धारहु टारहु खेदा ॥ ६०४ ॥
उपसमश्रेणी क्षपक जु श्रेणी, तिनमैं क्षायक मुक्ति निसैनी ।
पहलो शुक्ल जु दोऊ धारै, दूजौ क्षपकविना न निहारै ॥ ६०५ ॥
उपशम वारै ग्यारम ठाणा, परसपरैं उत्तरै गुणठाणा ।
जो कदाचि भवहूतैं जाई, तौ अहमिंद्रलोककों जाई ॥ ६०६ ॥

नर ह्वै करि धारै फिर धर्मा, चढ़ै क्षपकश्रेणी जु अमर्मा।
क्षपक श्रेणिधर धीर मुनिंद्रा, होवै केवलरूप जिनिंद्रा॥ ६०७॥
बारम ठाणें दूजौ सुकला, प्रकटै जा सम और न विमला।
द्वैमैं क्षपकश्रेणि अधिकाई, कही जाय नहिं क्षपक दढ़ाई॥ ६०८॥
अष्टम ठाणें प्रगटै श्रेणी, सप्तमलों श्रेणी नहिं लेणी।
क्षपक श्रेणिधर सुकल निवासा, प्रकृति छतीस नवें गुंण नासा॥ ६०९॥
दशमें सूक्षम लोभ छिपावै, दशमाथी बारमकों जावै।
ग्यारमकौ पैंडौ नहिं लेवै, दूजौ सुकलध्यान सुख वेवै।॥ ६१०॥
साधकताकी हद्द बताई, बारमठाण महा सुखदाई।
जहां षोडसा प्रकृति खिपावै, शुद्ध एकतामैं लव लावै॥ ६११॥

सोरठा।

मारयौ मोह पिशाच, पहले पायेश्रीसे मुनी।
तजौ जगतकौ नाच, पायो ध्यायौ दूसरौ॥ ६१२॥
है एकत्ववितर्क, अवीचार दूजौ महा।
कोटि अनंता अर्क, जाकौ सो तेज न लहै। ६१३॥
ज्ञानवरणीकर्म, दर्शनावरणी हू हते।
रह्यौ नाहिं कछु मर्म, अंतराय अंत जु भयौ॥ ६१४॥
निरविकल्प रस मांहि, लीन भयौ मुनिराज सो।
जहां भेद कछु नाहिं, निजगुण पर्ययभावतैं॥ ६१५॥
द्रव्य सूत्र परताप, भावसूत्र दरस्यौ तहां।
गयौ सकल संताप, पाप पुन्नि दोऊ मिटे॥ ६१६॥
एक भावमैं भाव, लखै अनंतानंत ही।
भागे सकल विभाव, प्रगटे ज्ञानादिक गुणा॥ ६१७॥
अपनौ रूप निहार, केवलके सन्मुख भयौ।
कर्मगये सब हारि, लरि न सकै जासें न कौ॥ ६१८॥
एकहि अर्थ लीन, एकहि शब्द माहिं जो।
एकहि योग प्रवीन, एकहि व्यंजन धारियौ॥ ६१९॥
एकत्व नाम अभेद, नाम वितर्क सिधंतकौ।
निरविचार निरवेद, दूजौ पायो इह कह्यौ॥ ६२०॥

---

१ गुणस्थान में। २ सूर्य।

जहां विचार न कोय, भागे विकलप जाल सहु ।
क्षीणकषायी होइ, ध्यानारूढ़ भयौ मुनी ॥ ६२१ ॥
दूजौ पायो येह, गायौ गुरु आज्ञाथकी ।
करै कर्मकौ छेह, अब सुनि तीजौ शुकल तू ॥ ६२२ ॥
सूक्षमकिरिया नाम, प्रगटै तेरम ठाण जो ।
जो निज केवल धाम, श्रुतज्ञानीके है परे ॥ ६२३ ॥
लोकालोक समस्त, भासै केवलबोधमैं ।
केवल सो न प्रशस्त, सर्व लोकमैं और कोउ ॥ ६२४ ॥
जे अघातिया नाम, गोत्र वेदनी आयु हैं ।
तिनकों नाशै राम, परम शुकल केवलथकी ॥ ६२५ ॥
पच्यासी प्रकृती जु, जिनके ठाणें तेरमें ।
जरी जेवरी सी जु, तिनकूं नाशै सो प्रभू ॥ ६२६ ॥
सूक्षमक्रियाप्रवृत्ति, ध्यावै तीजौ शुकल सो ।
बादरजोग निवृत्ति, कायजोग सूक्षम रहै ॥ ६२७ ॥
करैं जु सूक्षम जोग, तेरम गुणके छेहु रै ।
पावै तबै अजोग, चौदम गुणठाणें प्रभू ॥ ६२८ ॥
तहाँ सु चौथौ ध्यान, है जु समुच्छिन्नक्रिया ।
ताकरि श्रीभगवान, वेहत्तरि तेरा हतै ॥ ६२९ ॥
गई प्रकृति समस्त, सौ ऊपरि अड़ताल जे ।
भये भाव जड़ अस्त, चेतन गुण प्रगटे सवै ॥ ६३० ॥
करनी सकल उठाय, कृत्यकृत्य हूवौ प्रभू ।
सो चौथौ शिवदाय, परम शुकल जानों भया ॥ ६३१ ॥
पंच लघुक्षर काल, चौदम ठाणें थिति करै ।
रहित जगत जंजाल, जगत शिखर राजै सदा ॥ ६३२ ॥
बहुरि न आवै सोय, लोकशिखामणि जगततैं ।
त्रिभुवनकौ प्रभु होय, निराकार निर्मल महा ॥ ६३३ ॥
सबकी करनी सोइ, जानै अंतरगत प्रभू ।
सर्वव्यापको होइ, साखीभूत अव्यापको ॥ ६३४ ॥
ध्यान समान न कोइ, ध्यान ज्ञानकौ मित्र है ।
सो निज ध्यानी होइ, ताकों मेरी वंदना ॥ ६३५ ॥

धर्ममूल ए दोय, ध्यान प्रसंशा योग्य हैं ।
आरति रुद्र न होय, सो उपाय करि जीव तू ॥ ६३६ ॥
धर्म अगनिकौ दीप, शुकल रतनकौ दीप है ।
निज गुण आप समीप, तिनकों ध्यावौ लोक तजि ॥ ६३७ ॥
ध्यान तनूं विस्तार, कहि न सकै गणधर मुनी ।
कैसे पावैं पार, हम से अलपमती भया ॥ ६३८ ॥
तप जप ध्यान निमित्त, ध्यान समान न दूसरौ ।
ध्यान धरौ निज चित्त, जाकरि भवसागर तिरौ ॥ ६३९ ॥
तपकूं हमरी ढोक, जामैं ध्यान जु पाइये ।
मेटै जगकौ शोक, करै कर्मकी निर्जरा ॥ ६४० ॥
अनशन आदि पवित्र, ध्यान लगैं तप गाइया ।
बारा भेद विचित्र, सुनों अबैं समभाव जो ॥ ६४१ ॥

इति द्वादश तप निरूपणम् ।

समभाव वर्णन ।

छप्पय छंद ।

राग दोष अर मोह, एहि रोकै समभावैं ।
जिनकरि जगके जीव, नाहिं शिवथानक पावैं ॥
तेरा प्रकृति जु राग, दोपकी बारा जानों ।
मोहतनी हैं तीन, ए अट्ठाईस वखानों ॥
एक मोहके भेद दो, दर्शन चारित्र मोह ए ।
दर्शनमोह मिथ्यात भव, जहां न सम्यक सोहए ॥ ६४२ ॥
राग द्वेष ए दोय, जानि चारित्र जु मोहा ।
इनकरि तप नहीं व्रत्त, एह पापी पर द्रोहा ॥
इनकी प्रकृति पचीस, तेहि तजि आतमरामा ।
छाँड़ौ तीन मिथ्यात, यही दोषनिके धामा ॥
स्वपर विवेक विचार विना, धर्म अधर्म न जो लखै ।
सो मिथ्यात अनादि प्रथम, ताहि त्यागि निजरस चखै ॥ ६४३ ॥

दूजौ मिश्र मिथ्यात, होय तीजे गुण ठाणें ।
जहां न एक स्वभाव, शुद्ध आतम नहिं जाणें ॥
सत्य असत्य प्रतीति, होय दुविधामय भावें ।
ताहि त्यागि गुणखानि, शुद्ध निजभाव लखावें ॥
तीजे समय प्रकृति मिथ्यात, समकितमैं उद्वेग कर (?) ।
भलौ दोयतैं तीसरौ, तौपन चंचलभाव धर ॥ ६४४ ॥

दोहा ।

कहे तीन मिथ्यात ए, दरशन मोह विकार ।
अब चारित्र जु मोहकौ, भेद सुनौ निरधार ॥ ६४५ ॥
कही कषाय जु षोडसी, नो-कषाय नव भेलि ।
ए पच्चीसों जानिये, राग दोषकी केलि ॥ ६४६ ॥
चउ माया चउ लोभ अर, हासि रती त्रय वेद ।
ए तेरा हैं रागकी, देंहि प्रकृति अति खेद ॥ ६४७ ॥
च्यारि क्रोध अर मान चउ, अरति शोक भय जानि ।
दुरगंधा ये द्वादशा, प्रकृति दोपकी मानि ॥ ६४८ ॥
लगीं अनादि जु कालकी, भरमावैं जु अनंत ।
विनसैं भव्यनिके भया, है न अभविके अंत ॥ ६४९ ॥
रोकै सम्यकदृष्टिकों, कोकै सकल विभाव ।
ढोकै मिथ्यादृष्टिकों, नहिं जामैं समभाव ॥ ६५० ॥
अनंतानुबंधी इहै, प्रथम चौकरी जानि ।
त्यागै तीन मिथ्यात जुत, सो समदृष्टि मानि ॥ ६५१ ॥

छप्पय छंद ।

समकित विनु नहिं होत, शांतिरूपी समभावा ॥
चौथे गुणठाणें जु कछुक, समभाव लखावा ।
द्वितिय चौकरी बहुरि, सोहु अव्रतमय भाई ।
नाम अप्रत्याख्यान, जा छतैं व्रत्त न पाई ॥
दोय चौकरी तीन मिथ्या, त्याग होय श्रावकवती ।
प्रगटै गुणठाण जु पंचमैं, पापनिकी परणति हती ॥ ६५२ ॥
चढ़ै तहां समभाव, होय रागादिक नूना ।
अव्रततैं गनि ऊंच, साधव्रत्तनितैं ऊना ॥

तृतिय चौकरी जांनि, नाम है प्रत्याखानी ।
रोकै मुनिव्रत एह, ठाण छट्टो शुभध्यानी ॥
तीन चौकरी तीन मिथ्या, छांड़ि साधु है संजमी ।
वृद्धि होय समभावई, मन इंद्री सब ही दमी ॥ ६५३ ॥

दोहा ।

चौथी संजुलना सही, रोकै केवलज्ञान ।
जाके तीव्र उदैथकी, होय न निश्चल ध्यान ॥ ६५४ ॥

छप्पय छंद ।

चौथी चौकरि टरै, नाम संजुलन जवै ही ।
नो-कषाय नव भेद, नाशि जावै जु सवैं ही ॥
यथाख्यात चारित्र, ऊपजै बारम ठाणें ।
पूरण तव समभाव, होय जिनसूत्र प्रमाणें ॥
क्रोध मान छल लोभ च्या-रूं एक एक चउ भेद ए ।
है षोडस नव जुक्त ये, मोह प्रकृति अति खेद ए ॥ ६५५ ॥

दोहा ।

अनंतानुबंधी प्रथम, द्वितिय अप्रत्याख्यान ।
तीजी प्रत्याख्यान है, चउथीं है सँजुलान ॥ ६५६ ॥
कही चौकरी चारि ए, चारों गतिकी मूल ।
च्यारितनी सोला भई, भेद मोक्ष प्रतिकूल ॥ ६५७ ॥
हास्य अरति रति शोक भय, दुरगंधा दुखदाय ।
नो-कषाय ए नव कही, पंचवीस समुदाय ॥ ६५८ ॥
राग दोषकी प्रकृति ए, कही पचीस प्रमान ।
तीन मिथ्यात समेत ए, अट्ठाईस वखान ॥ ६५९ ॥
जायं जवै सव ही भया, तव पूरण समभाव ।
यथाख्यातचारित्र है, क्षीणकषाय प्रभाव ॥ ६६० ॥
मुनिके जातैं अलप है, छटे सातमें ठाण ।
पंद्रा प्रकृति अभावतैं, ता माफिक सम जाण ॥ ६६१ ॥
श्रावकके यातैं अलप, पंचम ठाणें जाण ।
ग्यारा प्रकृति गयां थकीं, ता माफिक परवाण ॥ ६६२ ॥

श्रावकके अणुव्रत्त है, इह जानों निरधार।
मुनिके पंच महाव्रता, समिति गुपति अविकार ॥ ६६३ ॥
श्रावकके चौथे अलप, चौथौ अव्रत ठाण।
तहां सात प्रकृती गई, ता माफिक ही जाण ॥ ६६४ ॥
गुणठाणा समभावके, है ग्यारा तहकीक।
चौथे सूं ले चौदमा,-तक नहिं वात अलीक ॥ ६६५ ॥
चौथे जघनि जु जानिये, मध्य पंचमे ठाण।
छट्टासूं दशमा लगैं, वढ़तो वढ़तो जाण ॥ ६६६ ॥
वारम तेरम चौदवें, है पूरण समभाव।
जिन सासनको सार इह, भवसागरकी नाव ॥ ६६७ ॥

छप्पय।

छद्मसों ले.........................जुगल मुनीके जाणा।
तिनकौ सुनहुं विचार, जैनशासन परवाणा ॥
छट्टम सप्तम ठाण, प्रकृति पंद्रा जव त्यागी।
तीन मिथ्यात विख्यात, चौकरी इक तीन अभागी ॥
तव उपजै समभावई, श्रावकके अधिकौ महा।
पै तथापि तेरा रहीं, तातैं पूरण नहिं कहा ॥ ६६८ ॥
रही चौकरी एक, और गनि नो-कषाय नव।
तिनकौ नाश करेय, सो न पावै कोई भव ॥
छट्टे तीव्र जु उदै, सातवें मंद जु इनकौ।
इनमैं षट हास्यादि, आठवें अंत जु तिनकौ ॥
क्रोध मान अर कपट नो, वेद तीन ही नाहिं यां।
चौथे चौकरि लोभ सू,-क्षम दश ठाण विनाशिया ॥ ६६९ ॥

छंद चाल।

एकादशमा द्वादशमा, फुनि तेरम अर चौदशमा।
समभावतने गुणथाना, ए च्यारि कहे भगवाना ॥ ६७० ॥
ग्यारम है पतन स्वभावा, डिगि जाय तहां समभावा।
वारहमैं परम पुनीता, जसम नहिं कोइ अजीता ॥ ६७१ ॥
तेरम चौदम गुणठाणा, परमातमरूप वखाना।
समभाव तहां है पूरा, कीये रागादिक चूरा ॥ ६७२ ॥

नहिं यथाख्यात सौ कोई, समभाव सरूपी सोई।
इह सम उतपत्ति वताई, रागादिक नाश कराई ॥ ६७३ ॥
अव सुनि सम लक्खण संता, जा विधि भाषैं भगवंता।
जीवौ मरिवौ सम जानै, अरि मित्र समान वखानै ॥ ६७४ ॥
सुख दुख अर पुण्य जु पापा, जानै सम ज्ञान-प्रतापा।
सव जीव समान विचारै, अपने से सर्व निहारै। ६७५ ॥
चिंतामणि पाहन तुल्या, जिनके समभाव अतुल्या।
सुरगति अर नर्क समाना, सव राव रंक सम जाना ॥ ६७६ ॥
जिनके घरमैं नहिं ममता, उपजी सुखसागर समता।
वन नगर समान पिछानैं, सेवक साहिव सम जानैं ॥ ६७७ ॥
समसान महल सम भावैं, जिनके न विषमता आवै।
है लाभ अलाभ समाना, अपमान मान सम जाना ॥ ६७८ ॥
गिरि ग्रीष्म समान जिनूंके, सुर कीट समान तिनूंके।
सुरतरु विपतरु सम दोऊ, चंदन कर्दम सम होऊ ॥ ६७९ ॥
गुरु शिष्य न भेद विचारैं, समता परिपूरण धारैं।
जानैं सम सिंह सियाला, जिनके समभाव विशाला ॥ ६८० ॥
संपति विपता द्वै सरिखी, लघुता गुरुता सम परखी।
कंचन लोहा सम जाके, रंच न है विभ्रम ताके ॥ ६८१ ॥
रति अरति हानि अर वृद्धी, रज सम जानैं सव ऋद्धी।
खर[1] कुंजर[2] तुल्य पिछानैं, अहि[3] फूलमाल सम जानैं ॥ ६८२ ॥
नारी नागिन सम देखैं, गृह कारागृह सम पेखैं।
सम जानैं इष्ट अनिष्टा, सम मानैं अवलि वलिष्ठा ॥ ६८३ ॥
जे भोग रोग सम जानैं, सव हर्ष रोग सम मानैं।
रस नीरस रंग कुरंगा, सुसवद कुसवद सम अंगा ॥ ६८४ ॥
शीतल अर उष्ण समाना, दुरगंध सुगंध प्रमाना।
नहिं रूप कुरूप जु भेदा, जिनके समभाव निवेदा ॥ ६८५ ॥
चक्री अर निरधन दोई, कछु भेदभाव नहिं होई।
चक्राणी अर इंद्राणी, अति दीन नारि सम जाणी ॥ ६८६ ॥
इंदर नागेन्द्र नरेन्द्रा, फुनि सर्वोत्तम अहमिंद्रा।
सूक्षम जीवनि सम देखैं, कछु भेद भाव नहिं पेखैं ॥ ६८७ ॥

१ गधा। २ हाथी। ३ सर्प।

थुति निंदा तुल्य गिनैं जो, पापनिके पुंज हनैं जो।
कृमि कुंथ कृष्ण सम तुल्या, पायौ समभाव अतुल्या॥ ६८८॥
सेवा उपसर्ग समाना, वैरी बांधव सम माना।
जिनके द्विज शूद्र सरीखा, सीखी सद्‌गुरुकी सीखा॥ ६८९॥
वंदै निंदै सो सरिखौं, समभावन तन जिन परिखौं।
समतारस पूरण प्रगट्यौ, मिथ्यात महाभ्रम विघट्यौ॥ ६९०॥
तिनकी लखि शांत सुमुद्रा, रौद्र जु त्यागै अति रुद्रा।
चीता मृगवर्ग न मारैं, अति प्रीति परस्पर धारैं॥ ६९१॥
गरुड़ा नहिं नाग[1] विनासैं, नागा नहिं दादुर[2] नासैं।
उंदर मारैं न विडाला, पंखिनसौं प्रीति विशाला॥ ६९२॥
तिर विद्याधर नर कोई, सुर असुर न बाधक होई।
काहूकूं राव न दंडै, दुरजन दुरजनता छंडै॥ ६९३॥
काहूके चोर न पैसे, चोरी होवै कहु कैसे।
लखि समता धारक मुनिकौं, त्यागै पापी पापनिकौं॥ ६९४॥
डाकिनके वीर न चालै, हिंसक हिंसा सब टालै।
भूता नहिं लागन पावैं, राक्षस व्यंतर भजि जावैं॥ ६९५॥
मंतर न चलैं जु किसीके, ये हैं परभाव रिसीके।
कोहू काहू नहिं मारैं, सब जीव मित्रता धारैं॥ ६९६॥
हरिनी मृगपतिके छौवा[3], देखै निज सुत समभावा।
वाघनिकूं गाय चुखावै, मार्जारी हंस खिलावै॥ ६९७॥
स्याली अर मींढ़ा इकठे, नाहर अर बकरा बइठे।
काहूकौ जोर न चालै, समभाव दुखनिकौं टालै॥ ६९८॥
इह ब्रह्म सुविद्यारूपा, निरदोष विराग अनूपा।
अति शांतिभावकौ मूला, समसौं नहिं शिव अनुकूला॥ ६९९॥
नहिं समता पर छै कोऊ, सब श्रुतिकौ सार जु होऊ।
जो ममताकौ परित्यागा, सो कहिये सम बड़भागा॥ ७००॥
मन इंद्रीकौ जु निरोधा, सो दम कहिये प्रतिबोधा।
समतैं क्रोधादि नशाया, दमतैं भोगादि भगाया॥ ७०१॥
सम दम निरवाण प्रदाया, काहे धारो नहिं भाया।
सब जैनसूत्र समरूपा, समरूप जिनेश्वर भूपा॥ ७०२॥

---

[1] सर्प। [2] मेंढका। [3] सिंहकाबच्चा।

समताधर चउविधि संघा, समभाव भवोदधि लंघा ।
पूरण सम प्रभुके पइये, तिनतैं लघु मुनिके लइये ॥ ७०३ ॥
तिनतैं श्रावकके नूना, सम करै कर्मगण चूना ।
श्रावकतैं चौथे ठाणें, कछुइक घटतो परमाणें ॥ ७०४ ॥
सम्यक विन समता नाहीं, सम नाहिं मिथ्यामत माहीं ।
ममता है मोह सरूपा, समता है ज्ञान मरूपा ॥ ७०५ ॥
सब छांडि विषमता भाई, ध्यावौ समता शिवदाई ।
समकी महिमा मुनि गावै, समको सुरपति शिर नावै ॥ ७०६ ॥
समसौं नहिं दूजौ जगमैं, इह सम केवल जिनमगमैं ।
सम अर्थ सकल तप वृत्ता, सम है मारग निरवृत्ता ॥ ७०७ ॥
जो प्राणी समरस भावै, सो जनम मरण नहिं पावै ।
यम नियमादिक जे जोगा, सबमैं समभाव अलोगा ॥ ७०८ ॥
समकौ जस कहत न आवै, जो सहस जीभ करि गावै ।
अनुभव अमृतरस चाखै, सोई समता दिढ़ राखै ॥ ७०९ ॥

इति समभाव निरूपण ।

सम्यक वर्णन ।

सवैया ३१ सा ।

अष्ट मूलगुण कहे वारह वरत कहे, कहे तप द्वादश जु समभाव साधका ।
सम सो न कोऊ और सर्वकौ जु सिरमोर, याही करि पावै ठौर आतम आराधका ।
विषमता त्यागि अर समताके पंथ लागि, छाँड़ौ सब पाप जेहिं धर्मके विराधका ।
ग्यारै पड़िमा जु भेद दोषनिकौ करै छेद, धारै नर धीर धरि सकै नाहिं वाधका ७११

दोहा ।

पड़िमा नाम जु तुल्यकौ, मुनिमारगकी तुल्य ।
मारग श्रावककौ महा, भाषैं देव अतुल्य ॥ ७१२ ॥
वहुरि प्रतिज्ञाकौं कहैं, पड़िमा श्रीभगवान् ।
होंहिं प्रतिज्ञा धारका, श्रावक समतावान ॥ ७१३ ॥
मुनिके लहुरे वीर हैं, श्रावक पड़िमाधार ।
मुनि-श्रावक है धर्मकौ, मूल जु समकित सार ॥ ७१४ ॥

सम्यक चउ गतिके लहैं, कहै कहालौं कोइ।
पै तथापि वरणन करूं, संवेगादिक सोइ॥ ७१५॥
सम्यकके गुण अतुल हैं, श्रावक तिर नर होय।
मुनिव्रत मिनख हि धारहीं, द्विज छत वाणिज होय॥ ७१६॥
संवेगो निरवेद अर, निंदन गरुहा जानि।
समता भक्ति दयालुता, वात्सल्यादिक मानि॥ ७१७॥
धर्म जिनेसुर कथित जो, जीवदयामय सार।
तासौं अधिक सनेह है, सो संवेग विचार॥ ७१८॥
भव तन भोग समस्ततें, विरकत भाव अखेद।
सो दूजौ निरवेद गुण, करै कर्मकौ छेद॥ ७१९॥
तीजौ निंदन गुण कह्यौ, निजकौं निंदै जोइ।
मनमैं पछितावौ करै, भव भरमणकौ सोइ॥ ७२०॥
चौथौ गरहा गुन महा, गुरुपै भापै वीर।
अपने औगुन समकिती, नही छिपावै धीर॥ ७२१॥
पंचम उपशम गुण महा, उपशमता अधिकाय।
प्रान हरै ताहूथकी, वैर न चित्त धराय॥ ७२२॥
छट्टौ गुण भक्ती धरै, सम्यकदृष्टी संत।
पंच परमपदकी महा, धारै सेव महंत॥ ७२३॥
सप्तम गुण वात्सल्य जो, जिन धर्मिनसौं राग।
अष्टम अनुकंपा गुणो, जीवदया व्रत लाग॥ ७२४॥

उक्तंच गाथा।

संवेऊ णिव्वेऊ, णिंदण गरुहा य उवसमो भत्ती।
वच्छल्लं अनुकंपा, अट्ठगुणा हुंति सम्मत्ते॥

चौपई।

भव्यजीव चहुंगतिके माहीं, पावैं समकित संसय नाहीं।
पंचेन्द्री सेनी विनु कोय, और न सम्यकदृष्टी होय॥ ७२५॥
जव संसार अलप ही रहै, तव सम्यक दरशनकौं गहै।
प्रथम चौकरी तीन मिथ्यात, ए सातौं प्रकृती विख्यात॥ ७२६॥
इनके उपशमतैं जो होय, उपशम नाम कहावै सोय।
इनके क्षयतैं क्षायिक नाम, पावै मनुप महागुण धाम॥ ७२७॥

क्षायिक मनुष विना नहिं लहै, क्षायिक तुरत हि भववन दहै।
केवल आदि मूल इह होय, क्षायिक सो नहिं सम्यक कोय ॥ ७२८ ॥
अब सुनि क्षय उपशमकौ रूप, तीन प्रकार कह्यौ जिनभूप।
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, तीन मिथ्यात उपशमैं तहां ॥ ७२९ ॥
पहलौ क्षय उपशम सो जानि, जिनवानी उरमैं परवानि।
प्रथम चौकरी पहल मिथ्यात, ए पांचौं क्षय हैं दुखदात ॥ ७३० ॥
द्वै मिथ्यात उपशमैं जहां, दूजौ क्षय उपशम है तहां।
प्रथम चौकरी द्वै मिथ्यात, ए पट क्षय होवैं जड़तात ॥ ७३१ ॥
तृतिय मिथ्यात उपशमैं भया, तीजौ क्षय उपशम सो लया।
वेदकसम्यक च्यारि प्रकार, ताके भेद सुनों निरधार ॥ ७३२ ॥
प्रथम चौकरी क्षय है जहां, दोय मिथ्यात उपशमैं तहां।
तृतिय मिथ्यात उदै जब होय, पहलौ वेदक जानों सोय ॥ ७३३ ॥
प्रथम चौकरी प्रथम मिथ्यात, ए पांचौं क्षय हौंय विख्यात।
द्वितिय मिथ्यात उपशमै जहां, उदै होय तीजेकौ तहां ॥ ७३४ ॥
भेद दूसरौ वेदकतणों, जिनमारग अनुसारें भणों।
प्रथम चौकरी दोय मिथ्यात, ए षट प्रकृति हौंय जब घात ॥ ७३५ ॥
उदै तीसरौ मिथ्या होय, तीजौ वेदक कहिये सोय।
प्रथम चौकरी मिथ्या दोय, इन छहुँकौ उपशम जब होय ॥ ७३६ ॥
उदै होय तीजौ मिथ्यात, सो चौथौ वेदक विख्यात।
ए नव भेद सु सम्यक कहे, निकट भव्य जीवनिनें गहे ॥ ७३७ ॥

दोहा।

खै उपशम वरतै त्रिविध, वेदक च्यारि प्रकार।
क्षायिक उपशम भेलि करि, नवधा समकित धार ॥ ७३८ ॥
नवमे क्षायिक सारिखौ, समकित होय न और।
अविनाशी आनंदमय, सो सबकौ सिरमौर ॥ ७३९ ॥
पहली उपशम ऊपजै, पहली और न कोय।
उपशमके परसादतैं, पाछै क्षायिक होय ॥ ७४० ॥
क्षायिक विनु नहिं कर्मक्षय, इह निश्चै परवानि।
क्षायक दायक सर्व ए, सम्यकदर्शन मानि ॥ ७४१ ॥
उपशमादि सम्यक सवै, आदि अंत जुत जानि।
क्षायिककौ नहिं अंत है, सादि अनंत वखानि ॥ ७४२ ॥

सम्यकदृष्टी सर्व ही, जिनमारगके दास ।
देव धर्म गुरु तत्त्वकी, श्रद्धा अविचल भास ॥ ७४३ ॥
अनेकांत सरधा लिया, शांतभाव धर धीर ।
सप्तभंग वानी रुचै, जिनवरकी गंभीर ॥ ७४४ ॥
जीव अजीवादिक सबै, जिन आज्ञा परवान ।
जानै संसै रहित जो, धारै दृढ़ सरधान ॥ ७४५ ॥
सप्त तत्त्व षट द्रव्य अर, नव पदार्थ परतक्ष ।
अस्तिकाय हैं पंच ही, तिनकौ धारै पक्ष ॥ ७४६ ॥
इष्ट पंच परमेष्टिकौ, और इष्ट नहिं कोय ।
मिष्ट वचन बोलै सदा, मनमैं कपट न होय ॥ ७४७ ॥
तजै अष्ट ही गर्व जो, है निगर्व गुणवान ।
पुत्र-कलत्रादिक उपरि, ममता नाहिं बखान ॥ ७४८ ॥
तृण सम मानै देहकों, निजसम जानै जीव ।
धरै महा उपशांतता, त्यागै भाव अजीव ॥ ७४९ ॥
सेवै विषयनिकों तऊ, नहीं विषयसूं राग ।
वरतै गृह आरंभमैं, धारि भाव वैराग ॥ ७५० ॥
कवै दशा वह होयगी, धरियेगो मुनिवृत्त ।
अथवा श्रावक वृत्त ही, करियेगो जु प्रवृत्त ॥ ७५१ ॥
धृग धृग अव्रतभावकों, या सम और न पाप ।
क्षणभंगुर विषया सबै, देहिं कुगति दुख-ताप ॥ ७५२ ॥
इहै भावना भावतो, भोगनितैं जु उदास ।
सो सम्यकदरसी भया, पावै तत्त्वविलास ॥ ७५३ ॥
सप्तम गुणके ग्रहणकों, रागी होय अपार ।
साधुनिकी सेवा करै, सो सम्यकगुण धार ॥ ७५४ ॥
साधर्मिनसौं नेह अति, नहिं कुटुंबसौं नेह ।
मन नहिं मोह-विलासमैं, गिनै न अपनी देह ॥ ७५५ ॥
जीव अनादि जु कालकौ, वसै देहमें एह ।
बंध्यौ कर्म प्रपंचसौं, भवमैं भ्रमौ अच्छेह ॥ ७५६ ॥
त्याग जोग जगजाल सब, लेन जोग निजभाव
इह जाके निश्चै भयौ, सो सम्यक परभाव ॥ ७५७ ॥

भिन्न भिन्न जानै सुधी, जड़-चेतनकौ रूप ।
त्यागै देह सनेह जो, भावै भाव अनूप ॥ ७५८ ॥
क्षीर-नीरकी भांति ये, मिलैं जीव अर कर्म ।
नाहिं तथापि मिलैं कदै, भिन्न भिन्न हैं धर्म ॥ ७५९ ॥
यथा सर्पकी कंचुकी, यथा खड़गकौ म्यान ।
तथा लखै बुध देहकों, पायौ आतमज्ञान ॥ ७६० ॥
दोष समस्त वितीत जो, वीतराग भगवान ।
ता विन दूजौ देव नहिं, इह धारै सरधान ॥ ७६१ ॥
सर्व जीवकी जो दया, ताहि सरदहै धर्म ।
गुरुमानै निरग्रंथकों, जाके रंच न भर्म ॥ ७६२ ॥
जपै देव अरहंतकों दास भाव धरि धीर ।
रागी दोषी देवकी, सेव तजै वरवीर ॥ ७६३ ॥
रागी दोषी देवकों, जो मानै मतिहीन ।
धर्म गिनै हिंसा विषैं, सो मिथ्या मतलीन ॥ ७६४ ॥
परिग्रह धारककों गुरू, जो जानै जग माहिं ।
सो मिथ्यादृष्टी महा, यामैं संसै नाहिं ॥ ७६५ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्मकों, जो ध्यावै हिय अंध ।
सो पावै दुरगति दुखा, करै पापकौ बंध ॥ ७६६ ॥
सम्यकदृष्टी चिंतवै, या संसार मंझार ।
सुखकौ लेश न पाइये, दीखै दुःख अपार ॥ ७६७ ॥
लक्ष्मीदाता और नहिं, जीवनिकों जग माहिं ।
लक्ष्मी दासी धर्मकी, पापथकी विनसाहि ॥ ७६८ ॥
जैसौ उदय जु आवही, पूरव बांध्यौ कर्म ।
तैसौ भुगतैं जीव सव, यामैं होय न भर्म ॥ ७६९ ॥
पुण्य भलाई कार है, पाप बुराई कार ।
सुखदुखदाता होय यह, और न कोइ विचार ॥ ७७० ॥
निमतमात्र पर जीव हैं, इह निहचै निरधार ।
अपने कीये आप ही, फल भुगते संसार ॥ ७७१ ॥
पुन्यथकी सुर नर हुवै, पापथकी भरमाय ।
तिर नारक दुरगति विषैं, भव भव अतिदुख पाय ॥ ७७२ ॥

पाप समान न शत्रु है, धर्म समान न मित्र ।
पाप महा अपवित्र है, पुण्य कछुक पवित्र ॥ ७७३ ॥
पुण्यपापतैं रहित जो, केवल आतमभाव ।
सो उपाय निरवाणकौ, जामैं नहीं विभाव ॥ ७७४ ॥
झूठी माया जगतकी, झूठौ सब संसार ।
सत्य जिनेसुर धर्म है, जा करि ह्वै भवपार ॥ ७७५ ॥
व्यंतर देवादिकनिकों, जे शठ लक्ष्मीहेत ।
पूजैं ते आपद लहैं, लक्ष्मी देय न प्रेत ॥ ७७६ ॥
भक्ति किये पूजे थके, जो विंतर धन देय ।
तौ सब ही धनवंत ह्वै, जगजन तिनकों सेय ॥ ७७७ ॥
क्षेत्रपाल चंडी प्रमुख, पुत्र कलत्र धनादि ।
देन समर्थ न कोइकों, पूजैं शठ जन वादि ॥ ७७८ ॥
जो भवितव जा जीवकौ, जा विधान करि होय ।
जाहि क्षेत्र जा कालमैं, निःसंदेह ह्वै सोय ॥ ७७९ ॥
जान्यौ जिनवर देवने, केवलज्ञान मँझार ।
होनहार संसारकौ, ता विधि ह्वै निरधार ॥ ७८० ॥
इह निश्चै जाके भयौ, सो नर सम्यकवंत ।
लखै भेद षट द्रव्यके, भावै भाव अनंत ॥ ७८१ ॥
शंका भागी चित्ततैं, भयौ निशंकित वीर ।
गुण परजाय स्वभाव निज, लखै आपमैं धीर ॥ ७८२ ॥
दृढ़ प्रतीति जिनवैनकी, सम्यकदृष्टी सोय ।
जाके संसै जीवमैं, सो मिथ्याती होय ॥ ७८३ ॥

सोरठा ।

जो नहिं समझी जाय, जिनवाणी अति सूक्षमा ।
तौ ऐसे उर लाय, संदेह न आनै सुधी ॥ ७८४ ॥
बुद्धि हमारी मंद, कछु समझै कछु नाहिं ।
जो भाष्यौ जिनचंद, सो सब सत्यस्वरूप है ॥ ७८५ ॥
उदै होयगौ ज्ञान, जब आवर्ण नसाइगौ ।
प्रगटेगौ निजध्यान, तब सब जानी जायगी ॥ ७८६ ॥
जिनवानी सम और, अमृत नहिं संसारमें ।
तीन भवन सिरमौर, हरै जन्म जर मरण जो ॥ ७८७ ॥

जिनधर्मिनसौं नेह, लग्यौ नेह जिनधर्मसूं ।
वरसै आनंद मेह, भक्त भयौ जिनराजकौ ॥ ७८८ ॥
सो सम्यक धरि धीर, लहै निजातम भावना ।
पावै भवजल तीर, दरसन ज्ञान चरित्ततैं ॥ ७८९ ॥
ऋद्धिनमैं वड़ ऋद्धि, रतननिमैं रतन जु महा ।
या सम और न सिद्धि, इह निश्चै धारौ भया ॥ ७९० ॥
योगनिमैं निज योग, सम्यक दरसन जानि तू ।
हनै सदा सब शोक, है आनंदमयी महा ॥ ७९१ ॥

जोगीरासा ।

बंदनीक है सम्यकदृष्टी, यद्यपि व्रत्त न कोई ।
निंदनीक है मिथ्यादृष्टी, जो तपसी हू होई ॥ ७९२ ॥
मुक्ति न मिथ्यादृष्टी पावै, तपसी पावै सर्गा ।
ज्ञानी व्रत्त विना सुरपुर ले, तपधरि ले अपवर्गा ॥ ७९३ ॥
दुरगति बंध करै नहिं ज्ञानी, सम्यकभावनि माहीं ।
मिथ्याभावनिमैं दुरगतिकौ, बंध होय बुधि नाहीं ॥ ७९४ ॥
समकित विन नहिं श्रावकवृत्ती, अर मुनिव्रत हू नाहीं ।
मोक्ष हु सम्यक बाहिर नाहीं, सम्येक आपहि माहीं ॥ ७९५ ॥
अंग निशंकित आदि जु अष्टा, धारै सम्यक सोई ।
शंका आदि दोष मल रहिता, निरमल दरसन होई ॥ ७९६ ॥
जिनमारग भाषै जु अहिंसा, हिंसा परमत भाषै ।
हिंसा-मारगकी तजि सरधा, दयाधर्म दिढ़ राखै ॥ ७९७ ॥
संदेह न जाके जिय माहीं, स्यादवादकौ पंथा ।
पकरै त्यागि एक नयवादी, सुनै जिनागम ग्रंथा ॥ ७९८ ॥
पहलो अंग निसंसै सोई, दूजौ कांक्षा रहिता ।
जामैं जगकी वांछा नाहीं, आतम अनुभव सहिता ॥ ७९९ ॥
शुभकरणी करि फल नहिं चाहै, इह भव परभवके जो ।
करै कामना रहित जु धर्मा, ज्ञानामृत फल ले जो ॥ १८०० ॥
इह भाष्यौ निःकांक्षित अंगा, अब सुनि तीजौ भेदा ।
निरविचाकित्सा अंग है भाई, जा करि भव-भ्रम छेदा ॥ ८०१ ॥

जे दश लक्खण धर्म धरैया, साधु शांतरस लीना ।
तिनकौ लखि रोगादिक जुक्ता, सेव करै परवीना ॥ ८०२ ॥
सूग न आनै मनमैं क्यूं हीं, हरै मुनिनकी पीरा ।
सो सम्यकदृष्टी जिनधर्मा, तिरै तुरत भवनीरा ॥ ८०३ ॥
चौथौ अंग अमूढ़ स्वभावा, नहीं मूढ़ता जाके ।
जीवघातमैं धर्म न जानै, संसै मोह न ताके ॥ ८०४
अति अवगाढ़ गाढ़ परतीती, कुगुरु कुदेव न पूजै ।
जिनसासनकौ शरणो ले करि, जाय न मारग दूजै ॥ ८०५ ॥
जानै जीवदयामैं धर्मा, दया जैन ही माहीं ।
आन धर्ममैं करुणा नाहीं, परतख जीव हताई ॥ ८०६ ॥
जो शठ लज्जा लोभ तथा भै, करिके हिंसा माहीं ।
मानै धर्म सो हि मिथ्याती, जामैं समकित नाहीं ॥ ८०७ ॥
पंचम अंग नाम उपगूहन, ताकौ सुनहु विवेका ।
पर जीवनिके आंखिन देखै, ढांकै दोष अनेका ॥ ८०८ ॥
आप जु दोष करै नहिं ज्ञानी, सुकृत रूप सदा ही ।
अपने सुकृत नाहिं प्रकाशै, धरै न एक मदा ही ॥ ८०९ ॥

दोहा ।

ढांकै अपने शुभ गुणा, ढांकै परके दोष ।
गावै गुण परजीवके, रहै सदा निरदोष ॥ ८१० ॥
जो कदाचि दूषण लगै, मन वच काय करेय ।
तौ गुरु पै परकाशिकै, ताकौ दंड जु लेय ॥ ८११ ॥
जप तप व्रत दानादि कर, दूषण सर्व हरेय ।
करै जु निंदा आपकी, परनिंदा न करेय ॥ ८१२ ॥
जे परगासैं पारके, औगुन तेहि अयान ।
जे परगासैं आपके, औगुण ते हि सयान ॥ ८१३ ॥
जे गावैं गुन आपने, ते मिथ्याती आनि ।
जे गावैं गुन गुरुनिके, ते समदृष्टी जानि ॥ ८१४ ॥
छट्ठो अंग कहों अवै, थिरकरणा गुणवान ।
धर्मथकी विचलेनिकूं, प्रतिबोधै मतिवान ॥ ८१५ ॥

थापै धर्म मँझार जो, करै धर्मकी पक्ष।
आप डिगै नहिं धर्मतैं, भावै भाव अलक्ष ॥ ८१६ ॥
थिरता गुण सम्यक्तकौ, प्रगट बात है एह।
चित्त अथिरता रूप जो, तो मिथ्यात गिनेह ॥ ८१७ ॥
सुनों सातमूं अंग अब, जिन मारगसों नेह।
जिनधर्मीकूं देखि करि, बरसै आनंद मेह ॥ ८१८ ॥
तुरत जात वछरानि परि, हेत करै ज्यूं गाय।
त्यूं यह साधर्मी उपरि, हेत करै अधिकाय ॥ ८१९ ॥
जे ज्ञानी धरमातमा, मुनि श्रावक व्रतवंत।
आर्या और सुश्राविका, चउविधि संघ महंत ॥ ८२० ॥
तथा अव्रती समकिती, जिनधर्मी जग माहिं।
तिनसों राखै प्रीति जो, यामैं संसै नाहिं ॥ ८२१ ॥
तन मन धन जिनधर्म परि, जो नर वारै डारि।
सो वातसल्य जु अंग है, भाख्यौ सूत्र विचारि ॥ ८२२ ॥
अष्टम अंग प्रभावना, कह्यौ सुनों धरि कान।
जा विधि सिद्धान्तनि वर्षे, भाख्यौ श्रीभगवान ॥ ८२३ ॥
भांति भांति करि भासई, जिनमारगकों जो हि।
करै प्रतिष्ठा जैनकी, अंग आठमो होहि ॥ ८२४ ॥
जिनमंदिर जिनतीरथा, जिनप्रतिमा जिनधर्म।
जिनधर्मी जिनसूत्रकी, करै सेव विन भर्म ॥ ८२५ ॥
जो अति श्रद्धा करि करै, जिनशासनकी सेव।
बोलै प्रिय वाणी महा, ताहि प्रसंसै देव ॥ ८२६ ॥
जो दसलक्षण धर्मकी, महिमा करै सुजान।
इंद्रिनके सुखकों गिनै, नरक निगोद निसान ॥ ८२७ ॥
कथनी करै न पारकी, फुनि फुनि ध्यावै तत्त्व।
भावै आतमभाव जो, त्यागै सर्व ममत्व ॥ ८२८ ॥
कहै अंग ये प्रथम ही, मूलगुणनिके माहिं।
अब हू पड़िमामैं कहै, इन सम और जु नाहिं ॥ ८२९ ॥
बार बार श्रुतिजोग ये, सम्यकदरसन अंग।
इनकों धारै सो सुधी, करै कर्मकौ भंग ॥ ८३० ॥

अष्ट अंगकौ धारिवौ, अष्ट मदनिकौ त्याग।
षट अनायतन त्यागिवौ, आतीचार नहिं लाग ॥ ८३१ ॥
ते भाषैं गुरु पंचविधि, बहुरि मूढ़ता तीन।
तजिवौ सातों विसनकौ, भय सातों नहिं कीन ॥ ८३२ ॥
ए सब पहले हू कहे, अब हू भाषैं वीर।
बार बार सम्यक्तकी, महिमा गावैं धीर ॥ ८३३ ॥
अंग निशंकित आदि बहु, अठ गुण संवेगादि।
अष्ट मदनिकौ त्याग फुनि, अर वसु मूलगुणादि ॥ ८३४ ॥
सात विसनकौ त्यागिवौ, अर तजिवौ भय सात।
तीन मूढ़ता त्यागिवौ, तीन शल्य फुनि भ्रात ॥ ८३५ ॥
षट अनायतन त्यागिवौ, अर पांचों अतिचार।
ए त्रेसठ त्यागै जु कोउ, सो समदृष्टी सार॥ ८३६ ॥
चौथे गुण ठाणें तनी, कहीं बात ए भ्रात।
है अव्रत परि जगततैं, विरकितरूप रहात ॥ ८३७ ॥
नहिं चाहै अव्रतदसा, चाहै व्रत्तविधान।
मनमैं मुनिव्रतकी लगन, सो नर सम्यकवान ॥ ८३८ ॥
जैसे पकर्यौ चोरकूं, दे तलवर दुख घोर।
परवस पड़ि बंधन सहै, नहीं चोरकौ जोर ॥ ८३९ ॥
त्यूं हि अप्रत्याख्यानने, पकर्यौ सम्यकवंत।
परवस अव्रतमैं रहै, चाहै व्रत्त महंत ॥ ८४० ॥
चाहै चोर जु छूटिवौ, यथा बंधतैं वीर।
चाहै गृहतैं छूटिवौ, त्यों सम्यकधर धीर ॥ ८४१ ॥
सात प्रकृतिके त्यागतैं, जेती थिरता जोय।
तेती चौथे ठाणि है, इह जिन आज्ञा होय ॥ ८४२ ॥

ग्यारा प्रतिमा वर्णन ।
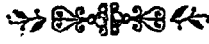
दोहा ।

ग्यारा प्रकृति वियोगतैं, होय पंचमो ठाण ।
तब पड़िमा धारै सुधी, एकादश परिमाण ॥ ८४३ ॥
तिनके नाम सुनों सुधी, जा विधि कहै जिनंद ।
धारैं श्रावक धीर जे, तिन सम नांहि नरिंद ॥ ८४४ ॥
दरसन प्रतिमा प्रथम है, दूजी व्रत अधिकार ।
तीजी सामायक महा, चौथी पोसह धार ॥ ८४५ ॥
सचितत्याग है पंचमी, छट्ठी दिन तिय त्याग ।
तथा रात्रि अनसन व्रता, धारै तपसों राग ॥ ८४६ ॥
जानों पड़िमा सातवीं, ब्रह्मचर्यव्रत धार ।
तजी नारि नागिन गिनै, तजै मोह जंजार ॥ ८४७ ॥
निरारंभ है अष्टमी, नवमी परिग्रह त्याग ।
लौकिक वचन न बोलिवौ, सो दशमी वड़भाग !! ८४८ ॥
एकादशमी दोय विधि, क्षुल्लक ऐलि विवेक ।
है उदंडाहार द्वै, तिनमैं मुनिव्रत एक ॥ ८४९ ॥
ऐलि महा उतकिष्ट हैं, ऐलि समान न कोय ।
मुनि आर्या अर ऐलि ए, लिंग तीन शुभ होय ॥ ८५० ॥
भाषी एकादश सवै, प्रतिमा नाम जु मात्र ।
अब इनकौ विस्तार सुनि, ए सब भव्य सुपात्र ॥ ८५१ ॥

चौपाई ।

प्रथम हि दरशन प्रतिमा सुणों, आतमरूप अनूप जु मुणों ।
दरशन मोक्षवीज है सही, दरशन करि शिव परसन लही ॥ ८५२ ॥
दरसन सहित मूलगुण धरै, सात विसन मन वच तन हरै ।
बिन अरहंत देव नहिं कोय, गुरु निरग्रंथ बिना नहिं होय ॥ ८५३ ॥
जीवदया विन और न धर्म, इह निहचै करि टारै भर्म ।
संजम बिन तप होय न कदा, इह प्रतीति धारै बुध सदा ॥ ८५४ ॥
पहली प्रतिमाकौ सो धनी, दरसनवंत कुमति सव हनी ।
आठ मूल गुण विसन जु सात, भाषै प्रथम कथनमैं भ्रात ॥ ८५५ ॥

तातैं कथन कियौ अव नाहिं, श्रावक वहु आरंभ तजाहिं ।
है स्वारथमैं सांचौ सदा, कूड़ कपट धारै नहिं कदा ॥ ८५६ ॥
धरै शुद्ध व्यवहार सुधीर, परपीराहर है जगवीर ।
सम्यक दरसन दृढ़ करि धरै, पापकर्मकी परणति हरै ॥ ८५७ ॥
क्रय विक्रयमैं कसर न कोय, लेन देनमैं कपट न होय ।
कियौ करार न लोपै जोहि, सो पहिली पड़िमा गुण होहि ॥ ८५८ ॥
जाके उर कालिम नहिं रंच, जाके घटमैं नाहिं प्रपंच ।
जिनपूजा जप तप व्रत दान, धर्मध्यान धारै हि सुजान ॥ ८५९ ॥
गुण इकवीस प्रथम जे कहै, ते पहली पड़िमामैं लहै ।
अव सुनि दूजी पड़िमाधार, द्वादश व्रत पालै अविकार ॥ ८६० ॥
पंच अणुव्रत गुणव्रत तीन, शिक्षाव्रत धारै परवीन ।
निरतीचार महा मतिवान, जिनकौ पहली कियौ वखान ॥ ८६१ ॥
अव तीजी पड़िमा सुनि संत, सामायक धारी गुणवंत ।
मुनि सम सामायककी वार, थिरताभाव अतुल्य अपार ॥ ८६२ ॥
करि तनकौ मनतैं परित्याग, भव-भोगिनतैं होइ विराग ।
धरि कायोतसर्ग वर वीर, अथवा पदमासन धरि धीर ॥ ८६३ ॥
षट षट घटिका तीनूं काल, ध्यावै केवलरूप विशाल ।
सव जीवनिसूं समता भाव, पंच परमपद सेवै पाँव ॥ ८६४ ॥
सो सव वर्णन पहली कियौ, वारा वरत कथनमैं लियौ ।
चौथी प्रतिमा पोसह जानि, पोसहमैं थिरता परवानि ॥ ८६५ ॥
सो पोसहकौ सर्व सरूप, आगे गायौ अव न प्ररूप ।
पोसा समये साधु समान, होवै चौथी प्रतिमावान ॥ ८६६ ॥
दूजी पड़िमा धारक जेहि, सामायक पोसह विधि तेहि ।
धारै परि इनकी सम नाहिं, नहिं ऐसी थिरता तिन माहिं ॥ ८६७ ॥
तीजी सामायक निरदोष, चौथी पड़िमा पोसह पोष ।
पंचम पड़िमा धरि वड़भाग, करै सचित्त वस्तुनिकौ त्याग ॥ ८६८ ॥
काचौ जल अर कोरो धान, दल फल फूल तजै वुधिवान ।
छाल मूल कंदादि न चखै, कूंपल वीज अंकूर न भखै ॥ ८६९ ॥
हरितकायकौ त्यागी होय, जीवदयाकौ पालक सोय ।
सूको फल फोड़्या बिन नाहिं, लेवौ जोगि न ग्रंथनि माहिं ॥ ८७० ॥

लोंन न ऊपरसे ले धीर, लोंन हु सचित गिनै वर वीर।
माटी हात धोयवे काज, लेय अचित्त दयाके काज ॥ ८७१ ॥
खोर तथा माटी जो जली, सोई लेय न काची डली।
प्रथ्वीकाय विराधै नाहिं, जीव असंख कहे ता माहिं ॥ ८७२ ॥
जलकायाकी पालै दया, सर्व जीवकों भाई भया।
अगनिकायसों नाहिं विरोध, दयावंत पावै निज बोध ॥ ८७३ ॥
पवन करै न करावै सोय, षट कायाकौ पीहर होय।
नाहिं वनस्पति करै विराध, जिनशासनकी धरै अराध ॥ ८७४ ॥
विकलत्रय अर नर तिर्यंच, सबकौ मित्र रहित परपंच।
जो सचित्तकौ त्यागी होय, दयावान कहिये नर सोई ॥ ८७५ ॥
आप भखै नहिं सचित कदेय, भोजन सचित न औरहिं देय।
जिह सचित्तकौ कीयौ त्याग, जीती जीभ तज्यौ रसराग ॥ ८७६ ॥
दयाधर्म धारयौ तिह धीर, पाल्यौ जैन वचन गंभीर।
अब सुनि छट्टी प्रतिमा संत, जा विधि भाषी वीर महंत ॥ ८७७ ॥
द्वै मुहूर्त जब बाकी रहै, दिवस तहातैं अनशन गहै।
द्वै मुहूर्त जब चढ़ि है भान, तौ लग अनशनरूप वखान ॥ ८७८ ॥
दिनकों शील धरै जो कोय, सो छट्टी प्रतिमाधर होय।
खान पान नहिं रैनि मँझार, दिवस नारिकौ है परिहार ॥ ८७९ ॥
पूछै प्रश्न यहां भवि लोग, निशिभोजन अर दिनकौ भोग।
ज्ञानी जीव न कोई करै, छट्टी कहा विशेष जु धरै ॥ ८८० ॥
ताकौ उत्तर धारौ एह, औरनिकौ व्रत न्यून गिनेह।
मन वच तन कृत कारित त्याग, करै न अनुमोदन बड़भाग ॥ ८८१ ॥
तब त्यागी कहिए श्रुति माहिं, या माहीं कछु संसै नाहिं।
गमनागमन सकल आरंभ, तजै रैनिमैं नाहिं अचंभ ॥ ८८२ ॥
महाधीर वर वीर विशाल, दिनकौ ब्रह्मचर्य प्रतिपाल।
निरतीचार विचार विशेष, त्यागै पापारंभ अशेष ॥ ८८३ ॥
जैनी जिनदासनिकौ दास, जिनशासनकौ करै प्रकाश।
जो निशिभोजन त्यागी होय, छः मासी उपवासी सोय ॥ ८८४ ॥
वर्ष एकमैं इहै विचार, जावो जीव लगै विस्तार।
है उपवासनिकौ सुनि वीर, तातैं निशिभोजन तजि धीर ॥ ८८५ ॥

जो निशिकों त्यागै आरंभ, दिनहूं जाके अलपारंभ ।
अब सुनि सप्तम पड़िमा धनी, नारिनकूं नागिन सम गिनी ॥ ८८६ ॥
धारयौ ब्रह्मचर्य व्रत शुद्ध, जिनमारगमैं भयौ प्रवुद्ध ।
निशि वासर नारीकौ त्याग, तज्यौ सकल जानै अनुराग ॥ ८८७ ॥
मन वच काय तजी सब नारि, कृत कारित अनुमोद विचारि ।
योनिरंध्र नारीकौ महा, दुरगति द्वार इहै उर कहा ॥ ८८८ ॥
इंद्राणी चक्राणी देखि, निंद्य वस्तु सम गिनै विशेष ।
विषैवासनामैं नहिं राग, जानै भोग जु काले नाग ॥ ८८९ ॥
विषैमगनता अति हि मलीन, विषयी जगमैं दीखै दीन ।
विषय समान न वैरी कोय, जीवनिकूं भरमावै सोय ॥ ८९० ॥
शील समान न सार न कोय, भवसागर तारक है सोय ।
अब सुनि अष्टम पड़िमा भेद, सर्वारंभ तजै निरखेद ॥ ८९१ ॥
आप करै न कछु आरंभ, तजै लोभ छल त्यागै दंभ ।
करवावै न करै अनुमोद, साधुनिकों लखि धरै प्रमोद ॥ ८९२ ॥
मन वच काय शुद्ध करि संत, जग धंधा धारै न महंत ।
जीवघाततैं कांप्यौ जोहि, सो अष्टम पड़िमाधर होहि ॥ ८९३ ॥
असि मसि कृषि वाणिज इत्यादि, तजै जगत कारज गनि वादि ।
जाय पराये जीमैं सोइ, गृह आरंभ कछू नहिं होइ ॥ ८९४ ॥
कहि करवावै नाहीं वीर, सहज मिलै तौ जीमै धीर ।
ले जावै कुल किरियावंत, ताके भोजन ले बुधिवंत ॥ ८९५ ॥
जगत काज तजि आतम काज, करै सदा ध्यावै जिनराज ।
दया नहीं आरंभ मँझार, करि आरंभ भमै संसार ॥ ८९६ ॥
तातैं तजै गृहस्थारंभ, जीवदयाकौ रोप्यौ थंभ ।
करि कुटुंबकौ त्याग सुजान, हिंसारंभ तजै मतिवान ॥ ८९७ ॥
दया समान न जगमैं कोइ, दया हेत त्यागै जग सोइ ।
अब नवमी प्रतिमाकौ रूप, धारौ भवि तजि जगत विरूप ॥ ८९८ ॥
नवमी पड़िमा धारक धीर, तजै परिग्रहकों वर वीर ।
अंतरंगके त्यागै संग, रागादिककौ नाहिं प्रसंग ॥ ८९९ ॥
बाहिरके परिग्रह घर आदि, त्यागै सर्व धातु रतनादि ।
वस्त्र मात्र राखै बुधिवंत, कनकादिक भीटै न महंत ॥ १९०० ॥

वस्त्र हु वहु मोले नहिं गहै, अलप वस्त्र ले आनंद लहै ।
परिग्रहकों जानै दुखरूप, इह परिग्रह है पापस्वरूप ॥ ९०१ ॥
जहां परिग्रह लोभ तहां हि, या करि दया सत्य विनशाहि ।
हिंसारंभ उपावै एह, या सम और न शत्रु गिनेह ॥ ९०२ ॥
तजै परिग्रह सो हि सुजान, तृष्णा त्याग करै वुधिवान ।
जाकी चाह गई सो सुखी, चाह करैं ते दीखैं दुखी ॥ ९०३ ॥
वाहिज ग्रंथ रहित जग माहिं, दारिद्री मानव शक नाहिं ।
ते नहिं परिग्रहत्यागी कहैं, चाह करंते अति दुख लहैं ॥ ९०४ ॥
जे अभ्यंतर त्यागैं संग, मूर्च्छा रहित लहैं निजरंग ।
ते परिग्रहत्यागी हैं राम, बांछा रहित सदा सुखधाम ॥ ९०५ ॥
ज्ञानिन विन भीतरकौ संग, और न त्यागि सकैं दुख अंग ।
राग दोष मिथ्यात विभाव, ए भीतरके संग कहाव ॥ ९०६ ॥
तजि भीतरके वाहिर तजै, सो वुध नवमी पड़िमा भजै ।
वस्त्र मात्र है परिग्रह जहां, धातुमात्रकौ लेश न तहां ॥ ९०७ ॥
नर्म पूंजणी धारै धीर, पट कायनिकी टारै पीर ।
जलभाजन राखै शुचिकाज, त्यागै धन धान्यादि समाज ॥ ९०८ ॥
काठ तथा माटीकौ जोय, और पात्र राखै नहिं कोय ।
जाय वुलायो जीमै जोय, श्रावकके घर भोजन होय ॥ ९०९ ॥
दशमी प्रतिमा धर वड़भाग, लौकिक वचनथकी नहिं राग ।
विना जैनवानी कछु वोल, जो नहिं वोलै चित्त अडोल ॥ ९१० ॥
जगत काज सव ही दुखरूप, पापमूल परपंच स्वरूप ।
तातैं लौकिक वचन न कहै, जिनमारगकी सरधा गहै ॥ ९११ ॥
मौन गहै जगसेती सोय, सो दशमी पड़िमाधर होय ।
श्रुति अनुसार धर्मकी कथा, करै जिनेश्वर भाषी यथा ॥ ९१२ ॥
जगतकाजकौ नहिं उपदेश, ध्यावै धीरज धारि जिनेश ।
वोलै अमृतवानी वीर, पट कायनिकी टारै पीर ॥ ९१३ ॥
तजै शुभाशुभ जगके काम, भयौ कामना रहित अकाम ।
जे नर करैं शुभाशुभ काज, ते नहिं लहैं देश जिनराज ॥ ९१४ ॥
रागद्वेष कलहके धाम, दीसैं सकल जगतके काम ।
जगतरीतिमैं जे नर वसा, सो नहिं पावैं उत्तम दसा ॥ ९१५ ॥

दशमी पड़िमा धारक संत, ज्ञानी ध्यानी अति मतिवंत ।
गिनैं रतन पाहन सम जेह, त्रण कंचन सम जानैं तेह ॥ ९१६ ॥
शत्रु मित्र सम राजा रंक, तुल्य गिनैं मनमैं नहिं संक ।
बांधव पुत्र कुटुंब धनादि, तिनकूं भूलि गये गनि वादि ॥ ९१७ ॥
जानैं सकल जीव समरूप, गई विषमता भागि विरूप ।
पर घर भोजन करैं सुजान, श्रावककुल जो किरियावान ॥ ९१८ ॥
अल्प अहार तहां लें धीर, नहिं चिंता धारैं वर वीर ।
कोमल पीछी कमडल एक, विना धातुकी परम विवेक ॥ ९१९ ॥
इक कोपीन कणगती लया, छह हस्ता इक वस्त्र हु भया ।
इक तह एक पाटकौ जोय, यही रीति दशमीकी होय ॥ ९२० ॥
जिनशाशनकौ है अभ्यास, आगम अध्यातम अभ्यास ।
अब सुनि एका दशमी धार, सबमैं उतकिष्ट निरधार ॥ ९२१ ॥
वनवासी निरदोष अहार, कृत कारित अनुमोदन कार ।
मन वच काय शुद्ध अविकार, सो एकादश पड़िमा धार ॥ ९२२ ॥
ताके दोय भेद हैं भया, क्षुल्लक ऐलिक श्रावक लया ।
क्षुल्लक खंडित कपड़ा धरै, अरु कमडल पीछी आदरै ॥ ९२३ ॥
इक कोपीन कणगती गहै, और कछू नहिं परिग्रह चहै ।
जिनशाशनकौ दासा होय, क्षुल्लक ब्रह्मचार है सोय ॥ ९२४ ॥
ऐलि धरैं कोपीन हि मात्र, अर इक शौचतनूं है पात्र ।
कोमल पीछी दया निमित्त, जिनवानीकौ पाठ पवित्त ॥ ९२५ ॥
पंच घरानिमैं एक घरेहिं, भोजन मुनिकी भांति करेहि ।
ये है चिदानंदमैं लीन, धर्मध्यानके पात्र प्रवीन ॥ ९२६ ॥
क्षुल्लक जीमै पात्र मँझार, ऐलि करैं करपात्र अहार ।
मुनिवर ऊभा लेय अहार, ऐलि अर्यका बैठा सार ॥ ९२७ ॥
क्षुल्लक कतरावैं निज केश, ऐलि करैं शिरलोंच अशेष ।
पहली पड़िमा आदि जु लेय, क्षुल्लकलों व्रत सबकूं देय ॥ ९२८ ॥
श्रीगुरु तीन वर्ण बिन कदे, नहिं मुनि ऐलितनें व्रत दे ।
पहलीसों छट्टीलों जेहिं, जघन्य श्रावक जानों तेहि ॥ ९२९ ॥
सप्तमि अष्टमि नवमी धार, मध्य सरावक है अविकार ।
दशमी एकादशमी वंत, उतकिष्ट भाषैं भगवंत ॥ ९३० ॥

तिनहूमैं ऐलि जु निरधार, ऐलिथकी मुनि वड़े विचार ।
मुनिगणमैं गणधर हैं वड़े, ते जिनवरके सनमुख खड़े ॥ ९३१ ॥
जिनपति शुद्धरूप हैं भया, सिद्ध परैं नहिं दूजौ लया ।
सिद्ध मनुज विन और न होय, चहुंगतिमें नहिं नर सम कोय ॥ ९३२ ॥
नरमैं सम्यकदृष्टी नरा, तिनतैं वर श्रावकव्रत धरा ।
पोडस स्वर्गलोकलों जाहिं, अनुक्रम मोक्षपुरी पहुंचाहिं ॥ ९३३ ॥
पंचमठाणें ग्यारा भेद, धारैं तेहि करैं अघछेद ।
इह श्रावककी रीति जु कही, निकट भव्य जीवनिनें गही ॥ ९३४ ॥
ऊपरि ऊपरि चढ़ते भाव, विरकतभाव अधिक ठहराव ।
नींव होय मंदिरके यथा, सर्व व्रतनिके सम्यक तथा ॥ ९३५ ॥

दान वर्णन ।
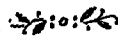
दोहा ।

प्रतिमा ग्याराकौ कथन, जिन आज्ञा परवान ।
परिपूरण कीनूं भया, अव सुनि दान वखान ॥ ९३६ ॥
कियौ दान वरनन प्रथम, अतिथिविभाग जु माहिं ।
अवहू दान प्रवंध कछु, कहिहौं दूषण नाहिं ॥ ९३७ ॥

मनोहर छंद ।

ए मूढ़ अचेतो कछु इक चेतौ, आखिर जगमैं मरना है ।
धन रह ही याहीं संग न जाहीं, तातैं दान सु करना है ॥ ९३८ ॥
विन दान न सिद्धी है अघवृद्धी, दुरगति दुख अनुसरना है ।
क्रिरपणता धारी शठमति भारी, तिनहिं न शुभगति वरना है ॥ ९३९ ॥
यामैं नहि संसा नृप श्रेयंसा, कियउ दान दुख हरना है ।
सो ऋषभ प्रतापें त्याग त्रितापे, पायौ धाम अमरना है ॥ ९४० ॥
श्रीषेण सुराजा दानप्रभावा, गहि जिनशासन सरना है ।
लहि सुख वहु भांती है जिन शांती, पायौ वर्ण अवर्णा है ॥ ९४१ ॥
इक अकृतपुण्या कियउ सुपुण्या, लहिउ तुरत जिह मरना है ।
है धन्यकुमारा चारित धारा, सरवारथ सिधि धरना है ॥ ९४२ ॥

शूकर अर नाहर नकुलर बानर, नमि चारन मुनि चरना है।
करि दान प्रशंसा लहि शुभ वंशा, हरै जनम जर मरना है ॥ ९४३ ॥

दोहा।

वज्रजंघ अर श्रीमती, दानतनैं परभाव।
नर सुर सुख लहि उत्तमा, भये जगतकी नाव ॥ ९४४ ॥
वज्रजंघ आदीश्वरा, भए जगतके ईश।
भये दानपति श्रीमती, कुलकर माहिं अधीश ॥ ९४५ ॥
अन्नदान मुनिराजकों, देत हुते श्रीराम।
करि अनुमोदन गीध इक, पंछी अति अभिराम ॥ ९४६ ॥
भयौ धर्मथी अणुव्रती, कियौ रामकौ संग।
राममुखैं जिन नाम सुनि, लह्यौ स्वर्ग अतिरंग ॥ ९४७
अनुक्रम पहुंचैगौ भया, राम सुरग वह जीव।
धारैगौ निजभाव सहु, ताजिकैं भाव अजीव ॥ ९४८ ॥
दानकारका अमित ही, सीझे भवथी भ्रात।
वहुरि दान अनुमोदका, कोलग नाम गिनात ॥ ९४९ ॥
पात्रदान सम दान अर, करुणादान वखान।
सकल दान है अंतिमो, जिन आज्ञा परवान ॥ ९५० ॥
आपथकी गुण अधिक जो, ताहि चतुरविधि दान।
देवौ है अति भक्तिकरि, पात्रदान सो जान ॥ ९५१ ॥
जो पुनि सम गुन आपतैं, ताकों दैनों दान।
सो समदान कहै वुधा, करिकै वहु सनमान ॥ ९५२ ॥
दुखी देखि करुणा करै, देवै विविधि प्रकार।
सो हैं करुणादान शुभ, भाषैं मुनिगणधार ॥ ९५३ ॥
सकल त्यागि ऋषिव्रत धरै, अथवा अनशन लेइ।
सो हैं सकल प्रदानवर, जाकरि भव उतरेइ ॥ ९५४ ॥
दान अनेक प्रकारके, तिनमैं रखिया चार।
भोजन औषधि शास्त्र अर, अभैदान अविकार ॥ ९५५ ॥
तिनकौ वर्णन प्रथम ही, अतिथि विभाग मँझार।
कियौ अवै पुनरुक्तके, कारण नहिं विसतार ॥ ९५६ ॥

सप्तक्षेत्र वर्णन।

जो करवावै जिनभवन, धन खरचै अधिकाय।
सो सुर नर सुख पायकै, लहै धाम जिनराय ॥ ९५७ ॥

जो करवावै विधिथकी, जिनप्रतिमा बुधिवंत ।
मंदिरमैं पधरावई, सो सुख लहै अनंत ॥ ९५८ ॥
जव समान जिनराजकी, प्रतिमा जो पधराय ।
किंदूरीसम देहुरो, सो हू धन्य कहाय ॥ ९५९ ॥
शिखर बंध करवावई, जिन चैत्यालय कोय ।
प्रतिमा उच्च करावई, पावै शिवपुर सोइ ॥ ९६० ॥
जल चंदन अक्षत पहुप, अर नैवेद्य सुदीप ।
धूप फलनि जिन पूजई, सो है जग अवनीप ॥ ९६१ ॥
जो देवल करि विधिथकी, करै प्रतिष्ठा धीर ।
सुर नर पतिके भोग लहि, सो उतरै भवतीर ॥ ९६२ ॥
जो जिन तीरथकी महा, यात्रा करै सुजान ।
सफल जनम ताही तनों, भाषै पुरुष प्रधान ॥ ९६३ ॥
चउ अनुयोगमई महा, द्वादशांग अविकार ।
सो जिनवाणी है भया, करै जगतथी पार ॥ ९६४ ॥
ताके पुस्तक बोधकर, लिखै लिखावै शुद्ध ।
धन खरचै या वस्तुमैं, सो होवै प्रतिबुद्ध ॥ ९६५ ॥
ग्रंथनिकूं मूड़े करै, करवावै धरि चित्त ।
भले भले वस्त्रनिविषैं, राखै महा पवित्त ॥ ९६६ ॥
जीरण ग्रंथनिके महा, जतन करै बुधिवान ।
ज्ञानदान देवै सदा, सो पावै निरवान ॥ ९६७ ॥
जीरण जिनमंदिरतणी, मरमत जो मतिवान ।
करवावै अति भक्तिसों, सो सुख लहै निदान ॥ ९६८ ॥
शिखर चढ़ावै देहुरां, धन खरचै या भांति ।
कलश धरै जिनमंदिरां, पावै पूरण शांति ॥ ९६९ ॥
छत्र चमर घंटादिका, वहु उपकरणां कोय ।
पधरावै चैत्यालये, पावै शिवपुर सोय ॥ ९७० ॥
टीप करावै द्रव्य दे, धवलावै जिनगेह ।
धुजा चढ़ावै देवलां, पावै धाम विदेह ॥ ९७१ ॥
जो जिनमंदिर कारनैं, धरती देय सु वीर ।
सो पावै अष्टमधरा, मोक्ष काम गंभीर ॥ ९७२ ॥

* यव—जैसरके बराबर छोटी । २ राजा ।

चउविधि संघनिकी भया, मन वच तनकरि भक्ति ।
करै हरै पीरा सवै, सो पावै निजशक्ति ॥ ९७३ ॥

सप्त क्षेत्र ये धर्मके, कहे जिनागमरूप ।
इनमैं धन खरचै वुधा, पावै वित्त अनूप ॥ ९७४ ॥

अथ वचानिका ।

प्रतिमा करावै, देवल करावै, पूजा तथा प्रतिष्ठा करै, जिन तीरथकी यात्रा करै, शास्त्र लिखावै, चउविधि संघकी भक्ति करै ए सप्त क्षेत्र जानि । यहाँ कोई प्रश्न करै, प्रतिमाजी अचेतन छै, निग्रह अनुग्रह करवा समर्थ नाहीं; सो प्रतिमाका सेवनथकी स्वर्गमुक्ति फलप्राप्ति कैसी भांति होय ? ताका समाधान । प्रतिमाजी शांत स्वरूपने धारया छै । ध्यानकी रीतिने दिखावे छै । दृढ़ आसन, नासाग्र दृष्टी, नगन, निराभर्ण, निर्विकार जिसौ भगवानकौ साक्षात स्वरूप छै तिस्यौ प्रतिमाजीने देख्यां यादि आवै छै । परिणाम ऐसे निर्मल होइ छै । अर श्री प्रतिमाजीने सांगोपांग आपना चित्तमैं ध्यावै तौ वीतरागभावने पावै । यथा स्त्रीकी मूरति चित्रामकी, पाषाणकी, काष्ठादिककी देखि विकारभाव उपजै छै, तथा वीतरागकी प्रतिमाका दर्शनथकी, ध्यानथकी निर्विकार चित्त होइ छै । अर आन देवकी मूरति रागी द्वेषी छै । उन्मादने धारै छै । सो वाका दरशन ध्यान करि राग दोष उन्माद वढ़ै छै । तीसौं आराधवा जोग्य, दरसन जोग्य, ध्यान जोग्य जिनप्रतिमा ही छै । जीवाने भुक्ति, मुक्तिदाता छै । यथा कल्पवृक्ष, चिंतामणि औषधि, मात्रादिक सर्व अचेतन छै, पणि फलदाता छै, तथा भगवतकी प्रतिमा अचेतन छै; परंतु फलदाता छै । ज्ञानी तो एक शांतभावका अभिलाषी छै । सो शांतभावने जिनप्रतिमा मूर्तवंत दिखावै छै । तीसूं ग्यान्यांने सदा वंदिवा ध्यावा जोग्य छै । अर जगतका प्राणी संसारीक भोग चावै छै । सो जिनप्रतिमाका पूजनथकी सर्व प्राप्ति होय छै । एसो जानि, हित मानि, संसै भानि जिनप्रतिमाकी सेवा जोग्य छै।

कवित्त ।

श्रीजिनदेवतनी अरचा अर साधु दिगंवरकी अतिसेव ।
श्रीजिनसूत्र सुनै गुरु सन्मुख, त्यागै कुगुरु कुधर्म कुदेव ॥ ९७५ ॥
धारै दानशील तप उत्तम, ध्यावै आतमभाव अछेव ।
सो सब जीव लखै आपन सम, जाके सहज दयाकी टेव ॥ ९७६ ॥
दानतनी विधि है जु अनंत, सबै महिं मुख्य किमिच्छक दाना ।
ताके अर्थ सुनूं मनवांछित, दान करै भवि सूत्र प्रवाना ॥ ९७७ ॥

तीरथकारक चक्र जु धारक, देहि सकैं इह दान निधाना ।
और सबै निज शक्ति प्रमाण, करैं शुभदान महा मतिवाना ॥ ९७८ ॥

सोरठा ।

कोऊ कुबुद्धी क्रूर, चितवै चित्तमैं इह भया ।
लहिहौं धन अतिपूर, तब करिहूं दानहि विधी ॥ ९७९ ॥
अब तौ धन कछु नाहिं, पास हमारे दानकौं ।
किसविधि दान कराहिं, इह मनमैं धरि कृपण है ॥ ९८० ॥
यो न विचारै मूढ़, शक्ति प्रभावै त्याग है ।
होय धर्म आरूढ़, करै दान जिनवैन सुनि ॥ ९८१ ॥
कछु हू नाहिं जुरै जु, तौहू रोटी एक ही ।
ज्ञानी दान करै जु, दान बिना घृग जनम है ॥ ९८२ ॥
रोटी एक हु नाहिं, तौहू रोटी आध ही ।
जिनमारगके माहिं, दान विना भोजन नहीं ॥ ९८३ ॥
एक ग्रास ही मात्र, देवै अतिहि अशक्त जो ।
अर्ध ग्रास ही मात्र, देवै परि नहिं कृपण है ॥ ९८४ ॥
गेह मसान समान, भाषै किरपणकौ श्रुति ।
मृतक समान बखान, जीवत ही कृपणा नरा ॥ ९८५ ॥
जानौ गृद्ध समान, ताके सुत दारादिका ।
जो नहिं करै सुदान, ताकौ धन आमिष समा ९८६ ॥
जैसै आमिष खाय, गिरध मसाणा मृतककौं ।
तैसै धन विनशाहिं, कृपणतनौं सुतदारका ॥ ९८७ ॥
सबकौं देनौ दान, नाकारौ नहिं कोइसूं ।
करुणाभाव प्रधान, सब ही आतमराम हैं ॥ ९८८ ॥
सब ही प्राणिनकौं जु, अन्न वस्त्र जल औषधी ।
सूखे तृण विधिसौं जु, देनैं तिरजंचानिकौं ॥ ९९० ॥
गुनी देखि अति भक्ति, भावथकी देनौ महा ।
दान भक्ति अरु मुक्ति, कारणमूल कहैं गुरू ॥ ९९१ ॥
पर परणतिकौ त्याग, ता सम आन न दान कोउ ।
देहादिककौ राग, त्यागैं ते दाता बड़े ॥ ९९२ ॥
कह्यौ दान परभाव, अब सुनि जलगालण विधीं ।
छांड़ौ मुगध स्वभाव, जलगालण विधि आदरौ ॥ ९९३ ॥

जलगालण विधि।

अडिल्ल छंद।

अब जल गालन रीति सुनौ बुध कान दे। जीव असंखिनिकौ हि प्राणकौ दान दे।
जो जल बरतै छांणि सोहि किरिया धनी। जलगालणकी रीति धर्ममैं मुख भनी॥
नूतन गाढ़ौ वस्त्र गुड़ी विनु जो भया। ताकौ गलनो करै चित्त धरिके दया।
डेढ़ हाथ लंबो जु हाथ चौरौ गहै। ताहि दुपड़तो करै छांणि जल सुख लहै॥
वस्त्र पुरानो अवर रंगकौ नांतिनां। राखै तिनतैं ज्ञानवंतकी पांतिनां।
छाणत एक हु बूँद महीपरि जो परै। भाषैं श्रीगुरुदेव जीव अगणित मरैं॥
बरतैं मूरख लोग अगाल्यौ नीर जे। तिनकौं केतो पाप सुनौ नर धीर जे।
असी बरसलौं पाप करै धीवर महा। अवर पारधी भील वागुरादिक लहा॥
तेतो पाप लहै जु एक ही वार जे। अणछाण्यूं वरतैं हि वारि तनधार जे।
एसौ जानि कदापि अगाल्यौ तोय जी। वरतौ मति ता माहिं महा अघ होय जी॥
मकरीके मुखथकी तंतु निकसै जिसौ। अति सूक्षम जो वीर नीर कृमि है तिसौ।
तामैं जीव असंखि उड़ैं है भ्रमर ही। जंबूद्वीप न मायँ जिनेश्वर यों कही॥
शुद्ध नातणे छांणि पान जलकौं करै। छाण्यां जलथी धोय नातणो जो धरै।
जतनथकी मतिवंत जिवाण्यूं जलविषैं। पहुंचावै सो धन्य श्रुतविषैं यूं लिखैं॥
जा निवाणकौ होय नीर ताही महै। पधरावै बुधिवान परम गुरु यों कहैं।
ओछे कपड़े नीर गालही जे नरा। पावैं ओछी योनि कहैं मुनि श्रुतधरा॥
जलगालन सम किरिया और नाहीं कही। जलगालणमैं निपुण सोहि श्रावक सही।
चउथी पड़िमा लगें लेइ काचौ जला। आगे काचौ नाहिं प्राशुको निर्मला॥
छाण्यूं काचौ नीर इकिन्द्री जानिए। द्वै घटिका त्रसजीव रहित सो मानिए।
प्राशुक मिरच लवंग कपूरादिक मिला। वहुरि कसेला आदि वस्तुतैं जो मिला॥
सो लेनौं दोय पहर पहिल ही जैनमैं। आगे त्रस निपजंत कह्यौ जिनवैनमैं।
तातौ भात उकालि वारि वसु पहर ही। आगे जंगम जीव हु उपजैं सहज ही॥

चौपई।

जे नर जिन आज्ञा नहिं जानैं, चितमैं आवै सोही ठानैं।
भात उकाल करैं महिं पानी, कछु इक उष्ण करैं मनमानी॥ ५॥
ताहि जु बरतैं अष्टहि पहरा, ते व्रत वर्जित अर श्रुति वहरा।
मरजादा माफिक नहिं सोई, ऐसें बरतौ भवि मति कोई॥ ६॥

जो जन जैनधर्म प्रतिपाला, ता घरि जलकी है इह चाला।
काचौ प्राशुक तातौ नीरा, मरजादामैं वरतैं वीरा ॥ ७ ॥
प्रथमहि श्रावककौ आचारा, जलगालण विधि है निरधारा।
जे अणछाण्यो पीवैं पाणी, ते धीवर वागुर सम जाणी ॥ ८ ॥
विन गाल्यो औरे नहिं प्याजै, अभख न खाजै और न ख्वाजै।
तजि आलस अर सब परमादा, गालैं जल चित धरि अहलादा ॥ ९ ॥
जलगालण नहिं चित्त करै जो, जल छाननमैं चित्त धरै जो।
अणछाण्यांकी बूंद हु धरती, नाखै नाहिं कदाचित वरती ॥ १० ॥
बूंद परै तौ ले प्रायश्चित्ता, जाके घटमैं दया पवित्ता।
यह जलगालणकी विधि भाई, गुरु आज्ञा अनुसार बताई ॥ ११ ॥

दोहा।

अब सुनि रात्रि अहारकौ, दोष महा दुखदाय।
द्वै महुरत दिन जव रहै, तवतैं त्याग कराय ॥ १२ ॥
दिवस महूरत द्वै चढ़ै, तवलौं अनसन होय।
निशि अहार परिहार सो, व्रत्त न दूजौ कोय ॥ १३ ॥
निशिभोजनके त्यागतैं, पावै उत्तम लोक।
सुर नर विद्याधरनके, लहै महासुख थोक ॥ १४ ॥
जे निशि भोजन कारका, तेहि निशाचर जान।
पावैं नित्य निगोदके, जनम महा दुखखानि ॥ १५ ॥
निशि वासरकौ भेद नहिं, खात तृप्ति नहिं होय।
सो काहेके मानवा, पशुहूँतैं अधिकोय ॥ १६ ॥
नाम निशाचर चोरकौ, चोर समाना वे हि।
चरैं निशाकौं पापिया, हरैं धर्ममति जे हि ॥ १७ ॥
वहुरि निशाचर नाम है, राक्षसकौ श्रुतिमाहिं।
राक्षस सम जो नर कुधी, रात्री अहार कराहिं ॥ १८ ॥
दिन भोजन तजि रैनिमैं, भोजन करैं विमूढ़।
ते उलूक सम जानिये, महापाप आरूढ़ ॥ १९ ॥
मांस अहारी सारिखे, निशिभोजी मतिहीन।
जनम जनम या पापतैं, लहैं कुगति दुखदीन ॥ २० ॥

नाराच छंद ।

उलूक काक औ बिलाव श्वान गर्दभादिका । गहैं कुजन्म पापिया जु ग्राम शूकरादिका ।
कुछौरछोवि माहिं कीट होय रात्रिभोजका । तजैं निशा अहारकों विमुक्ति पंथ खोजका ।
निशा महैं करैं अहार तें हि मूढ़धी नरा । लहैं अनेक दोषकूं सुधर्महीन पामरा ।
जु कीट माछरादिका भखैं अहार माहिं ते । महा अधर्म धारिके जु नर्क माहिं जाहिं ते ॥

छंद चाल ।

निशिमाहीं भोजन करही, ते पिंड असुखतैं भरही ।
भोजनमैं कीड़ा खाये, तातैं बुधि मूल नशाये ॥ २३ ॥
जो जूंका उदरैं जाये, तौ रोग जलोदर पाये ।
मांखी भोजनमैं आवै, ततखिन सो वमन उपावै ॥ २४ ॥
मकरी आवै भोजनमैं, तौ कुष्टरोग होय तनमैं ।
कंटक अरु काठजु खंडा, फासि है जो गले परचंडा ॥ २५ ॥
तौ कंठविथा विस्तारै, इत्यादिक दोष निहारै ।
भोजनमैं आवै वाला, सुर भंग होय ततकाला ॥ २६ ॥
निशिभोजन करके जीवा, पावैं दुख कष्ट सदीवा ।
होवैं अति ही जु विरूपा, मनुजा अति विकल कुरूपा ॥ २७ ॥
अति रोगी आयुस थोरा, ह्वै भागहीन निरजोरा ।
आदर रहिता सुख रहिता, अति ऊंच-नीचता सहिता ॥ २८ ॥
इक बात सुनों मनलाई, हथनापुर पुर है भाई ।
तामैं इक हूतौ विप्रा, मिथ्यामत धारक लिप्रा ॥ २९ ॥
रुद्रदत्त नाम है जाकौ, हिंसामारग मत ताकौ ।
सो रात्रि अहारी मूढ़ा, कुगुरनके मत आरूढ़ा ॥ ३० ॥
इक निशिकों भोंदू भाई, रोटीमैं चींटी खाई ।
वैंगनमैं मींडक खायौ, उत्तम कुल तिहँ विनशायौ ॥ ३१ ॥
कालान्तर तजि निज प्राणा, सो घूघू भयौ अयाणा ।
फुनि मरि करि गयौ जु नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ॥ ३२ ॥
नीसरि नरकजुतैं कागा, वह भयौ पापपथ लागा ।
वहुरैं नर्कजुके कष्टा, पायौ ताने जु सपष्टा ॥ ३३ ॥
फुनि भयौ विडाल सु पापी, जीवनिकूं अति संतापी ।
सो गयौ नर्कमैं दुष्टा, हिंसा करिके वो पुष्टा ॥ ३४ ॥

१ पाखानेमें । २ नीच ।

तहांतैं जु भयौ वह गृद्धा, फुनि गयौ नर्क अघवृद्धा ।
नर्कजुतैं नीसरि पापी, हूवौ पसु पापप्रतापी ॥ ३५ ॥
वहुरे जु गयौ शठ कुगती, घोर जु नर्क अति विमती ।
नीसरिकै तिरजंच हूवौ, वहु पाप करी पशु मूवौ ॥ ३६ ॥
फुनि गयौ नर्कमैं कुमती, नारकतैं अजगर अमती ।
अजगरतैं वहुरी नर्का, पायौ अति दुख संपर्का ॥ ३७ ॥
नर्कजुतैं भयौ वघेरा, तहां किये पाप वहुतेरा ।
वहुरे नारकगति पाई, तहांतैं गोधा पशु जाई ॥ ३८ ॥
गोधातैं नर्क निवासा, नारकतैं मच्छ विभासा ।
सो मच्छ नरकमैं जायौ, नारकमैं वहु दुख पायौ ॥ ३९ ॥
नारकतैं नीसरि सोई, वहुरी द्विजकुलमैं होई ।
लोमस प्रोहितकौ पुत्रा, सो धर्मकर्मके शत्रा ॥ ४० ॥
जो महीदत्त है नामा, सातौं विसनजुसो कामा ।
नग्रजुतैं लख्यौ निकासा, मामाकै गयौ निरासा ॥ ४१ ॥
मामे हू राख्यौ नाहीं, तव काशीके वनमाहीं ।
मुनिवर भेटे निरग्रंथा, जे देहि मुकतिकौ पंथा ॥ ४२ ॥
ज्ञानी ध्यानी निजरत्ता, भवभोगशरीर विरत्ता ।
जानैं जनमांतर वातैं, जिनकै जियमैं नहिं घातैं ॥ ४३ ॥
तिनकौं लखि द्विज शिरनायौ, सव पापकर्म विनशायौ ।
पूछी जनमांतर वातां, जा विधि पाई वहु घातां ॥ ४४ ॥
सो मुनिने सारी भाखी, कछु वातंवीच नहिं राखी ।
निशिभोजन सम नहिं पापा, जाकरि पायौ दुखतापा ॥ ४५ ॥
सुनि करि मुनिवरके वैना, ब्राह्मण धार्यौ मत जैना ।
सम्यक्त अणुव्रत धारी, श्रावक हूवौ अविकारी ॥ ४६ ॥

दोहा ।

मात पिता अति हित कियौ, दियौ भूप अति मान ।
पुण्यउदै लक्ष्मी अतुल, पाप किये वहु हान ॥ ४७ ॥

चौपई ।

पूजा करै जपै अरहंत, महीदत्त हूवौ अतिसंत ।
जिनमंदिर जिनविंव रचाय, करी प्रतिष्ठा पुण्य उपाय ॥ ४८ ॥

सिद्धक्षेत्र वंदे अधिकाय, जिनसिद्धांत सुनै अधिकाय ।
केतौ काल गयौ इह भांति, समै पाय धारी उपशांति ॥ ४९ ॥
शुभ भावनितैं छांडे प्रान, पायौ षोडशस्वर्ग विमान ।
ऋद्धि महा अणिमादिक लई, आयु वीस द्वै सागर भई ॥ ५० ॥
चयौ स्वर्गथी सो परवीन, राजपुत्र हूवौ शुभलीन ।
देश अवंती उत्तम वसै, नगर उजैणी अति ही लसै ॥ ५१ ॥
तहां नरपती पृथ्वीमल्ल, जिनधर्मी सम्यक्ति अचल्ल ।
प्रेमकारिणी रानी महा, ताके उदर जन्म सो लहा ॥ ५२ ॥
नाम सुधारस ताकौ भयौ, मात पिता अति आनंद लयौ ।
अनुक्रम वर्ष सातकौ जवै, विद्या पढ़ने सोंप्यौ तवै । ॥ ५३ ॥
शस्त्र शास्त्रमैं वहु परवीण, भयौ अणुव्रती समकित लीन ।
जोवनवंत भयौ सुकुमार, व्याह कियौ नहिं धर्म सम्हार ॥ ५४ ॥
एक दिवस वनक्रीड़ा गयौ, वड़तरु विजुरीतैं क्षय भयौ ।
ताकों लखि उपनौ वैराग, अनुप्रेक्षा चितई वड़भाग ॥ ५५ ॥
चंद्रकीर्ति मुनिके ढिग जाय, जिनदीक्षा लीनी शिरनाय ।
अभ्यंतर वाहिर चौवीस, ग्रंथ तजै मुनिकूं नमि शीश ॥ ५६ ॥
पंच महाव्रत गुप्ति जु तीन, पंच समिति धारी परवीन ।
सुकल ध्यान करि कर्म विनाशि, केवल पायौ अति सुखराशि ॥ ५७ ॥
वहुत भव्य उपदेशे जिनैं, आयुकर्म पूरण करि तिनैं ।
शेष अघातियकौ करि नाश, पायौ मोक्षपुरी सुखवास ॥ ५८ ॥
निशिभोजनतैं जे दुख लये, अर त्यागेतैं सुख अनुभये ।
तिनके फलकौ वर्णन करी, कथा अणथमी पूरण करी । ५९ ॥

छप्पय ।

इक चंडाली सुराशि व्रत्त सेठनिपैं लीयौ ।
मन वच तन दृढ़ होय त्यागि निशिभोजन कियौ ।
व्रत्ततनों परभाव त्याग तन अंतिज जाया ।
वाही सेठनिके जु उदर उपनी वर काया ।
गहि जैनधर्म धरि शीलव्रत, पापकर्म सब ही दहा ।
लहि सुरगलोक नरलोक सुख, लोकसिखरकौ पथ गहा ॥ ६० ॥
एक हुतौ जु शृगाल कर सुदरशन मुनिराया ।
त्यागौ निशिकौ खान-पान जिनधर्म सुहाया ।

मरि करि हूवौ सेठ नाम प्रीतंकर जाकौ।
अद्भुत रूपनिधान धर्ममैं अति चित ताकौ।
भयौ मुनीश्वर सब त्यागिकै, केवल लहि शिवपुर गयौ।
नहिं रात्रिभुक्ति परित्याग सम, और दूसरौ व्रत लयौ॥ ६१॥

सोरठा।

निशि भोजन करि जीव, हिंसक ह्वै चहुँगति भ्रमै।
जे त्यागैं जु सदीव, निशिभोजन ते शिव लहैं॥ ६२॥
अर्ध उमरि उपवास,-माहीं वीतै तिन तनी।
जे जन हैं जिनदास, निशिभोजन त्यागैं सुधी॥ ६३॥
दिवस नारिकौ त्याग, निशिकों भोजन त्यागई।
निशदिन जिनमत राग, सदा व्रत्तमूरति बुधा॥ ६४॥
एक मासमैं भ्रात, पाख उपास फलै फला।
जे निशि माहिं न खात, च्यारि अहारा धीधना॥ ६५॥
निसिभोजन सम दोष, भयौ न है है होइगौ।
महापापकौ कोष, मद्य मांस आहार सम॥ ६६॥
त्यागैं निशिकौ खान, तिनैं हमारी वंदना।
देहीं अभय प्रदान, जीवगणनिकों ते नरा॥ ६७॥
कौलग कहैं सुवीर, निशिभोजनके अवगुणा।
जानैं श्रीमहावीर, केवलज्ञान महंत सब॥ ६८॥

रतनत्रय वर्णन।
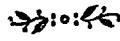
अब सुनि दरसन ज्ञान, चरण मोक्षके मूल हैं।
रतनत्रय निज ध्यान, तिन विन मोक्ष न है भया॥ ६९॥
सम्यकदर्शन सो हि, आतम रुचि श्रद्धा महा।
करनों निश्चय जो हि, अपने शुद्ध स्वभावकों॥ ७०॥
निजकौ जानपनो हि, सम्यकज्ञान कहैं जिना।
थिरताभाव घनो हि, सो सम्यकचारित्र है॥ ७१॥

चौपई।

प्रथमहि अखिल जतन करि भाई, सम्यक दरसन चित्त धराई।
ताके होत सहज ही होई, सम्यकज्ञान चरन गुन दोई॥ ७२॥

जीवाजीवादिक नव अर्था, तिनकी श्रद्धा विन सव व्यर्था ।
है श्रद्धान रहित विपरीता, आतमरूप अनूप अजीता ॥ ७३ ॥
सकल वस्तु हैं उभय स्वरूपा, अस्ति-नास्तिरूपी जु निरूपा ।
अनेकांतमय नित्य अनित्या, भगवतने भाषे सहु सत्या ॥ ७४ ॥
तामैं संसै नाहिं जु करनौ, सम्यक दरसन ही दिढ़ धरनौ ।
या भवमैं विभवादि न चाहै, परभव भोगनिकूं न उमाहै ॥ ७५ ॥
चक्री केशवादि जे पदई, इंद्रादिक शुभ पदई गिनई ।
कवहू वांछै कछु हि न भोगा, ते कहिये भगवतके लोगा ॥ ७६ ॥
जो एकांतवाद करि दूषित, परमत गुण कारि नाहिं जु भूषित ।
ताहि न चाहै मन वच तन करि, ते दरसन धारी उरमैं धरि ॥ ७७ ॥
क्षुधा तृषा अर उष्ण जु सीता, इनहिं आदि सुखभाव वितीता ।
दुखकारणमैं नाहिं गिलानी, सो सम्यकदरसन गुणखानी ॥ ७८ ॥
लोकविषैं नहिं मूढ़तभावा, श्रुति अनुसार लखै निरदावा ।
जैनशास्त्र विनु और जु ग्रंथा, शास्त्राभास गिनै अघपंथा ॥ ७९ ॥
जैनसमय विनु और जु समया, समयाभास गिनै सहु अदया ।
विनु जिनदेव और हैं जेते, लखै जु देवाभास सु ते ते ॥ ८० ॥
श्रद्धानी सो तत्त्वविज्ञानी, धरै सुदर्शन आतमध्यानी ।
करै धर्मकी जो वढ़वारी, सदा सु मार्दव आर्जवधारी ॥ ८१ ॥
पर औगुन ढांकै बुधिवंता, सो सम्यकदरशनधर संता ।
काम क्रोध मद आदि विकारा, तिनकरि भये विकलमति धारा ॥ ८२ ॥
न्यायमार्गतैं विचल्यौ चाहै, मिथ्यामारगको जु उमाहै ।
तिनकों ज्ञानी थिराचित कारै, युक्तथकी भ्रमभाव निवारै ॥ ८३ ॥
आप सुथिर औरें थिर कारै, सो सम्यकदरशन गुण धारै ।
दयाधर्ममैं जो हि निरंतर, करै भावना उर अभ्यंतर ॥ ८४ ॥
शिवसुख लक्ष्मी कारण धर्मो, जिनभाषित भवनाशित पर्मो ।
तासौं प्रीति धरै अधिकेरी, अर जिनधर्मिनसूं वहुतेरी ॥ ८५ ॥
प्रीति करै सो दर्शनधारी, पावै लोकाशिखर अविकारी ।
यथा तुरतके वछरा ऊपरि, गो हित राखै मनवचतन करि ॥ ८६ ॥
तथा धर्म धर्मिनिसौं प्रीती, जाके, ताने शठता जीती ।
आतम निर्मल करणों भाई, अतिसंयरूप महा सुखदाई ॥ ८७ ॥

दर्शन ज्ञान चरण सेवन करि, केवल उतपति करनौं भ्रम हरि।
सो सम्यक परभावन होई, परभावनकौ लेश न कोई ॥ ८८ ॥
दान तपो जिनपूजा करिकैं, विद्या अतिशय आदि जु धरिकैं।
जैनधर्मकी महिमा कारे, सो सम्यकदरशन गुण धारैं ॥ ८९ ॥
ए दरशनके अष्ट जु अंगा, जे धारैं उर माहिं अभंगा।
ते सम्यक्ती कहिये वीरा, जिनआज्ञा पालक ते धीरा ॥ ९० ॥
सेवनीय है सम्यकज्ञानी, माया मिथ्या ममता भानी।
सदा आत्मरस पीवैं धन्या, ते ज्ञानी कहिये नहिं अन्या ॥ ९१ ॥
यद्यपि दरशन ज्ञान न भिन्ना, एकरूप हैं सदा अभिन्ना।
सहभावी ए दोऊ भाई, तौ पनि किंचित भेद धराई ॥ ९२ ॥
भिन्न भिन्न आराधन तिनका, ज्ञानवंतके होइ जिनका।
एक चेतनाके द्वै भावा, दरसन ज्ञान महा सुभभावा ॥ ९३ ॥
दरसन है सामान्य स्वरूपा, ज्ञान विशेष स्वरूप निरूपा।
दरसन कारन ज्ञान सु कार्या, ए दोऊ न लहैं हि अनार्या ॥ ९४ ॥
निराकार दर्शन उपयोगा, ज्ञान धरै साकार नियोगा।
कोऊ प्रश्न करै इह भाई, एककाल उत्पत्ति बताई ॥ ९५ ॥
दरसन ज्ञान दुहुनकी तातैं, कारन कारिज होइ न तातैं।
ताकौ समाधान गुरु भाषैं, जे धारैं ते निजरस चाखैं ॥ ९६ ॥
जैसैं दीपक अर परकासा, एककाल दुहुंकौ प्रतिभासा।
पर दीपक है कारनरूपा, कारिजरूप प्रकाशनरूपा ॥ ९७ ॥
तैसैं दरशन ज्ञान अनूपा, एक काल उपजैं निजरूपा।
दरसन कारनरूपी कहिये, कारिजरूपी ज्ञान सु गहिये ॥ ९८ ॥
विद्यमान हैं तत्त्व सवैं ही, अनेकांततारूप फवैं ही।
तिनकौ जानपनों जो भाई, संशय विभ्रम मोह नशाई ॥ ९९ ॥
जो विपरीत रहित निजरूपा, आतमभाव अनूप निरूपा।
सौ है सम्यकज्ञान महंता, निजकौ जानपनौं विलसंता ॥ २१०० ॥
अष्ट अंगकरि शोभित सोई, सम्यकज्ञान सिद्धकर होई।
ते धारौ भवि आठों शुद्धा, जिनवाणी अनुसार प्रबुद्धा ॥ १०१ ॥
शब्द शुद्धता पहलो अंगा, शुद्ध पाठ पढ़ई जु अभंगा।
अर्थशुद्धता अंग द्वितीया, करै शुद्धअर्थ जु विधि लीया ॥ १०२ ॥

शब्द अर्थ दुहुकी निर्मलता, मन वच तन काया निहचलता ।
सो है तीजौ अंग विशुद्धा, सम्यक्ती धारैं प्रतिबुद्धा ॥ १०३ ॥
कालाध्ययन चतुर्थम अंगा, ताकौ भेद सुनौं अतिरंगा ।
जा विरियां जो पाठ उचित्ता, सोही पाठ करै जु पवित्ता ॥ १०४ ॥
विनय अंग है पंचम भाई, विनयरूप रहिवौ सुखदाई ।
सो उपधान है छट्टम अंगा, योग्य क्रिया करिवौ जु अभंगा ॥ १०५ ॥
जिनभाषितकौं अंगीकरनौ, सो उपधान अंगकौ धरनौं ।
सत्तम है बहुमान विख्याता, ताकौ अर्थ सुनूं तजि घाता ॥ १०६ ॥
बहु सतकार सु आदर करिकै, जिनआज्ञा पाले उर धरिकै ।
अष्टम अंग अनिन्हव धारैं, ते अष्टम भूमी जु निहारैं ॥ १०७ ॥
जा गुरुके ढिग तत्त्वविज्ञाना, पायौ अद्भुत रूप निधाना ।
ता गुरुकौ नहिं नाम छिपावै, वारंवार महागुण गावै ॥ १०८ ॥
सो कहिये जु अनिन्हव अंगा, ज्ञानस्वरूप अनूप अभंगा ।
सम्यकज्ञान तनूं आराधन, ज्ञानिनकौं करनूं शिवसाधन ॥ १०९ ॥
दरशनमोह रहित जो ज्ञानी, तत्त्वभावना दृढ़ ठहरानी ।
जे हि जथारथ जानैं भावा, ते चारित्र धरैं निरदावा ॥ ११० ॥
विना ज्ञान नहिं चारित सोहै, विना ज्ञान मनमथ मन मोहै ।
तातैं ज्ञान पाछे जु चरित्रा, भाख्यौ जिनवर परम पवित्रा ॥ १११ ॥
सर्व पापमारग परिहारा, सकल कषायरहित अविकारा ।
निर्मल उदासीनता रूपा, आतमभाव सु चरन अनूपा ॥ ११२ ॥
सो चारित्र दोय विधि भाई, मुनि-श्रावक व्रत प्रगट कराई ।
मुनिकौ चारित सर्व जु त्यागा, पापरीतिके पंथ न लागा ॥ ११३ ॥
ताके तेरह भेद बखानैं, जिनवानी अनुसार प्रवानैं ।
पंच महाव्रत पंच जु समिती, तीन गुपतिके धारक सुजती ॥ ११४ ॥
चउविधि जंगम पंचम थावर, निश्चयनय करि सब हि बराबर ।
तिन सर्वनिकी रक्षा करिवौ, सो पहलो सु महाव्रत धरिवौ ॥ ११५ ॥
संतत सत्य वचनकौ कहिवौ, अथवा मौनव्रत्तकौं गहिवौ ।
मृषावाद बोलै नहिं जोई, दूजौ महाव्रत्त है सोई ॥ ११६ ॥
कौड़ी आदि रतन परजंता, घटि अघटित तसु भेद अनंता ।
दत्त अदत्त न परसै जोई, तीजौ महाव्रत्त है सोई ॥ ११७ ॥

पशु पंछी नर दानव देवा, भववासी रमनीरत मेवा ।
तजै निरंतर मदन विकारा, सो चौथौ जु महाव्रत भारा ॥ ११८ ॥
द्विविधि परिग्रह त्यागै भाई, अंतर बाहिर संग न काई ।
नगन दिगंबर मुद्रा धारा, सो हि महाव्रत पंचम सारा ॥ ११९ ॥
ईर्यासमिति ऋपी जो चालै, भाषासमिति कुभाषा टालै ।
भखै अहार अदोप मुनीशा, ताहि एपणा कहैं अधीशा ॥ १२० ॥
है आदाननिक्षेपा सोई, लेहि निरखि शास्त्रादिक जोई ।
अर परिठवणा पंचम समिती, निरखि भूमि डारै मल सुजती ॥ १२१ ॥
मनोगुप्ति कहिये मन रोधा, वचनगुप्ति जो वचन निरोधा ।
कायगुप्ति काया वस करिवौ, ए तेरह विधि चारित धरिवौ ॥ १२२ ॥
एकदेश गृहपति चारित्रा, द्वादश व्रत-रूपी हि पवित्रा ।
जो पहली भाख्यौ अव तातैं, कह्यौ नहीं श्रावकव्रत तातैं ॥ १२३ ॥
इह रतनत्रय मुनिके पूरा, होवै अष्टकर्म दल चूरा ।
श्रावकके नहिं पूरण होई, धरै न्यूनतारूप जु सोई ॥ १२४ ॥
इह रतनत्रय करि शिव लेवै, चहुंगतिकौं भवि पानी देवै ।
याकरि सीझे अरु सीझेंगे, यह लहि परमैं नहिं रीझेंगे ॥ १२५ ॥
याकरि इन्द्रादिक पद होवै, सो दूपण शुभकौं वुध जोवै ।
इह तौ केवल मुक्ति प्रदाई, वंधनरूप होय नहिं भाई ॥ १२६ ॥
वंध विदारन मुक्ति सुकारण, इह रतनत्रय जगत उधारण ।
रतनत्रय सम और न दूजौ, इह रतनत्रय त्रिभुवन पूजौ ॥ १२७ ॥
रतनत्रय विनु मोक्ष न होई, कोटि उपाव करै जो कोई ।
नमसकार या रतनत्रयकौं, जो दे परमभाव अक्षयकौं ॥ १२८ ॥
रतनत्रयकी महिमा पूरन, जानि सकै वसु कर्म विचूरन ।
मुनिवर हू पूरण नहिं जानैं, जिनआज्ञा अनुसार प्रवानैं ॥ १२९ ॥
सहस जीभ करि वरणन करई, तिनहूं पै नहिं जाय वरणई ।
हमसे अलपमती कहौ कैसैं, भाषैं वुधजन धारहु ऐसैं ॥ १३० ॥
त्रेपन किरियाकौ यह मूला, रतनत्रय चेतन अनुकूला ।
जिन धार्यौ तिन आपौ तार्यौ, याकरि वहुतनि कारिज सार्यौ ॥ १३१
धन्नि घरी वह व्हैगी भाई, रतनत्रयसौं जीव मिलाई ।
पहुंचैगो शिवपुर अविनाशी, होवैगो अति आनंद राशी ॥ १३२ ॥

सब ग्रंथनिमैं त्रेपन किरिया, इन करि, इन विन भववन फिरिया ।
जो ए त्रेपन किरिया धारै, सो भवि अपनो कारिज सारै ॥ १३३ ॥
सुरग मुकति दाता ए किरिया, जिनवानी सुनि जिनि ए धरिया ।
तिन पाई निज परणति शुद्धा, ज्ञानस्वरूपा अति प्रतिबुद्धा ॥ १३४ ॥
हैं अनादि सिद्धा ए सर्वा, ए किरिया धरिवौ तजि गर्वा ।
ठौर ठौर इनकौ जस भाई, ए किरिया गावै जिनराई ॥ १३५ ॥
गणधर गावैं मुनिवर गावैं, देवभाषमैं शवद सुनावैं ।
पंचमकाल माहिं सुरभाषा, विरला समझै जिनमत साखा ॥ १३६ ॥
तातैं यह नरभाषा कीनी, सुरभाषा अनुसारे लीनी ।
जो नरनारि पढ़ैं मनलाई, सो सुख पावैं अति अधिकाई ॥ १३६ ॥
संवत सत्रासै पच्याण्णव, भादव सुदि वारस तिथि जाणव ।
मंगलवार उदैपुर माहैं, पूरन कीनी संसै नाहैं ॥ १३७ ॥
आनंद-सुत जयसुतकौ मंत्री, जयकौ अनुचर जाहि कहै ।
सो दौलत जिनदासनि दासा, जिनमारगकी शरण गहै ॥ २१३८ ॥

इति ।